ईकाई-1 असामान्य मनोविज्ञान एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि(Abnormal Psychology and its historical background)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 असामान्य मनोविज्ञान का अर्थ
1.4 असामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्धित प्रत्यय
1.5 असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.6 पूर्व वैज्ञानिक काल (पुरातन समय से लेकर 1800 तक)
1.7 असामान्य मनोविज्ञान का उद्भव (1801 से 1950 तक)
1.8 आज का असामान्य मनोविज्ञान (1651 से लेकर आज तक)
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रकृति ने मनुष्य को अनके गुणों से सँवारा है। इन्हीं गुणों में से एक गुण जिज्ञासा का भी है। इस गुण के कारण मनुष्य अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। और इसी कोशिश में अलग-अलग विज्ञानों का जन्म हुआ। इन्हीं में से एक मुख्य विज्ञान है, मनोविज्ञान। जब व्यक्ति ने अपने व्यवहारों को तथा दूसरों के व्यवहारों को वातावरण के परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की तो मनोविज्ञान का जन्म हुआ। फिर इसकी कई शाखाएँ विकसित हो गई जिनमें सामान्य मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, समाज मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान और व्यावहारिक मनोविज्ञान आदि मुख्य हैं।

असामान्य मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसमें व्यक्तियों के असामान्य व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं तथा इसकी विषय वस्तु मुख्यतः कुसमायोजित व्यवहारों एवं विघटित व्यक्तित्व का अध्ययन करने एवं उपचार के तरीकों से समबन्धित है।

असामान्य मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी शाखा है इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है और आजकल इसे मनोविकृत्ति विज्ञान कहा जाता है। आज की भागदौड़ और तनाव भरी जिन्दगी में आज मनोविज्ञान की यह शाखा आपरिहार्य बनती जा रही है। इसकी जानकारी स्वयं के लिए तो उपयोगी है ही साथ ही दूसरों की भी सहायता करके उसे स्वस्थ मानसिक जीवन व्यतीत करने में हम उसकी मद्द कर सकते हैं|

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- असामान्य मनोविज्ञान के बारे में बता सकेंगे।
- असामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्धित प्रत्ययों (concepts) के बारे में जान सकेगें|
- असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास के बारे में बता सकेंगे|
- आज के असामान्य मनोविज्ञान के बारे में बता सकेंगे|

1.3 असामान्य मनोविज्ञान का अर्थ

सम्भवतः एबनार्मल (Abnormal) शब्द की उत्पत्ति (Ano+Melos = Not Regular) अर्थात जो नियमित नहीं है| अतः असामान्य व्यवहार वह व्यवहार है जो नियमित नहीं है। इस प्रकार असामान्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है- सामान्य से दूर हटा हुआ व्यवहार। उक्त दोनों शब्दों का शाब्दिक अर्थ मौलिक रूप से एक समान है। किस्कर के अनुसार,वे "मानव व्यवहार एवं अनुभूतियाँ जो साधारणतः अनोखे, असाधारण या पृथक है, असामान्य समझे जाते हैं"

दूसरे शब्दों में ''असामान्य मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें असामान्य व्यवहार एवं असामान्य व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है"| यह असामान्य व्यवहार असमायोजित (maladjusted)व्यवहार होता है,जो व्यक्ति और समूह दोनो के लिए हानिकारक है। असामान्य व्यवहार का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान की विधियों प्रत्यय, नियमों और खोजों के आधार पर ही किया जाता है।'' असामान्य मनोविज्ञान में अनेक प्रकार की असमानताओं का अध्ययन किया जाता है जैसे- मनोविक्षिप्तता (psychosis), मनस्ताप (psycho-neurosis), मनोदैहिक विकार(psychosomatic disorder), मानसिक दुर्बलता(mental retardation),

अपराध, मद्यपान (alcoholism), सामाजिक व्याधियों (social disorder) से सम्बन्धित व्यवहारों को अध्ययन किया जाता है।

रीगर (1998) के अनुसार- "असामान्य व्यवहार ऐसा व्यवहार होता है जो सामाजिक रूप से दुखदायी एवं विकृति संज्ञान के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है क्योंकि ऐसे व्यवहार से व्यक्ति को सामान्य समायोजन में कठिनाई होती है। इसलिए इसका स्वरूप कुसमायोजी भी होता है।"

बारलो या डूरंड (1999) ने असामान्य व्यवहार की काफी विस्तृत परिभाषा दी । इनके अनुसार "असामान्य व्यवहार व्यक्ति के भीतर मनोवैज्ञानिक दुष्क्रियता की स्थिति होती है जो कार्यों में व्यथा या हानि से जुड़ा होता है तथा एक ऐसी अनुक्रिया होती है जो प्रतिनिधिक या सांस्कृतिक रूप से प्रत्याशिप नहीं होती है।"

असामान्य व्यवहार को विभिन्न विशेषताओं (कसौटियों) के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की गई है।

(क) सांख्यिकीय बारम्बारता (statistical frequency)की कसौटी- इस कटौती के अनुसार वे सभी व्यवहार असामान्य है जो सांख्यिकीय रूप से अबारम्बार होते हैं अर्थात वे सभी व्यवहार असामान्य होते हैं जो सांख्यिकीय औसत से विचलित(deviated) होते हैं |जो व्यवहार उस औसत में आते हैं, वे सामान्य कहलाते हैं और जो उससे भिन्न होते हैं उसे असामान्य कहा जाता है| जैसे- जिन व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि(I.Q.) 70 से कम होती है। उनकी बुद्धि इतनी कम समझी जाती है कि उस व्यक्ति को मानसिक रूप से मंद होने की संज्ञा दी जाती है |अतः इस कसौटी के अनुसार व्यक्ति के औसत निष्पादन(performance) को ही सामान्य कहा जायेगा और जो इस निष्पादन से विचलित होता है उसे असामान्य कहा जायेगा।

इस कसौटी का मुख्य दोष यह है कि न केवल औसत से कम बुद्धि लब्धि वाले बल्कि औसत से ऊपर 140 से 160 से अधिक बुद्धि लब्धि वाले भी असामान्य कहलायेगे जो गलत होगा। इस कसौटी का कोई स्वष्ट मूल्य नहीं है। अतः यह कसौटी मनोवैज्ञानिकों को स्पष्ट निर्देश नहीं देती है कि कौन से अबारम्बार का उसे अध्ययन करना चाहिए।

(ख) मानक अतिक्रमण (norms violation)की कसौटी- हर व्यक्ति एक समाज में रहता है जिसका अपना मानक होता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति मानक के अनुकूल व्यवहार करता है उसे सामान्य और जो व्यक्ति मानक के विपरीत व्यवहार करता है उसे असामान्य कहा जाता है। जैसे -कुछ समाज के मानक ऐसे हैं जिनमें अपने ही चचेरे-फुफेरे भाई बहन में शादी को सामान्य समझा जाता है जबकि कुछ समाज में ऐसे व्यवहार को असामान्य समझा जाता है। अतः इस तरह का व्यवहार इस परिस्थिति में मानक अतिक्रमण नहीं कहलायेगा।

जबकि दूसरी परिस्थिति में मानक अतिक्रमण कहलायेगा और उसे असामान्य व्यवहार कहा जायेगा।

इस कसौटी का मुख्य दोष यह है कि एक ही व्यवहार एक समाज या संस्कृति में सामान्य हो सकता है परन्तु वही व्यवहार दूसरे समाज में असामान्य हो सकता हे। अतः इस कसौटी के अनुरूप असामान्य व्यवहार की कोई परिभाषा देना संभव नहीं है।

(ग) व्यक्तिगत व्यथा(individual distress) की कसौटी- अर्थात यदि व्यक्ति का व्यवहार ऐसा है जिससे उसमें अधिक तकलीफ तथा यातना उत्पन्न होती है तो उसे असामान्य व्यवहार कहा जायेगा। चिन्ता(anxiety), विषाद(depression) से ग्रस्त व्यक्तियों को अधिक यातना सहनी पड़ती है। अतः इनके व्यवहार को इस कसौटी के अनुरूप निश्चित रूप से असामान्य व्यवहार कहा जाता है। पहली दो कसौटियों की तुलना में यह अधिक उदारवादी(liberal) है क्योंकि इसमें लोग अपनी सामान्यता की परख स्वयं करते हैं न कि समाज या कोई विशेषज्ञ। एक यही कसौटी ऐसी है जिसका प्रयोग कम गंम्भीर मानसिक विकृतियों(mental disorders) की पहचान करने में किया जाता है। अधिकतर लोग जो मनश्चिकित्सा के लिए आते हैं वे असामान्य नहीं होते हैं बल्कि वे इसलिए आते हैं क्योंकि वे अपनी जिंदगी के व्यवहार से काफी तंग आ चुके होते हैं।

कुछ विकृतियाँ ऐसी होती हैं जो व्यक्ति में कोई व्यथा, चिन्ता या यातना उत्पन्न नहीं करती हैं। जैसे- मनोविकारी रूप तरह तरह के समाज विरोधी व्यवहार करते हैं परन्तु न तो उनमें कोई चिन्ता उत्पन्न होती है और न ही कोई दोष भाव |अतः ऐसे व्यवहार को असामान्य व्यवहार नहीं कहा जा सकता है।

(घ) अयोग्यता(inefficiency) की कसौटी- यदि कोई व्यक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने में अयोग्यता के कारण असमर्थ रहता है तो उसके इस व्यवहार को असामान्य व्यवहार कहा जायेगा। जैसे - यदि कोई पानी के जहाज से कहीं जाने में इतना डरता है कि वह पदोन्नति(promotion) को भी त्याग देता है तो इस तरह की अयोग्यता को असामान्य व्यवहार माना जायेगा। अनेक शाधों द्वारा यह पता चला है कि असामान्य व्यवहार का एक महत्वपूर्ण तत्व दुष्क्रिया(dysfunction) है जैसे- यदि कोई व्यक्ति अच्छा तैरना जानता है और वह पानी में जाने से काफी डरता है तो ऐसे दुष्क्रियात्मक व्यवहार को असामान्य व्यवहार कहा जायेगा।

अयोग्यता एक ऐसी कसौटी है कि जो कुछ व्यवहार के लिए सही है न कि सभी तरह के व्यवहार के लिए। जैसे पुलिस सेवा में भर्ती के लिए निर्धारित शारीरिक ऊंचाई का किसी व्यक्ति में न होना यह एक ऐसी अयोग्यता है जिसे असामान्य व्यवहार में नहीं रखा जा सकता है।

(ङ) अप्रत्याशा(unexpected) की कसौटी- डेविसन तथा नील (1996) ने इस कसौटी को असामान्य व्यवहार का एक महत्वपूर्ण तत्व माना और वास्तव में असामान्य व्यवहार पर्यावरणीय तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के प्रति एक तरह की अप्रत्याशित अनुक्रिया होती है। उदाहरण के लिए जब व्यक्ति आर्थिक सम्पन्नता के बावजूद भी अपनी आर्थिक स्थिति के बारे में लगातार चिन्तित रहता है और जब यह चिन्ता सामान्य से अधिक बढ जाती है तो उस व्यक्ति में चिन्ता रोग उत्पन्न हो जाते हैं लेकिन सभी तरह के अप्रत्याशित व्यवहार को असामान्य व्यवहार नहीं कहा जा सकता है। जैसे- रास्ते में जाते समय अचानक सांप देखकर चिल्लाना एक अप्रत्याशित व्यवहार है परन्तु इसे हम असामान्यता की श्रेणी में नहीं रख सकते हैं।

अतः असामान्य व्यवहार को समझने के लिए कई कसौटियों या दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है। असामान्य व्यवहार वह व्यवहार है जो-

i. जो सामाजिक मानकों से विचलित या भिन्न है।
ii. जो व्यक्ति को कष्ट या तकलीफ में डालता है।
iii. जो समायोजन में कठिनाई उत्पन्न करता हो।
iv. जो व्यक्ति के साथ-साथ समूह और समाज के लिए भी समस्याऐं या संकट उत्पन्न करता हो।

असामान्य मनोविज्ञान या मनोविकृत्ति को समझने के लिए असामान्य व्यवहार की विशेषताओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है--

1) असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्ति का समायोजन काफी खराब हो जाता है। व्यक्ति को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के साथ समायोजन करना काफी मुश्किल हो जाता है जबकि सामान्य व्यक्ति का समायोजन अच्छा होता है।
2) जो व्यक्ति मानसिक बीमारियों से ग्रसित होते हैं उन व्यक्तियों में मानसिक संतुलन का अभाव रहता है। पल-पल में उनके मन के विचार बदलते रहते हैं| ये अपने विचार- भाव का ठीक ढंग से प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं।
3) असामान्य व्यक्तियों का व्यवहार समाज विरोधी होता है| वे समाज के नियमें परम्पराओं को अधिक महत्व नहीं देते है इसलिए वे चोरी, डकैती , हत्या, लूटपाट, बलात्कार जैसे अपराध करने में नहीं घबराते हैं| सामाजिक नियमों का उल्लंघन उनके लिए एक साधारण बात होती है।
4) असामान्य लोगों में असुरक्षा, डर की भावना अधिक मात्रा में पाई जाती है| उन्हें अन्य से हमेशा नुकसान का खतरा बना रहता है।
5) जो व्यक्ति मानसिक विकृतियों (बीमारियों) से ग्रसित होते हैं, उनके व्यवहार में प्रायः सूझ की कमी पाई जाती है। ऐसे व्यक्ति उचित अनुचित, अच्छे, बुरे में अन्तर नहीं कर पाते हैं।

6) मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों में आत्म सम्मान का अभाव पाया जाता है| उनमें स्वयं के प्रति अच्छी भावनाओं का अभाव पाया जाता है। उनमें स्वयं के प्रति हीनता का भाव रहता है जैसे- वे दुनिया का सबसे खराब व्यक्ति है। उससे कोई काम नहीं हो सकता आदि।
7) असामान्य व्यक्तियों को अपने किसी भी कार्य पर कोई पश्चाताप(remorse) नहीं होता है। वे यह मानने को बिल्कुल तैयार नहीं होते हैं कि उन्होंने कोई गलती की है।
8) व्यक्तियों में संवेगात्मक स्थिरता(emotional stability) का अभाव पाया जाता है| उनमें तनाव(stress), असंवेदनशीलता(insensitivity) अधिक देखने को मिलती है।
9) मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों में स्वयं को उचित रूप से समझ सकने की क्षमता का अभाव उत्पन्न हो जाता है। वह किसी भी समस्या या प्रश्न के बारे में ठीक से समझ या सोच नहीं पाता है।
10) असामान्य व्यक्तियों में पूर्व अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता का भी अभाव पाया जाता है। क्योंकि उसमें व्यावहारिक अस्थिरता व असन्तुलन पाया जाता है।

1.4 असामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्धित प्रत्यय

अनेक ऐसे प्रत्यय है जिसका प्रयोग असामान्य मनोविज्ञान के लिए या उनके स्थान पर किया जाता है जैसे-

- **नैदानिक मनोविज्ञान(Clinical psychology)**- नैदानिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक रोगों का वर्णन, वर्गीकरण, निदान तथा पूर्वानुमान से होता है। यह असामान्य मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसका मुख्य उद्देश्य असामान्य व्यवहार का अध्ययन मूल्यांकन उपचार एवं रोकथाम है।
- **मनोरोग विज्ञान(Psychiatry)**- मनोरोग विज्ञान को चिकित्सा विज्ञान की शाखा माना जाता है। यह नैदानिक मनोविज्ञान से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। इसमें अन्तर सिर्फ इतना है कि मनोचिकित्सक असामान्य व्यवहार की पहचान एवं उपचार चिकित्साशास्त्र के समप्रत्यों के आधार पर न कर व्यावहारिक आधार पर करते हैं।
- **मनोचिकित्सकीय समाजिक कार्य(Psychiatric social work)-** यह भी असामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्धित विज्ञान है, इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक परिवेश(social environment) का विश्लेषण तथा पारिवारिक परिवेश(family environment) एवं सामुदायिक परिवेश(communal environment) में व्यक्ति को समायोजन स्थापित करने में सहायता प्रदान करना है।
- मनोविकृति विज्ञान**(Psychopathology)**- मनोविकृति विज्ञान के अन्तर्गत असामान्य व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

1.5 असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

असामान्य व्यवहार का अध्ययन कोई नया विषय नहीं है बल्कि इसका एक लम्बा और रोचक इतिहास है। अति प्राचीन काल में यद्यपि असामान्य व्यवहार की कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख मनोवैज्ञानिकों के पास नहीं है। उस समय से लेकर आज तक का असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास को फिस्कर ने तीन मुख्य भागों में बाँटा है-

1. पूर्व वैज्ञानिक काल(pre-scientific era)
2. असामान्य मनोविज्ञान का आधुनिक उद्भव(modern emergence)
3. आज का असामान्य मनोविज्ञान

1.6 पूर्व वैज्ञानिक काल (पुरातन समय से लेकर 1800 तक)

पूर्व काल की शुरूआत पुराने लोगों द्वारा असामान्य व्यवहार के अध्ययन से होती है और 18वीं शताब्दी तक किये गये सभी अध्ययनों को इसमें शामिल किया गया है। इस काल में मानसिक रोगियों एवं उनके उपचार के बारे में चिकित्सकों एवं लोगों के विचारों में एक अजीब उतार- चढा़व आया। इस पूर्व वैज्ञानिक काल में चार भागों में बाँटा गया है।

1) **पाषाण युग(stone age)-** प्राचीनकाल में ग्रीक, चीन तथा मिस्र आदि देशों के लोगों का कहना था कि जब व्यक्ति के प्रति ईश्वर की कृपा दृष्टि समाप्त हो जाती है तो ईश्वर की ओर से अभिशाप या दण्ड के रूप में व्यक्ति में असामान्य व्यवहार विकसित हो जाता है। प्राचीनकाल मानसिक बीमारियों के प्रति लोगों का विचार इस जीववाद से सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ था इस विचारधारा के अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु जैसे- हवा, पानी, पेड़-पौधे आदि के भीतर कोई अलौकिक जीव होता है, और इन सभी वस्तुओं में गति इस लिए होती है क्योंकि उसके भीतर देवता (अलौकिक शक्ति) का वास होता है। जीववाद के अनुसार व्यक्ति द्वारा असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करने का मूल कारण उसमें किसी आत्मा या भूत-प्रेत का प्रवेश कर जाना है। अर्थात जब किसी व्यक्ति के शरीर पर किसी बुरी आत्मा का अधिकार हो जाता है तो व्यक्ति मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है। इस समय उपचार की दो विधियाँ प्रचलित थी- अपदूत निसारन, ट्रीफाईनेशन।

अपदूत निसारत विधि में विभिन्न तकनीकों के सहारे बुरी आत्मा को बाहर निकाला जाता था। इसमें प्रार्थना,जादू-टोना, शोरगुल, झाड़-फूंक, कोड़े लगाना, भूखे रखना आदि प्रविधियाँ शामिल हैं । उस समय के चिकित्सकों को विश्वास था कि इन सभी प्रविधियों को अपनाने से मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्ति का शरीर इतना कष्टदायक या दुःखद हो जायेगा कि बुरी आत्मा उसके शरीर को छोड़कर चली जाऐगी और व्यक्ति स्वस्थ हो जायेगा| बाद में इस विधि की लोक प्रियता ग्रीस, चीन, मिस्र के देशों के पुजारियों में जो उस समय(मानसिक रोगों के) चिकित्सक थे, उनमें काफी बढ़ गई।

ट्रीफाइनेशन विधि, जिसमें मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्ति को नुकीले पत्थरों से मारकर व्यक्ति की खोपडी़ में छेद कर बुरी आत्मा को बाहर निकल जायेगी और व्यक्ति स्वस्थ हो जायेगा।

2) **प्रारम्भिक दर्शन-** आज से लेकर लगभग 2500 वर्ष पहले मानसिक रोगी तथा असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में एक विवेकी और वैज्ञानिक विचारधारा का जन्म हुआ। इसका श्रेय ग्रीक चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स को जाता है। मानसिक रोगों के सम्बन्ध में हिप्पोक्रट्स ने एक क्रान्तिकारी विचारधारा व्यक्त करते हुए कहा है कि मानसिक या शारीरिक रोगों की उत्पत्ति कुछ स्वाभाविक कारणों से होती है न कि शरीर के भी कुछ बुरी आत्मा के प्रवेश कर जाने से । इन प्रारम्भिक एवं चिकित्सकीय विचारधाराओं को निम्न में बाँटा गया है-

हिप्पोक्रेटस के अनुसार शारीरिक या मानसिक रोगों की उत्पत्ति कुछ स्वाभाविक कारणों से होती है और ऐसे रोगियों को मानवीय देखभाल की आवश्यकता पर जोर दिया। इनके अनुसार सभी बौद्धिक क्रियाओं का केन्द्रीय भाग मस्तिष्क होताहैं और इस तरह मानसिक बीमारियों का मूल कारण मस्तिष्कीय मनोविकृति है। उनका मानना है कि मस्तिष्क में आघात होने पर व्यक्ति में संवेदी तथा पेशीय कार्यों से सम्बन्धित बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती है। साथ ही पर्यावरणीय कारकों को भी इससे जोडा़ और कहा कि ऐसे मानसिक रोगियों को एक स्वच्छ वातावरण में रखा जाना चाहिए ताकि उन्हें रोग से जल्द से जल्द छुटकारा मिल सके।

कुछ खास बीमारियों जैसे हिस्टीरिया के बारे में बताया कि यह बीमारी सिर्फ लड़कियों में होती है। यद्यपि हिप्पोक्रेट्स के विचारों की मान्यता आजकल नहीं रह गई है फिर भी उनके विचार उस समय इतने क्रान्तिकारी थे कि मानसिक रोग के सम्बन्ध में दुष्ट-आत्मा-संबंधी विचार समाप्त हो गए और उसी जगह इन रोगों के सम्बन्ध में एक स्वस्थ विवेकी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शुरूआत हो गई।

प्लेटो एवं अरस्तु का योगदान-

प्लेटो का विचार है कि मानसिक रोगी अपने अपराधजन्य क्रियाओं के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं होते हैं। अतः उन्हें सामान्य अपराधियों की तरह दण्डित नहीं किया जाना चाहिए।

बल्कि उनके प्रति माननीय दृष्किोण अपनाने, उनके सगे-संबंधियों द्वारा उन पर निगरानी रखे जाने की आवश्यकता तथा मानवीय ढंग से व्यवहार करने की आवश्यकता पर जारे दिया। प्लेटो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' में बौद्धिक एवं अन्य क्षमताओं सम्बद्ध वैयक्तिक भिन्नता के महत्व पर विशेष बल दिया और बताया कि व्यक्ति का व्यवहार एवं चिन्तर सामाजिक कारकों द्वारा काफी हद तक निर्धारित होते हैं। इन सभी आधुनिक विचारों के बसवजुद भी प्लेटो का विचार थाकि मानसिक रोग तथा असामान्य व्यवहार अंशतः दैविक कारकों द्वारा भी होता है।

उत्तर ग्रीक एसं रोमनवासिसयों का योगदान-

हिप्पोक्रेटस के बाद ग्रीक एवं रोमन चिकित्सा मानसिक रोगियों एवं असामान्य व्यवहारों के अध्ययन मं उनके द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करते रहे। इनमें मुख्यतः मिश्र के चिकित्सा विज्ञान में काफी प्रगति हुई और यहाँ के अनेक मन्दिरों एवं गिरिजाघरों को प्रथम दर्जे के आरोग्यशाला में बदल दिया गया। जहाँ के सुखद मनोरम एवं आनन्ददायक वातावरण में मानसिक रोगियों को रखने को विशेष प्रावधान किया गया। कुछ रोमन चिकित्सकों, एस्कलेपियड्स ने सबसे पहले तीव्र एवं गम्भीर (चिरकालिक) मानसिक रोगों के बीच अन्तर स्पष्ट किया तथा भ्रम-विभ्रम तथा व्यामोह के बीच अन्तर किया। सिसेरों ऐसे ही पहले चिकित्सक थे जिन्होंने बताया कि शारीरिक रोगों की उत्पत्ति में सांवेगिक कारकों की भूमिका अधिक होती है। बाद में ऐरेटियस ने बताया कि उन्माद तथा विषाद एक ही बीमारी की दो मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। इनके अनुसार जो लोग चिड़चिडे होते हैं, आक्रोशी होते है, उनमें उन्माद और जो लोग सुस्त व गम्भीर प्रकृति के होते हैं उनमें विषाद जैसे मानसिक रोग होने की सम्भावना अधिक होती है। गेलेन ऐसे चिकित्सक थे जिन्होंने मानसिक रोग को मूलतः दो भागों में बाँटा-शारीरिक कारण और मानसिक कारण। मानसिक कारणों में क्षतिग्रस्त हो जाना, अधिक नशा करना, भय, आर्थिक मन्दता तथा प्रेम में निराशा आदि मुख्य है।।

जब ग्रीस एवं रोम सभ्यता का सूर्य अस्त होने लगा था तो इन देशों के दार्शनिकों एवं चिकित्सकों द्वारा मानसिक एवं असामान्य व्यवहार के बारे मे बताए गस विचार प्रभावहीन होने लगे और फिर लोगों ने मानसिक रोग को कराण दुष्ट आत्मा का शरीर में प्रवेश कर जाना एवं दैवीय प्रकोप माना। इसे मनोविज्ञान के इतिहास में अन्धकार का युग कहा जाता है।

इस्लामिक देशों के ग्रीक विचारों की मान्यता इस समय कुछ इस्लामिक देशों में असप्ताल के ग्रीक चिकित्सकों की विचारों का प्रभाव पड़ा और बगदाद में पहला मानसिक अस्पताल खोला गया। इन मानसिक अस्पतालों में रोगियों के साथ मानवीय व्यवहार करने तथा उपचार के मानवीय ढंगपर अधिक बल दिया गया। इस्लामिक चिकित्सा विज्ञान के सबसे प्रमुख चिकित्सक एविसिना थे। जिन्हे चिकित्सकों का राजकुमान कहा जाता है, इन्होनें अपनी पुस्तक 'दि कैनन ऑफ मेडिसिन'

में कुछ मानसिक रोगों जैसे हिस्ट्रिया, मिरगी, उन्माद आदि का वर्णन किया और इससे मानवीय उपचार को बड़ावा मिला।

3) **मध्य युग-** प्रारम्भिक दार्शनिक और मध्य युग मानसिक रोगियों के चिार लगभग एक जैसे थे। ग्रीस एवं रोमन सभ्यता के सूर्यास्त होने के बाद मध्य युग के प्रारम्भ तक लोग मानसिक रोगियों में सिी शैतानी आत्मा या ईश्वरीय प्रकोप का प्रवेश मानते रहे। मध्य युग के उत्तरार्द्ध में असामान्य व्यवहार में एक नई प्रवृत्ति देखी गई वह भी सामूहिक पागलपन की प्रवृत्ति। यह बीमारी यूरोप के बड़े भाग में फैल गई। सामूहिक पागलपन की महामारी में जैसे ही किसी व्यक्ति में हिस्टीरिया के लक्षण दिखाई देते थे। देखते ही देखते अन्य लोग भी इससे प्रभावित होने लगते थे और सभी अपने घरों से बाहर आकर उछलना, रोना एक-दूसरे के कपड़े फाड़ना आदि शुरू कर देते थे। बाद में फिर वही पुराना तरीका जैसे प्रार्थना, झाड़, फूंक कोड़े से पिटाई, भूखा रहना आदि अपनायो जाने लगे। इस युग के अन्त तक लोगों का ईश्वर विश्वास काफी सुदृढ़ हो गया। इनके अनुसार दुष्ट आत्मा का आधिपत्य दो तरह से होता हे। पहला यह कि जिसमें व्यक्ति को अने पापों के कारण ईश्वर के अभिशाप के रूप में कोई दुष्ट आत्मा व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरूद्ध उसे पकड़ लेता है और शारीर मं प्रवेश कर उसमें मानसिक रोग उत्पन्न करता है। अपनी इच्छानुसार दुष्ट आत्मा से दोस्ती कर लेता है और असामान्य व्यवहार करने लगता है। और व्यक्ति शैतान के साथ मिलकर उसकी अलौकिक शक्ति प्राप्त कर भयानक सामाजिक उपद्रव करता है। इस तरह के रोगियों को जादूगर या डाइन समझा जाने लगा। इनका उपचार करने के लिए इन्हें कठोर शारीरिक दण्ड यिा जाता था। फलस्वरूप मध्य युग में असामान्य व्यवहार एवं मानसिक रोग के क्षेत्र में एक तरह से अधंकार ही रहा। न तो मानसिक रोगियों के उपचार को कोई तरीका निकाला गया और न ही कोई मानवीय मनोवृत्ति अपनाई गई।

15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लोगों का विश्वास काफी सृदृढ़ हो गया कि दृष्ट आत्मा का आधिपत्य दो प्रकार का होता है-एक अधिपत्य वह होता है जिसमें व्यक्ति के अपने पापों को उसकी इच्छा के विरूद्ध उसे पकड़ लेता है और शरीर में प्रवेश कर उसमें मानसिक रोग उत्पन्न करता है या उसे पागल बना देता है। तथा दूसरा अधिपत्य वह होता है व्यक्ति अपनी इच्छानुसार दुष्ट आत्मा से दोस्ती कर लेता है और असामान्य एवं असंगत व्यवहार करने लगता है। इस दूसरे तरह के व्यवहार में व्यक्ति शैतान के साथ मिलकर उसकी अलौकिक शक्ति प्राप्त करता है। इस तरह के मानसिक रोगियों को जादूगरनी या डाइन समझा जाने लगा। 15वीं शताब्दी के अनत तक इन दोनों तरह के मानसिक रोगियों में इस तरह का अन्तर समाप्त हो गया। और सभी मानसिक रोगियों को जादूगर या डाइन समझा जाने लगा। फलतः उनका व्यवहार भी कठोर से कठोर शारीरिक दण्ड देकर जैसे उन्हे कोड़े मारकर, उनके कुछ अंगों को जलाकर किया जाना था।

मध्य युग में मानसिक रोग एवं असामान्य व्यवहार के अध्ययन के क्षेत्र में एक तरह से अधंकार ही अधंकार रहा। इस युग में उपचार का कोई भी वैज्ञानिक तरीका नहीं निकल पाया और न ही इन मानसिक रोगियों के प्रति कोई मानवीय तरीका या मनोवृत्ति ही अपनाई गई।

4) **मानवीय दृष्टिकोण-** 16वी शताब्दी के प्रारम्भ में ही मानसिक रोगियों के प्रति अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध आवाज उठने लगी थी और कहा जाने लगा कि यह एक बीमारी है और इसका उपचार मानवीय ढंग से किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत जिन चिकत्सकों ने अपना योगदान दिया उनका नाम असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिया गया- असामान्य रोगियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाने वाले प्रमुख चिकित्सक पारासेल्सस जोहान वेयर रेजिनाल्उ स्कॉट फिलिप पिनेल आदि मुख्य है। इन लोगों ने जब भिन्न जगहों पर रखें गए ऐसे मानसिक रोगियों की दशा देखी तथा उन पर किए गए शारीरिक अत्याचार का गहन रूप से निरीक्षण किया और स्पष्ट किया कि मानसिक रोग किसी बुरी आत्मा के प्रभाव के कारण नहीं होता है बल्कि यह एक प्रकार का रोग है। प्रारम्भ में लोगों ने इनका मजाक उडाया लेकिन मानवीय उपचार के बाद जब परिणाम अच्छे निकल तथा रोगी ठीक होने लगे तो सभी लोगों ने मानवीय उपचार का स्वागत किया और उनाक साथ देने लगे।

स्पष्ट है कि असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में उतार-चढाव आया। प्रारम्भ में लोगों ने असामान्य व्यवहार की व्याख्या जीववाद द्वारा की जिसमें मानकिसक रोग का कारण बुरी आत्मा व दैवीय प्रकोप माना। बाद में हिप्पोक्रेटस के अनुसार मानसिक रोग कुछ स्वाभाविक कारणों से होता है। मध्य युग के अन्तक असामान्य व्यवहार के प्रति मानवता का दृष्टिकोण अपनाया।

इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत चिकित्सकों ने अपना योगदान दिया है उनाक नाम असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है-

1) असामान्य के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाने वाले एक प्रमुख चिकित्सक पारासेल्सस (1490-1541) जो स्पैनिश चिकित्सक थे इन्होंने सभी तरह के मानसिक रोगियों एवं सांवेगिक रूप से क्षुब्ध व्यक्तियों के मानवीय उपचार पर बल दिया था। इनका मानना था, कि मध्ययुग का नृत्य उन्माद किसी दूष्ट आत्मा के शरीर में प्रेवश के कारण नहीं होता था, बल्कि या एक तरह का रोग है जिसका उपचार मानवीय ढंग से होना चाहिए था।
2) जोहान वेयर (1515-1588)- जो एक जर्मन चिकित्सक थे ने भिन्न-भिन्न जगह पर कैदी के रूप में रखे गए मानसिक रोगियों की दशा देखी तथा उन पर किये गये शारीरिक अत्याचार का गहन रूप से अध्ययन किया और बताया कि उनका सही उपचार सिर्फ मानवीय तरीके से हो सकता है।
3) मानसिक रोगियों के प्रति सही अर्थ में मानवता का दृष्टिकोण एक फ्रेंच चिकित्सक फिलिप पिनेल(1745-1826) जिन्हें आधुनिक मनोरोग विज्ञान का जनक भी कहा जाता है के सक्रीय

प्रयासों से प्रारम्भ हुआ। पिनेल को जब पेरिस के मानसिक अस्पताल ला विस्टरे का प्रभारी बनाया पर ग्रहण करते ही उन्होंने सबसे पहले अस्पताल के मानसिक रोगियों को जंजीरों से मुक्त कराया और उनके साथ मानवीय व्यवहार करने के आदेश दिये। उन्हें हवा व रोशनी से युक्त कमरे में रखा जाए, फलस्वरूप मानसिक रोगियों द्वारा पहले की जा रही शोरगुल व उत्तेजना के काफी कमी आ गई और उन्होंने उपचार में सहयोग करना प्रारम्भ कर दिया। और काफी उत्साहजनक परिणाम सामने आये। इस तर फ्रॉस संसार का पहला देश बन गया जहाँ मानसिक रोगियों के साथ मानवीय व्यवहार कर उनका उपचार किया जाने लगा और इसका प्रभाव संसार के अन्य देशों में भी पड़ा।

1.7 असामान्य मनोविज्ञान का उद्‌भव (1801 से 1950 तक)

पिनेल तथा टर्क द्वारा की गई मानवीय उपचार विधियों ने असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में पूरे संसार में हलचल मचा दी। अमेरिका में इस हलचल की अभिव्यक्ति बेम्जामिन रश के कार्यो द्वारा होती है। इन्होंने पेन्सिलवेनिया अस्पताल में 1783 में कार्य शुरू किया और 1976 में मानसिक रोगियों के उपचार करने के ख्याल से एक अलग रोगी कक्ष बनवाया। जहां उनके मनोरंजन के तरह-तरह के साधान रख गए ताकि रूचिकर कार्यों को करने की ओर वे प्रेरित हों और उनके साथ अधिक से अधिक मानवीय व्यवहार पर बल दिया।

अमेरिका में 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक विशेष आन्दोदलन की शुरूआत एक महिला स्कूल शिक्षिका डोरथिया डिक्स (1802-1887) के सराहनीय प्रयासों से हुआ। दृष्टिकोण अपनाने की बात की जिनके अथक प्रयासों से मानसिक अस्पतालों में रखे गए रोगियों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार में कमी आई और मानवीय व्यवहारों में वृद्धि हुई। इन्होंने अपने जीवनकाल में 32 मानसिक अस्पताल खुलवाये और मानसिक रोगियों से सम्बन्धित सराहनीय एवं मानवतापूर्ण कार्य करने के लिए अमेरिका सरकार ने डिक्स को 1901 में पूरे इतिहास में मानवता का सबसे उत्तम उदाहरण बताया।

अमेरिका के अतिरिक्त (1800-1950) में फ्रांस जर्मनी, तथा आस्ट्रीया में भी असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्पूर्ण कार्य किये। जिसमें फ्रान्स के मेसमर का नाम उल्लेखनीय है। इनके बहुमूल्य प्रयासों एवं कार्यो के परिणामस्वरूप मनोस्नायुविकृति को असामान्य मनोविज्ञान में एक अलेग एवं विशेष रोग माना जाने लगा। बाद में पेरिस के एक अस्पताल के प्रतिभाशाली तंत्रिका विज्ञानी शार्को थे। जिन्होंने हिस्टीरिया जैसे मानसिक रोग का उपचार सम्मोहन द्वारा सफलता पूर्वक किया। इन्होंने मानसिक रोगों का मुख्य मस्तिष्कीय अघात को माना। असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में शार्को का सबसे महत्वपूर्ण योगदान पेरिस के एक मशहूर शिक्षक के रूप में रहा जिनका मुख्य

कार्य छात्रों को (जो बाद में मनोविज्ञान एव मनोरोग विज्ञान में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हुए) प्रशिक्षित करना था। उनके छात्रों में दो छात्र ऐसे थे जिनके प्रति हम आभारी है- सिगमण्ड फायड (1856-1939) तथा पाइरे जेनेट।

फ्रांस के अलावा जर्मनी में भी असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुए हैं जिसमें विलिहेम्स ग्रिसिंगर और इमिल क्रेपलिन का नाम उल्लेखनीय है। इन दानों चिकित्सकों ने मानसिक रोगों का एक दैहिक आधार मानते हुए इस बात पर बल डाला कि मानसिक बीमारी भी किसी अंग विशेष में विकृति होने पर शारीरिक बीमारी होती है उसी तरह से मानसिक बीमारी भी किसी अंग विशेष में विकृति के फलस्वरूप होती है।

विलिहेल्म ग्रिसिगर ने 1845 में अपनी पुस्तक दृढ़तापूर्वक कि मानसिक रोगों का मुख्य कारण दैहिक होता है इन्होंने भिन्न भिन्न लक्षणों के आधार पर मानसिक रोगों को अलग-अलग भागो में बाँटा और इनके लक्षणों तथा उत्पत्ति के कारणों का विस्तृत उल्लेख किया। इन्होंने उत्साह-विषाद मनोविकृति जैसे मानसिक रोगों को बताया जो आज भी इन्हीं के नाम जाना जाता हें

19 वीं शताब्दी में आस्ट्रीया में सिगमण्ड फ्रायड जो एक महत्वपूर्ण तंत्रिका विज्ञानी तथा मनोरोग विज्ञानी थे ने महत्वपूर्ण कार्य किया फ्रायड पहले ऐसे मनोरोग विज्ञानी थे जिन्होने मानसिक रोगों के कारणों की व्याख्या में दैहिक कारकों के महत्व को कम एवं मनोवैज्ञानिक कारकों को अधिक महत्व दिया। असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड का योगदान मुक्त साहचर्य विधि अचेतन स्वप्न- विश्लेषण मनोलैगिंक सिद्धान्त मनोरचनाएं प्रमुख हैं इनके अनुसार सम्मोहित अवस्था में रोगी बिना किसी हिचकिचाहट के अपने संवेगों सघर्षों एव भावनाओ को प्रकट करता है। उन्होंने अपने अनुभवों एवं रोगियों के निरीक्षण के आधार पर यह भी बतलाया कि अधिकतर मानसिक संघर्ष तथा चिन्ता का स्रोत अचेतन होता है। ऐसे मानसिक संघर्ष दुश्चिन्ता एवं दःखद अभिप्रेरकों एवं संवेगों को व्याक्ति अपने चेतन से हटाकर अचेतन में दमित कर देता है इसे फ्रायड ने दमन की संज्ञा दी। इसके बाद फ्रायड की ख्याति संसार के चारों ओर फैलने लगी और दूर-दराज से लोग शिक्षा प्राप्त करने यहाँ आने लगे। इनके शिष्यों में कार्ल युग और अल्फ्रेड एडलर का नाम उल्लेखनीय है। बाद में इन लोगों ने फ्रायड से अपना सम्बन्ध तोड़कर स्वतंत्र रूप से एक नये मनोविज्ञान की शुरूवात की । कार्ल युग ने मनोविज्ञान का नाम विश्लेशाणात्मक मनोविज्ञान और एल्फ्रेड ने वैयक्तिक मनोविज्ञान रखा। जब फ्रायड 53 वर्ष के थे तो स्टेनले हॉल 1909 में अमेरिका क्लार्क विश्वविद्यालय में 20वी वर्षगांठ पर उन्हें भाग लेने के लिए बुलाया गया। जाहां उन्होंने मनोविश्लेषण पर कई व्याख्यान दिये और अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों पर उनके व्याख्यानों का काफी प्रभाव पड़ा। लगभग 83 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई।

असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में स्विटजरलैण्ड के एडॉल्फ मेयर ने मानसिक रोगियों पर मनो जैविक दृष्टिकोण की विचारधारा को जन्म दिया। इनके अनुसार असामान्य व्यवहार शारीरिक

और मानसिक दोनो कारणों से होता है और इनका उपचार मानसिक तथा दैहिक दानो आधारों पर किया जाना चाहिए। मेयर मनोजैविक सिद्धान्त के अनुसार मानसिक रोग की उत्पत्ति में व्यक्ति का सामाजिक वातावरण एक महत्वपूर्ण कारक होता है। इनके अनुसार मानसिक रोगियों का उयुक्त चिकित्सा तभी सम्भव है जब उसके जैविक पदार्थो जैसे-हारमोन्स, विटामिन, को संतुलित करते हुए उसके घरेलू वातावरण के अन्तर पारस्परिक सम्बन्धों को भी सुधारा जाए। मेयर के लिए मानसिक रोगियों का उपचार रोगी इन दोनो के सौहार्दपूर्ण एवं अच्छे सम्बन्धों पर निर्भर करता है। उपचार के इस तरह की प्रविधि का उपयोग आज भी सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

मेयर का विचार था कि असमान्यता को समझने के लिए एक सम्पूर्ण दृष्टिकोण अपनाना जरूरी है। अर्थात असामान्यता का अध्ययन जैविक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक तीनों दृष्टिकोणों से करना आवश्यक है।

1.8 आज का असामान्य मनोविज्ञान (1651 से लेकर आज तक)

1900 से 1950 तक मानसिक अस्पताल ही मानसिक रोगियों के उपचार का मात्र सहारा बना रहा। लेकिन धीरे-धीरे मानसिक अस्पतालों द्वारा फिर वहीं व्यवहार अपनाया जाने लगा। फलस्वरूप उनका मानसिक रोग कम हाने के बजाए बड़ाता चला गया। कुछ लोग इस दौरान मर भी जाते थे किश्कर (1985) ने ऐसे मानसिक अस्पतालों का वर्णन करते हुए कहा है कि मानसिक रोगियों को इन अस्पतालों में एक छोटे से कमरे में रखा जाता था। कमरे में धूप, हवा ने के बारबर थी। उन्हे आधा पेट खाना दिया जाता था। अस्पताल के अधिकारियों द्वारा उनके साथ गाली-गलौज तथा लड़कियों के साथ देह व्यापार कराना आदि सामान्य था। फलतः मानसिक अस्पताल में रोगियों को रखने के प्रति लोगों की मनोवृत्ति खराब हो गई। आजकल अमेरिका में इन मानसिक अस्पतालों की जग सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य केन्द्रों ने ले लिया है। इन केन्द्रों का मुख्य उद्देश्य रोगियों का अमानवीय ढंगसे उत्तम उपचार करना है। इन केन्द्रों द्वारा मुख्यतः पाँच तरह की सेवाएं दी जाती है।

- चौबीस घंटा आपतकालीन सेवा
- अल्पकालीन अस्पताली सेवा
- अंशकालिक अस्पताली सेवा
- वाह्य रोगियों की देखभाल
- प्रशिक्षण एवं परामर्श कार्यक्रम

अमेरिका व कनाडा में आजकल सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र का एक नवीन रूप संकटकालीन हस्तक्षेप केन्द्र भी कहा जाता है विकसित हुआ। इन केन्द्रों का मुख्य उद्देश्य मानसिक

रोगियों को सहायता पहुंचाना है। आजकल हॉट लाइन दूरभाश केन्द्र द्वारा चिकित्सक रात या दिन के किसी भी समय मात्र दूरभाश से सूचना प्राप्त कर मानसिक रोगियों का उपचार करने के लिए तत्पर रहते हैं। इस तरह का दूरभाश केन्द्र सबसे पहले अमेरिका में लॉस एंजिल्स के चिल्ड्रन हॉस्पिटल में शुरू किया गया और इसकी सफलता से प्रभावति होकर अमेरिका के बड़े-बड़े शहरों एवं विश्वद्यालयों के कैम्पस में इस तरह की आपातकालीन सेवा प्रदान करने के लिए ये केन्द्र खोले गये। और विश्व के अन्य देशों में भी इस तरह के केन्द्र खोले जा रहे हैं।

1.9 सारांश

असामान्य मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी शाखा है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों तथा मानसिक प्रकिक्रयाओं का वस्तुनिष्ठ ढंगसे अध्ययन करना है। आजकल इसे मनोविकृति विज्ञान भी कहा जाने लगा है। जैसे-जैसे हम विभिन्न क्षेत्रों में अधिकाधिक सफलत हासिल करते जा रहे हैं वैसे-वैसे पहले की अपेक्षा आज हम तनाव, चिन्ता असंतोष कुसमाचोजन तथाअन्य अनके मानसिक विकारों से अधिक प्रभावति हो रहे हैं। स्वयं कोलमैन के शब्दों में-सत्रहवीं शताब्दी ज्ञान की अटठारहवीं शताब्दी तर्क की, उन्नीसवीं शताब्दी प्रगति की और बीसवीं शताब्दी चिन्ता का युग है।

जे0जी0 फ्राजर ने बड़े ही रोचक ढंग से मानव के बौद्धिक उत्पादन के अतिहास के सम्बन्ध में एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तु किया। इनके अनुसार आज के बुद्धिमान व्यक्ति के इतिहास की तुलना एक ऐसे कपड़े से की जा सकती है जिसकी बुनाई तीनों रंगों के धागों के माध्यम से हुई है। काला लाल व सफेद धाग। काल धागा जादू, लाल धागा धर्म व सफेद धागा विज्ञान का प्रतीक है। इस तरह इतिहास अनके घटनाओं की एक श्रृंखला है और यह बात असामान्य मनोविज्ञान के लिए बिल्कुल सत्य है। आज इस आधुनिक या वैज्ञानिक युग से पहले असामान्यता को जादू-टोने या देवी-देवताओं के प्रकोव के रूप में समझा जाता था। मानसिक विकृतियों का इतिहास मानव इतिहास के साथ ही जुडा़ हैं। अतः असामान्य मनोविज्ञान को समझने के लिए हमे उस पृष्ठभूमि को भी समझना पड़ेगा जिसके द्वारा असामान्य मनोविज्ञान को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से योगदान प्राप्त हुआ है।

1.10 शब्दावली

- **परिप्रेक्ष्य:** संदर्भ
- **कुसमायोजित:** दोषपूर्ण सामान्जस्य
- **संवेदी:** इन्द्रियों द्वारा अनुभूति
- **इस्लामिक देश:** मुश्लिम देश
- **उन्माद:** क्रियाओं का बढ़ना (उत्साह)
- **अपदूत:** बुंरी या दुष्ट आत्मा

- **अशंतः :** कुल मात्रा में
- **अलैकिक शक्ति:** देवी दवेता आदि
- **क्षतिग्रस्त:** दुघर्टनाग्रस्त
- **नैदानिक मनोविज्ञान:** मनोविज्ञान की वह शाखा जो मानसिक रोगों का निदान करते हैं।
- **मनोवैज्ञानिक दुष्क्रिया:** दुर्घनाग्रस्त

1.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

1. असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में पूर्व वैज्ञानिक काल कब से कब तक रहा।
    a) पुरानत समय से 1200 ई0 तक
    b) पुरातन समय से 1800 ई0 तक
    c) पुरातन समय से 1600 ई0 तक
    d) पुरातन समय से 1400 ई0 तक
2. इस्लामिक चिकित्सक एविसिना की पुस्तक का क्या नाम था।
    a) दि कैनन ऑफ मेडिसिन
    b) दि एबनारमल बिहैवियर
    c) दि इन्टरप्रिटेशन आफ डीम
    d) दि ह्यूमन ट्रीटमेंन्ट
3. मनोविज्ञान के इतिहास में मध्ययुग को कहा जाता है।
    a) सामाजिक युग
    b) मानवीय युग
    c) अंधकार युग
    d) ऐतिहासिक युग
4. फ्रायड ने मानसिक रोगियों की चिकित्सा हेतु किस विधि का प्रतिपाद किया।
    a) विरेचन विधि
    b) मनोविश्लेषणात्मक विधि
    c) मनोवैज्ञानिक विधि
    d) व्यवहारात्मक विधि
5. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान आन्दोलन की शुरूआत सबसे पहले किसने की।
    a) डोरथिया डिक्स ने
    b) फ्रायड ने
    c) युंग ने
    d) वाटसन ने

- सही गलत बताएये-

6. एबनार्मल शब्द की उत्पत्ति एनोमिलास शब्द से हुई है|
7. असामान्य मनोविज्ञान को आजकल मनोविकृति विज्ञान के नाम से जाना जाता है।
8. सॉप के देखकर चिल्लना असामान्यता की श्रेणी में आता है।
9. पाषाण युग में रोगियों के उपचार की दो मुख्य विधियाँ अपदूत निसारन विधि और ट्रीफाईनेशन विधि प्रचलित थी।
10. प्लेटों की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम दि रिपब्लिक था|
11. इस्लामिक चिकित्सा विज्ञान के प्रमुख चिकित्सक का नाम अरस्तू था।
12. जोहान वेयर एक युनानी चिकित्सक थे।
13. फिलिप पिनेल को आधुनिक मनोरोग विज्ञान का जनक कहा जाता है।
14. फ्रायड के शिष्यों में कार्ल युंग और एडलर का नाम उल्लेखनीय हैं।
15. कार्ल युंग ने मनोविज्ञान का नाम वैयक्तिक मनोविज्ञान औा एडलर ने विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान रखा।

उत्तर: 1) पुरातन समय से 1800 ई0. तक 2) दि कैनन आफ मेडिसिन

3) अंधकार का युग 4) मनोविश्लेशणात्मक विधि 5) डोरयिया डिक्स ने

6) सही 7) सही 8) गलत 9) सही 10) सही 11) गलत

12) गलत 13) सही 14) सही 15) गलत

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ0 अरूण कुमार सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान मोती लाल बनारसी दास प्रकाशन दिल्ली।
- डॉ0 आर0एन0 सिंह आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान प्रकाशन अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
- डॉ0 मोहम्मद सुलेमान असामान्य मनोविज्ञान , प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- डॉ0 लाभ सिंह, डॉ गोविन्द तिवारी, असमान्य मनोविज्ञान , प्रकाशन विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

- अति लघु उत्तरीय प्रश्न (एक पंक्ति में उत्तर दीजिये)

1. एबनार्मल शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई?
2. फ्रायड के गुरू का क्या नाम था?
3. मनोविश्लेषण विधि किसके नाम से जानी जाती है?
4. कांलयुग और एडलर किसके शिष्य थे?
5. स्टनले हॉल किस विश्वविद्यालय में कार्यरत थे?

- लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. असामान्य मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं?
2. असामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्धित प्रत्यय क्या हैं?
3. पूर्व वैज्ञानिक काल में मानसिक रोगियों का उपचार किस तरह किया जाता था।
4. असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में डोरथिया डिक्स के योगदान का वर्णन कीजिए?
5. अमेरिका में असामान्य रोगियों की देखभाल के लिए आजकल किस तरह के केन्द्रों की स्थापना की गई है?

दिर्घ उत्तरीय प्रश्न-

1. पूर्व वैज्ञानिक काल में असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास का वर्णन कीजिये?
2. मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रारम्भिक दर्शन (प्लेटो और अरस्तू) का क्या योगदान है?
3. 1801 से 1950 (A.D.) तक असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाले विकास का वर्णन कीजिये?

इकाई–2 सामान्य और असामान्य मनोविज्ञान में अन्तर असामान्यता की विशेषताएँ

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 असामान्य मनोविज्ञान क्या है
2.4 सामान्य व्यवहार एवं व्यक्तित्व का अध्ययन
2.5 असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति
2.6 सामान्य एवं असामान्य मनोविज्ञान में अन्तर
2.7 असामान्यता की विशेषताएँ
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

असमान्य मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसमें असामान्य व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है तथा इसकी विषय वस्तु मूल रूप से अभियोजित व्यवहारों, व्यक्तित्तव, अशान्ति एवं विघटित व्यक्तित्व का अध्ययन करने एवं उपचार के तरीकों पर विचार से साम्बन्धित है।

पहले की तुलना में आज हम तनाव, चिन्ता , असंतोष, कमसमायोजन तथा अन्य मानसिक विकारों एवं समस्याओं से बहुत प्रभावित हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं में अत्यधिक वृद्धि के बावजूद भी आज व्यक्ति स्वंय से खुद से प्रायः क्रम सन्तुष्ट है। वह जितने मानसिक विकारों से पीड़ित है उतना किसी अन्य चीजों से नहीं।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कोलमैन के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी ज्ञान का युग रहीं है अटठारहवीं शताब्दी तर्क का युग, उन्नीसवीं शताब्दी प्रगति का युग और बीसवीं शताब्दी चिन्ता का युग है। अर्थात मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आने वाला समय चुनौतीपूर्ण होगा। इसका मुख्य कारण मनुष्य

की बढ़ती हुई इच्छाएँ, आकांक्षाएँ है। जिसके कारण व्यक्ति मूल्यों और द्वंद्व में उलझता जा रहा है। फलस्वरूप हमारे सामने व्यावहारिक समायोजन की समस्या विकट रूप लेती जा रही है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- असामान्य मनोविज्ञान के बारे में बता सकेंगे।
- असामान्य मनोविज्ञान किसे कहते हैं, के बारे में बता सकेंगे|
- सामान्य एवं असामान्य मनोविज्ञान के अन्तर के बारे में बता सकेंगे|
- असामान्यता की विशेषताओं के बोर में बता सकेंगे।
- सामान्यता एवं असामान्यता जे जुड़े विभिन्न पहलुओं के बारे में बता सकेंगे।

2.3 असामान्य मनोविज्ञान क्या है ?

सामन्यतः सामान्य और असामान्य शब्द को दो भागों में बाँटा गया है- सामान्य शब्द लैटिन भाषा के नॉरमा (Norma) शब्द से बना है, जिसका अर्थ है बढ़ई का स्केल जिस तरह से बढ़ई अपने स्केल का प्रयोग करके यह निश्चित करता है कि किस परिस्थिति में क्या सामान्य मापन होगा ठीक उसी अर्थ में (Normal) का शब्द का प्रयोग मानक के लिए किया जाता है।

Abnormal शब्द की उत्पत्ति Anomelos शब्द से हुई है (Ano+Melos=Not Regular) अर्थात जो नियमित नहीं है। अतः हम कह सकते है कि असामान्य व्यवहार वह व्यहार है जो अनियमित है। Abnormal शब्द का शाब्दिक अर्थ सामान्य से दूर हटा हुआ। अर्थात वह व्यवहार जो सामान्य से दूर हटा हुआ व्यवहार।

असामान्य शब्द का अर्थ जो समान्य नहीं है या असामान्य से भिन्न है। किस्कर के अनुसार वे मानव व्यवहार एवं अनुभूतियाँ जो साधारणतः अनोखे असाधारण या पृथक है असामान्य समझे जाते हैं। अतः असामान्य मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें असामान्य व्यवहार या असामान्य व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। यह हानिकारक है। असामान्य व्यवहार का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान की विधियों, प्रत्यय, नियमों, खोजों, आदि के आधार पर ही किया जाता है। असामान्य मनोविज्ञान में अनके प्रकार की असामान्यताओं का अध्ययन जैसा - असामान्य प्रेरणात्मक क्रियाएँ, असामान्य मनोगत्यात्मक प्रक्रियाएँ, और असामान्य व्यक्ति जैसे- मानो विक्षिप्तता, चरित्र दोष, मानसिक दुर्बलता आदि व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

असामान्य मनोविज्ञान में हम मनोविज्ञान की विषय सामग्री में निम्न चीजो को सम्मिलित करते हैं-

1. असामान्य व्यक्ति के पर्यावरण का अध्ययन करते हैं। इसके अन्तर्गत असामान्य व्यक्ति के चारों ओर की परिस्थितियाँ, वस्तुए तथा उसकी वाहय एवं आन्तरिक स्थितियाँ आदि आती है।
2. व्यक्ति परिस्थितियों के प्रति जो मानसिक प्रतिक्रिया करता है उसे अनुभूति कहते हैं। असामान्य मनोविज्ञान मुख्य रूप से असामान्य अनुभेतियों का अध्ययन करता है।
3. जिन क्रियाओं का सम्बन्ध दोषपूर्ण समायोजन से होता है उसे असामान्य व्यवहार कहते हैं। ये व्यवहार आन्तरिक और वाह्य दोनों हो सकते हैं। असामान्य व्यवहारों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।
   (क)वे व्यवहार के कुसमायोजन उत्पन्न करते हैं।
   (ख)वे व्यवहार जिनमें कुसमायोजन के लक्षण विद्यमान होतो हैं।
   (ग) वे व्यवहार जो कुसमायोजन के परिणामस्वरूप ही होते हैं।

अतः असामान्य मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जो मुख्यतः उप व्यक्तियों का अध्ययन करता है जो मानसिक रूप से विकृत होते हैं। उनके व्यवहार में इतनी अधिक भिन्नता होती है कि उन्हें सामान्य व्यक्ति की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। असामान्य मनोविज्ञान के मुख्यतः दो रूप होते हैं-सैद्धान्तिक और व्यावहारिक कौन सी विशेषताओं के कारण अमुक व्यक्ति असामान्य है या उसके कौन सा रोग है यह सैद्धान्तिक रूप है। परन्तु व्यावहारिक रूप से यह केवल विभिन्न मानसिक व शारीरिक रोगों का वर्णन मात्र ही नहीं कराता बल्कि यह भी बताता है कि इसका निदान कैसे हो, कौन-कौन सी अचारात्मक पद्धतियाँ को उपयोग किया जाए। व्यावहारिक शाखा के अन्तर्गत सामान्य व असामान्य दोनो प्रकार के व्यक्तियों को लाभ पहुँचता है। सामान्य व्यक्ति ये जान लेता है कि कौन-कौन सी विशेषताओं लक्षणों तथा कारणों से मानसिक अवरोध उत्पन्न या विकासित होता है। दूसरी और यह भी बताता है कि असामान्य व्यक्तियों या रोगियों के साथ अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए। बल्कि उसके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे कि वह ठीक हो सकें। एक सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन बिता सकें।

एक सर्वेक्षण के अनुसार हमारे यहां मनस्ताप, मनोदैहिक, विकार मनोविक्षित्रता, चाररिलिक विकृति, नशा, मतिस्ष्कीय, विक्रति, मानसिक दुर्बलता के रोगियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है, क्योंकि आज विश्व के सभी देशों में बेकारी, घृणा, तनाव, संघर्ष, चिन्ता एवं दवाब जैसे मूल कारकों की मात्रा में कारकों में मात्रा में काफी वृद्धि हुई है। इस समय हमारे यहां वृक्षों की संख्या काफी है जिसमें से 20 लोग मानसिक बीमारियों से ग्रस्त है।

अतः आधुनिक युग में विकसित और विकाशील देशों में असामान्य व्यवहार के अध्ययनों पर विशेष बल दिया जा रहा है। कोलमैन के शब्दों में-आधुनिक युग ज्ञान की महान विवृद्धि और तीव्र सामाजिक परिवर्तन का युग है। असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा हम मानव जीवन की

समस्याओं, दुख, दर्द, चिन्ता, तनाव आदि को कम करके मानव जीवन को खुशहाल बना सकते हैं। आधुनिक युग में मनोविज्ञान का महत्व निम्न क्षेत्रों में है-

1. असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा व्यक्ति अपनी अपने दैनिक जीवन की समस्याओं का हल करना आसानी द्वारा व्यक्ति अपनी अपने दैनिक जीवन की समस्याओं का हल करना आसानी से सीख लेता है।
2. असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा व्यक्ति यह आसानी से समझ लेता है कि किस तरह एक सामान्य व्यक्ति मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है तथा चेतन व अचेतन मन के द्वारा समस्याओं का समाधान किस तरह होता है।
3. असामान्य मनोविज्ञान के ज्ञान से माध्यम से मानसिक रोगों के लक्षण, कारण एवं उपचार तथा न निदान में सहायता मिलती हैं
4. असामान्य मनोविज्ञान का शिक्षा के क्षेत्र में विशेष महत्व है जिन छात्रों को किसी प्रकार का मानसिक रोग या दोष होता है होते हैं तो उनकी शिक्षा किस प्रकार की हो उनकी असामान्यता का उपचार जैसे हो, आदि को समझने में सहायता मिलती है।
5. अपराधियों एवं बाल-अपराधियों को सुधारने में असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन की विशेष आवश्यकता होती है। क्योंकि असामान्य मनोविज्ञान में हम समाज विरोधी व्यवहार या आचरण आदि का अध्ययन करते हैं।
6. असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा क्योंकि दूसरे व्यक्तियों के बारे में आसानी से समझ लेता है। उसके हाव-भव आदि के आधार पर व्यक्ति ये पता लगा लेता है कि वह कहीं किसी गलत कार्यां में रूचि तो नहीं ले रहा है।
7. इसके अध्ययन के द्वारा कानून को यह समझने में सहायता मिलती है कि वास्तविक अपराधी कौन है और वह अपराधी कही असामान्य तो नहीं है।
8. असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा व्यक्ति में आत्म विश्वास का जन्म होता है क्योंकि व्यक्ति यह जान लेता है कि कोई व्यक्ति असामान्य हो सकता है तथा उपचार के माध्यम से उसे सामान्य या समायोजित बनाया जा सकता है।
9. प्राचीन काल में ये विश्वास किया जाता था कि असामान्यता का कारण भूत-पिचाश या दैवी प्रकोप है। असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वार ये स्पष्ट हुआ कि ईश्वरीय प्रकोप या भूत-पिचाश असामान्यता का कारण न होकर बल्कि वंशानुक्रम मनोवैज्ञानिक कारक, समाजिक कारक, पारिवारिक कारण आदि होते है।।
10. युद्ध को रोकने के लिए व्यक्ति के मन पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में युद्ध के कुछ न कुछ मनोवैज्ञानिक कारक होते हैं। इन कारणों की जाँच और युद्ध की रोकथाम तथा शान्ति बनाये रखने में असामान्य मनोविज्ञान काफी उपयोगी एवं सहायक सिद्ध होता है।

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है और व्यवहार के मुख्यतः दो रूप होते है। सामान्य और असामान्य मनोविज्ञान उन व्यक्तियों का अध्ययन करता है जिनके व्यवहार में सामान्य व्यक्ति की उपेक्षा कुछ विशेषताएं होती है। उनके व्यवहार में कुछ ऐसी क्रियाएं होती है जो सामान्य व्यक्ति में नहीं पाई जाती है। जैसे अगर एक नया व्यक्ति नये व्यक्तियों के समूह के समक्ष्ज्ञ नये विषयों पर भाषण देने में प्रथत बार डरता-कांपता है तब इस प्रकार का व्यक्ति सामान्य व्यक्ति कहलायेगा। लेकिन अगर कोई जाना-पहचाना व्यक्ति, जाने पहचाने विषय पर जाने पहचाने व्यक्तियों के सामने बोलने में हिचकिचाता है तो इस प्रकार के व्यक्ति को असामान्य कहेगें क्योंकि यह व्यक्ति अनेक बार बोल चुकने के बाद हिचकिचाहट का अनुभव कर राह है। अतः असामान्य मनोविज्ञान की प्रकृति समझने के लिए हमें सामान्य व असामान्य दोनों की तरह के व्यक्तियों के बारे में जानना आवश्यक है।

2.4 सामान्य व्यवहार एवं व्यक्तित्व का अध्ययन

सामान्य व्यक्ति कौन है सामान्य व्यक्ति वह है जो सामान्य रूप से अपनी क्रियाओं को करता हो अपने दैनिक क्रिया कलापों पर विचार पूर्णक निर्णय लेता हो तथा सामाजिक नियमों एवं मान्यताओं का एक सीमा तक पालन करता हो। अर्थात एक सामान्य व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक सभी प्रकार की परिस्थितियों के साथ समायोजन तथा सन्तुलन बनाये रखता है। असामान्य व्यवहार एवं व्यक्तिव को समझने के लिए अति आवश्यक है कि पहले सामान्य व्यवहार एवं व्यक्ति के बारे में समझा जाए। सिमाँण्ड के अनुसार वह व्यक्ति सामान्य व्यथ्कत है तो भयावह आद्याातो और नैराश्य उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों पर विजय पर विजय प्राप्त कर लेता है। सामान्य व्यवहार या आसामान्य व्यक्तित्व के लिए निम्न विशेषतओं का होना अत्यन्त आवश्क है-

1. सामान्य व्यक्ति में सुरक्षा की उपयुक्त भावना पाई जाती है वह अपने आपको न तो पूरी तरह सुरक्षित समझता है और नहीं पूरी तरह असुरक्षित। विभिन्न पारिवारिक परिस्थितियों में, सामाजिक औा व्यावसायिकक परिस्थितियों में वह अपने आपको उसी प्रकार सुरक्षित समझता है जिस तरह से समाज के अधिकांश व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित समझते हैं और उसे किसी प्रकार की कोई भी हानि हो सकती है, इस प्रकार की भावना सुरक्षा का अत्यधिक बड़ा हुआ रूप है जिसे असामान्य समझा जायेगा।
2. सामान्य व्यक्ति में उपयुक्त मात्रा में संवेगात्मकता पाई जाती है वह अपने संवेगों की अभिव्यक्त जहां जिस रूप में आवश्यक होती है करता है। वह न तो बहुत अधिक संवेगों की अभिव्यक्ति करता है और न ही बहुत कम उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्ति समाज के अधिकांश व्यक्तियों की ही भांति होती है। सामान्य व्यक्ति दूसरों के सुख-दुःख में सामान्य ढंग से शामिल होता है।
3. सामान्य व्यक्ति स्वंय का मूल्यांकन उतना ही करता है जितना उकसी, शारीरिक और मानसिक योग्यताएं होती है उसकी जितनी योग्यताएं और उपलब्धियाँ होती है इनकी उपस्थिति का इतना

ही अनुभव करता है। वह अपने अन्दर उन्ही इच्छाओं और योग्यताओं का अनुभव करता है जिनकी सामाजिक व व्यक्तिगत दृष्टि से भी उपयुक्त समझता है।

4. व्यक्ति अपनी योग्यताओं और सीमाओं से भली भांति परिचित होता है । वह अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं, प्रेरणाओं, भावनाओं, संवेगों, महत्वाकांक्षाओं, लक्ष्यों आदि को समझता है कि वह क्या कर सकता है और क्या नहीं। इसका उसे पूरा ज्ञान होता है।
5. सामान्य व्यक्ति का व्यक्तित्व संगठित होता है, अर्थात व्यक्तित्व के तीनों पक्षों इूट, इगो और सुपर इगो में र्प्याप्त मात्रा में संतुलन होता है। सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के यह तीनों पक्ष सहयोग से कार्य करते हैं इनके व्यक्तित्व में स्थिरता आई जाती है।
6. सामान्य व्यक्ति अपने समाज की परिस्थितियों और योग्यताओं के अनुसार अपने जीवन लक्ष्य अपने समाज की परिस्थितियों और योग्यताओं के अनुसार अपने जीवन लक्ष्य बनाता है अपने निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। और उसका जीवन लक्ष्य समाज के नियमों और मूल्यों के अनुसार होता है।
7. सामान्य व्यक्ति में पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता होतीहै पहले की गई गललियों को वह छोड़ता है और सुखद एवं लाभदायक अनुभवों से आगे लाभ उठाता है। सामान्य और असामान्य व्यक्ति स्पष्ट रूप से एक-दूसरे से भिनन होते है और यह विचार आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व तक पहले तक भी प्रचलित था।
8. सामान्य व्यक्तियों में कानून की मर्यादा की रक्षा तथा सामाजिक परम्पराओं व मर्यादाओं के सम्मान का गुण विद्यमान होता है। ये सामाजिक उत्सवों में भाग लेते है व सामाजिक उपरेशों को स्वीकाकर करते है। साथ ही सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक जाति आदि के नियमों की अवहेलना नहीं करते हैं। सामान्य व्यक्तियों में असाधारण उत्तेजना, एकाकीपन, संदेहशीलता आदि गुण नहीं होते हैं। सामान्य व्यक्तियों में ये गुण औसत मात्रा में ही पाये जाते है। यदि ये गुण औसत से अधिक मात्रा में पाए जाते हैं उनमें असामान्यता दिखाई देने लगती है।
9. सामान्य व्यक्ति जीवन की अनेक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नौकरी, व्यापार आदि करता है तथा अपनी विभिन्न क्रियाओं को करते समय बुद्धि का सहारा लेता है। छोटी-छोटी कठिनाई यों या विफलताओं पर घबराता नहीं बल्कि साहस का परिचय देता है। ऐसे व्यक्तियों के जीवन में अनेक कठिनाई याँ आती है लेकिन वे अपना सन्तुलन नहीं खोते बल्कि उन्हें दूर करने का प्रयास भी करता है।
10. सामान्य व्यक्ति अपने व्यवहार को समय एवं परिस्थिति के अनुसार समायोजित करने का प्रयास करते हैं। दुःखद परिस्थिति में वह दुःख के भाव तथा सुखद परिस्थिति में वह सुख के भाव प्रकट करता है।
11. एक समान्य व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी क्रियाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक या राजनैतिक, नियमों, परम्पराओं, नैतिक आदर्शों आदि का सही रूप में पालन कर रहा है या नहीं। वह प्रायः सही कार्यों को करता है तथा गलत कार्यों से बचने का प्रयास करता है।

12. ऐसा नहीं कि एक व्यक्ति गलत कार्य न करता हो वह जीवन में अनेक गलतियाँ करता है लेकिन यह अनुभव होते ही कि उससे वह काम गलत हो गया है वह पश्चाताप भी करने लगता है।

2.5 असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति

किसी भी व्यक्ति में असामान्य नहीं होते, बल्कि इसका एक इतिहास होता है असामान्य व्यवहार करने पर स्पष्ट रूप से हमें तीन तरह की विचारधाराएं देखने को मिलती है।

1. जैविक विचारधारा
2. मनोसामाजिक विचारधारा
3. सामाजिक सांस्कृतिक विचारधारा

1) जैविक विचारधारा-

जैविक कारक से तात्पर्य उन सभी कारकों से होता है जो जन्म के समय या उससे पहले से ही व्यक्ति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौजूद होते हैं और बाद में असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति में किसी न किसी तरह से मदद करते हैं। जैविक कारकों का स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है कि वह व्यक्ति के सभी पक्षों पर अपना प्रभाव डालता है इसलिए इन कारकों का सामान्य एवं असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति में निम्न कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है-

i) **आनुवांशिक दोष-** माता से किसी प्रकार के दोष से यह स्वाभाविक है कि उनके बच्चों में यह असामान्यता उत्पन्न हो जाए। ये दोष दो प्रकार से हो सकते हैं।

a. गुणसूत्रीय असामान्यता b. दोषपूर्ण जीन्स

अनुवांशिकी के क्षेत्र में किए गये शोधों से यह स्पष्ट हुआ हैकि गुणसूत्र की संख्या या उसकी संरचना में असामान्यता होने से तरह - तरह के मानसिक विकृति या असामान्य व्यवहारों की उत्पत्ति होती है।

ii) **शरीरगणनात्मक कारक-** कुछ विशेष एवं दोषपूर्ण शरीरगठनात्मक कारकों से असामान्य व्यवहारों की उत्पत्ति देखी गई जैसे-शरीर गठन या डील- डौल, शारीरिक विकलांगता या मूल प्रतिक्रिया प्रवृतियाँ आदि। शरीर गठनात्मक कारकों को तीन मुख्य भागों में बॉट सकते हैं-

1. शरीरगठन या डील- डौल
2. शारीरि विकलांगता
3. प्राथमिक प्रतिक्रिया प्रवृत्ति

अनेक अध्ययनों द्वारा यह पाया गया है कि एक विशेष डील-डौल वाले व्यक्ति द्वारा असामान्य व्यवहार अधिक किया जाता है। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि शारीरिक रूप

से आकर्षक नहीं होने पर उस व्यक्ति के साथ लोगों का व्यवहार इस ढंग का होता है कि उस व्यक्ति में हीनता का भाव, चिन्ता, निराशा आदि उत्पन्न हो जाता है जो धीरे-धीरे उसमें समायोजन सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न कर देती है।

प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही बाहरी वातावरण के प्रति प्रतिक्रया करने के एक प्रवृत्ति होती है जिसे मूल अनुक्रिया प्रवृति कहा गया है। मनोवैज्ञानिक द्वारा किये गए शोधों से यह स्वपष्ट है कि 7 से 10 बच्चों की मूल अनुक्रिया प्रवृति दोषपूर्ण होती है।

iii) **जैविक रासायनिक कारक-** व्यक्ति में असामान्य व्यवहार होने का कारण उसको शरीर में कुछ रासायनिक परिवर्तन हो सकता है या पोष्टिक आहार की कमी हो सकती है या हारमोन्स में गड़बडी के कारण भी होता है। मानव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्न कारक प्रभाववित करते हैं।

1. रासायनिक पदार्थ
2. पौष्टिक आहार की कमी से सम्बन्धित असामान्य व्यवहार
3. हारमोन्स एवं असामान्य व्यवहार

iv) **मस्तिष्कीय दुष्क्रिया-** असामान्य व्यवहार का एक मुख्य कारण मस्तिष्क में दैहिक क्षति का होना है फलतः व्यक्ति में कई तरह के असामान्यता सम्बन्धी लक्षण दिखाई देने लगते हैं। मस्तिष्कीय दुष्क्रिया कई कारणों से उत्पन्न हो सकती है।

1. मस्तिष्कीय चोट
2. संक्रामण रोग
3. मादक पदार्थों के अधिक सेवन से
4. अत्यधिक तनाव के कारण

2) मनोसामाजिक कारक-

अर्थात ऐसे विकासात्मक प्रभाव जो व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से इतना पेरशानकर देता है कि व्यक्ति अपने आपको सामाजिक वातावरण के साथ ठीक ढंग से समायोजित नहीं कर पता है और धीरे-धीरे व्यक्ति में असामान्य व्यवहार के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

i) संज्ञानात्मक कारक

ii) आरम्भिक वंचन या आद्यात-

a. संस्पानीकरण
b. घर में वंचन
c. बाल्यावस्था का सदमा या मानसिक आद्यात

iii) अर्प्याप्त जनकता

a. अति सुरक्षा का होना
b. अत्यधिक बंधन का होना
c. अवास्तविक माँग का होना
d. दोषूपर्ण अनुशासन का होना
e. अर्प्याप्त एवं अतार्किक संचार

iv) रोगात्मक पारिवारिक संरचना व्यवहार

a. रोगात्मक पारिवारिक संरचना व्यवहार
b. बेमेल विवाह
c. बिखरे हुए परिवार
d. विघ्नटित परिवार

v) कुसमायोजित संगी-साथी के साथ सम्बन्ध

आदि ऐसे कई मनोसामाजिक कारक है जिनके कारण व्यक्ति में मानसिक विकृति उत्पन्न होती है इन सभी मनोसामाजिक कारकों के आरंभिक वंचन (inadequate Parenting) तथा रोगात्मक पारिवारिक संरचना अधिक महत्वपूर्ण कारक है।

3) सामाजिक-सांस्कृतिक कारक-

विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के अलग-अलग मानक है, मूल्य एवं व्यवहार होते हैं। जिनका मानव व्यवहार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति में कुछ सामाजिक सांस्कृतिक कारकों का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है-

1) निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर
2) अनुपयुक्त या दोषपूर्ण सामाजिक भूमिका के के कारण
3) आर्थिक कठिनाई याँ एवं बेरोजगारी
4) सामाजिक - सम्बन्ध
5) सामाजिक - सांस्कृतिक वातावरण
6) वैवाहिक समस्याएं
7) यौन भूमिका

असामानय व्यवहार की उत्पत्ति में जैविक मनो समाजिक, सांस्कृतिक- सामाजिक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कोई भी मानसिक विकृति ऐसी नहीं होती हैं। जिसमें केवल एक ही तरह के कारकों की भूमिका हो, बल्कि कई कारक मिल कर मानसिक विकृति को जन्म देते हैं असामान्य व्यवहार को समझने के लिए इन तीनों कारकों को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

2.6 सामान्य एवं असामान्य मनोविज्ञान में अन्तर

सामान्यतः एक निश्चित सीमा के ऊपर असामान्यता पहुँचने पर हमारे लिए चिन्ता का विषय बनती है परन्तु कुछ व्यवहार तो ऐसे होते हैं तो कि असामान्य व्यक्तियों में ही पाये जाते हैं और इन्हीं व्यवहारों के आधार पर हम सामान्य असामान्य में भेद करते हैं। अतः सामान्य और असामान्य व्यवहार में मुख्य अन्तर निम्न है-

- परिस्थ्ति की अनुकूलता के आधार पर भी अन्तर किया जाता है। जो व्यवहार परिस्थिति के अनुकूल होता है उसे सामान्य कहते हैं और जो व्यवहार परिस्थिति के अनुकूल नहीं होता है उसे असामान्य कहते हैं। जैसे-किसी की मृत्यु पर शोक प्रकट करना एक सामान्य व्यवहार है और खुशी प्रकट करना एक असामान्य व्यवहार है।
- संवेगात्मक परिपक्वता के आधार पर-संवेगात्मक परिपक्वता का अर्थ संवेगात्मक नियंत्रण एवं संवेगात्मक स्थिरता से है। सामान्य व्यक्ति जो अपने संवेगों जैसे क्रोध, भय, खुशी आदि पर नियंत्रण रखता है और दूसरी आरे असामान्य व्यक्ति जो अपने संवेगों पर नियंत्रण रखता है। कक्षा में शिक्षक द्वारा क्रोध पर नियंत्रण रखना एक सामान्य प्रक्रिया है लेकिन शिक्षक अपने संवेगों पर नियंत्रण खो देना अध्यापन कार्य बाधित करके उस पर आक्रमण करना प्रहार करना एक सामान्य व्यवहार है।
- नैतिक दृष्टिकोण- के अनुसार, सामान्य व्यक्ति का व्यवहार उसकी संस्कृति धर्म और नैतिक नियमों के अनुसार होता है तथा असामान्य व्यक्ति का व्यवहार इसके अनुसार नहीं होता है। कभी-कभी नैतिक और अनैतिक व्यवहार को परिभाषित करने में कठिनाई होती है। क्योंकि एक समाज में जो नैतिक है वहीं दूसरे समाज में अनैतिक है, जैसे-किसी लड़की को भगाकर ले जाना अनैतिक व्यवहार है जबकि किसी जनजाति में लड़की भगाकर ले जाना नैतिक व्यवहार है।
- सामाजिक दृष्टिकोण- इस दृष्टिकोण के अनुसार जिस व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक नियमो, प्रथाओं, रीति-रिवाजों के अनुरूप होता है, वह व्यक्ति सामान्य होता है तथा जिस व्यक्ति का व्यवहार इसके अनुरूप नहीं होता है उसे असामान्य कहा जाता है। उस व्यक्ति को भी असामान्यता की श्रेणी में रखा जाता है जो समाज कल्याण में बाधक है, जो व्यक्ति समाज के लिए हितकारी कार्य करता है उसे सामान्य कहा जाता है। प्रत्येक समाज के सामाजिक नियम अलग-अलग होते हैं। एक समाज में उन्हीं सामाजिक नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति असामान्य समझा जायेगा।
- सांस्कृतिक दृष्टिकोण- के अनुसार वह व्यक्ति सामान्य व्यक्ति है जो अपनी संस्कृति के नियमो, मूल्यों, आदर्शों आदि के अनुसार व्यवहार करता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति इन नियमों के विपरीत कार्य करता है उसे असामान्य व्यक्ति या व्यवहार कहेंगें। प्रत्येक संस्कृति में कुछ न कुछ

परिपवर्तन होते रहते हैं। अतः एक परिस्थिति में जो व्यवहार सामान्य है वहीं दूसरी परिस्थिति में असामान्य।

- मानसिक सन्तुलन के आधार पर- सामान्य तथा असामान्य के बीच भेद करने का यह एक मुख्य आधार है। जिस व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन बना रहता है उसे सामान्य और जिस व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन गड़बड हो जाता है या व्यक्ति मानसिक सन्तुलन खो बैठता है उसे असामान्य कहते हैं। यूँ तो समाज के प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ चिन्ता आदि के लक्षण देखे जाते हैं लेकिन किसी काम को करने में थोडी़ चिन्ता का होना आवश्यक है। इन्हें हम असामान्यता की श्रेणी में नहीं रख सकते हैं।
- व्यक्ति परिपक्वता का दृष्टिकोण- प्रत्येक व्यक्ति को अपने चारों ओर के वातावरण अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उसमें रहने वाले लोगों के साथ समायोजन करना पड़ता है। जो व्यक्ति इस प्रकार का समायोजन करने में सफल हो जाते हैं उन्हें सामान्य व्यक्ति कहते हैं और जो व्यक्ति उस वातावरण या उस में रहने वाले व्यक्तियों के साथ अपना समायोजन करने में असफल रह जाते हैं उन्हें असामान्य व्यक्ति कहते हैं। दोषपूर्ण समायोजन भी असामान्यता का मुख्य लक्षण है।
- सूझपूर्ण व्यवहार- सामान्य व्यक्ति को यह बाता स्पष्ट होती है कि वह क्या कर रहा है, कैसे कर रहा है, उसे कौन सा व्यवहार किस परिस्थिति में करना चाहिए । ऐसे व्यक्तियों को नैतिक-अनैतिक, सही गलत का स्पष्ट ज्ञान होता है जबकि असामान्य व्यवहार में इनकी कमी देखी जाती है।
- दोष भाव के आधार पर- सामान्य तथा असामान्य के बीच भेद समझने का आधार दोष भाव तथा पश्चाताप भाव है। गलती करता मनुष्य की कमजोरी है। अतःकिसी गलत अनैतिक या असामाजिक कार्य किसी कारणवश हो जाने के बाद यदि व्यक्ति में दोष एवं पश्चाताप के भाव हो तो वह सामान्य व्यक्ति होगा। दूसरी ओर गलत अनैतिक या असामाजिक कार्य करने के बाद भी उसे दोष भाव न और उसके लिए पश्चाता न करें तो अवश्य ही वह अवश्य ही वह असामान्य व्यक्ति होगा।
- समायोजन के आधान पर- सामान्य तथा असामान्य व्यक्ति की पहचान का एक ठोस आधार समायोजन है। समायोजन का अर्थ है- अपनी माँगों आवश्यकताओं और समायोजन के बीच सन्तुलन। सामान्य व्यक्ति वह है, जो कभी अपनी आन्तरिक माँगों में परिवर्तन लाकर और कभी बाह्य माँगों में परिवर्तन लाकर संतुलित जीवन जीने में सफल होता है। दूसरी और असामान्य व्यक्ति वह है जो अपनी आन्तरिक माँगों तथा अपने वातावरण की माँगों के बीच समझौता करने एवं संतुलित जीवन जीने में विफल हो। फलतः अपने परिवार तथा समाज के सदस्यों के साथ उनके सम्बन्ध तनावपूर्ण, संघर्षपूर्ण तथा कलहपूर्ण होते हैं।
- वास्तविकता का ज्ञान- सामान्य व्यक्तियों को वास्तविकता का पूर्ण ज्ञान होता है। वह हमेशा अपने व्यवहार एवं क्रियाओं को सामाजिक मानकों की वास्तविकता के अनुकूल बनाये रखता

है। उन्हें काल्पनिक सच्चाई एकदम पसन्द नहीं होती हैं फलतः उनका व्यवहार, भ्रम, विभ्रम से ग्रस्ति नहीं होता है। दूसरी ओर असामान्य व्यक्तियों का व्यवहार काल्पनिक एवं अवास्तविकताओं से भरा होता है। असामान्य व्यक्तियों का व्यवहार काल्पनिक एवं अवास्तवकिताओं से भरा होता है। असामान्य व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं रहता है कि सामाजिक आर्दश क्या है? मानक क्या है? तथा उसकी हकीकत क्या है। उन्हें तो बस अपनी काल्पनिक दुनिया से मतलब होता है। वे लम्बी उडा़ने भरते रहते हैं। इनका व्यवहार-विभ्रम से इतना ग्रसित रहता है कि उनके व्यवहार में वास्तविकता उनके पास फटकती तक नहीं है।

- अपनी देखभाल- सामान्य व्यक्तियों का व्यवहार अपनी देखभाल एवं सुरक्षा के लिए पर्याप्त होता है। वह ऐसा व्यवहार करता है जिससे उसके अंह को चोट न पहुचे तथा उसका मानसिक स्वास्थ्य बना रहे। वह हर संभव कोशिश करता है कि उसक व्यक्तित्व संतुलित एवं स्वस्थ्य बना रहे। वह कभी कोई ऐसा व्यवहार नहीं करता है कि उसका ही अस्तित्व खते में पड़ जाए। दूसरी ओ असामान्य व्यक्तियों के व्यवहार में उतनी कुशलता नहीं होती है कि वह अपनी देखभाल कर सके एवं अपने आप को पर्याप्त सुरक्षित रख सके। वास्तव में ऐसे लोगों की देखभाल परिवार या समाज के अन्य लोगों को ही करनी पड़ती है-

जे0एफ0 ब्राउन दृष्टिकोण- ब्राउन ने सामान्य एवं असामान्य शब्द का वर्णन बड़े ही सुन्दर एवं तर्कपूर्ण तरीके से किया है।

इनके अनुसार- असामान्य व्यवहार सामान्य व्यवहार का अति विकसित एवं विकृति रूप है जैसे- यदि भय उत्पन्न करने वाले परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षा का प्रत्यन्न करते हैं, यह कोशिश एक सामान्य तरीका है। जब बिना किसी उपयुक्त परिस्थिति के व्यक्ति असंगत भय (भय का अतिविकसीत रूप) प्रदर्शित करें तो यह व्यवहार असामान्य व्यवहार कहलायेगा। ब्राउन के दृष्टिकोण की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्न हैं।

1. प्राचीन दृष्टिकोण के अनुसार सामान्य, असामान्य और प्रतिभाशाली तीन अलग-अलग वर्ग है। जबकि ब्राउन के अनुसार सामान्य, असामान्य और प्रतिभाशाली व्यक्तियों में माला का अन्तर है प्रकार का नहीं।
2. असामान्य, समान्य और प्रतिभाशाली व्यक्तियों को एक ही नियमाँ के आधार पर समझा जा सकता है, अलग-अलग नियमों की आवश्यकता नहीं होती है। असामान्य व्यक्तियों की बड़बड़ाहट उनके लिए उतनी ही अर्थपूर्ण होती है, जितने की प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए तर्कपूर्ण कथन महत्वपूर्ण होते हैं।
3. इनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में मानसिक रोगों के लक्षण कुछ न कुछ माता में अवश्य होते हैं, अर्थात कोई भी व्यक्ति रोग के लक्षणों से रहित नहीं होता है।

4. ब्राउन के अनुसार, असामान्य व्यवहार सामान्य व्यवहार का अति विकसित अथवा विकृति रूप है। अतः सामान्य व्यक्तियों के अध्ययन से असामान्य व्यक्तियों को हम समझ सकते हैं। और असामान्य व्यक्तियों के अध्ययन से सामान्य व्यक्तियाँ के व्यवहार को समझ सकते हैं।
5. ब्राउन का दृष्टिकोण बहुत कुछ वैज्ञानिक है। आधुनिक युग के मनोवैज्ञानिक का सामान्यता एवं असामान्यता के सम्बन्ध मेंजो विचार है, वह ब्राउन के विचारों के अनुकूल है।

अतः स्पष्ट है कि सामान्य तथा असामान्य व्यक्तियों के बीच अथवा सामान्य एवं असामान्य व्यवहारों के बीच अन्य सामान्यता एवं असामान्यता के बीच कई अन्तर है उक्त विवरण द्वारा स्पष्ट है कि सामान्य एवं असामान्य दोनो तरह के बीच कई अन्तर पाया जाता है। असामानय व्यवहार की विशेषताओं के अन्तर्गत जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है वे असामान्य एवं सामान्य एवं सामान्य व्यवहार मं अन्तर को भी इंगित करती है। सामान्यता एक निश्चित सीमा के ऊपर असामान्य ता पहुँचनें पर हमारे लिए चिन्ता का विषय बनती है परन्तु कुछ व्यवहार तो ऐसे होते ही है जो कि असामान्य व्यक्तियों में ही पाये जाते हैं जैसे- विक्षिप्त किसी दशा में सड़क पर निकल जाता है सामान्य व्यक्ति ऐसा नहीं करेगा।

2.7 असामान्यता की विशेषताएँ

असामान्य व्यक्ति वह है जिसका व्यवहार और व्यक्तित्व सामान्य नहीं होता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पेज के अनुसार असामान्य व्यक्ति वह है जिसकी सीमित बुद्धि होती है। संवेगात्मक अस्थिरता पायी जाती है। व्यक्तित्व विघटित होता है। इनका व्यक्तिगत जीवन घृणास्पद होता है तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को निर्वाह करने में असमर्थ होते हैं। असामान्य व्यवहार से तात्पर्य समान्यतः वैसे व्यवहार से होता है जो सामाजिक मानव एवं प्रत्याशाओं के प्रतिकूल होता है तथा साथ ही साथ कुसयोजित भी होता है लेकिन मात्र इतना ही कह देने से असामान्य व्यवहार का स्वरूप पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होता है बल्कि असामान्य व्यवहार को पूर्ण रूप से समझने की आवश्कता है-

- समाज विरोधी- असमान्य व्यवहार सामान्य रूप से स्वीकृत नियमों, सामाजिक मानकों एवं मूल्यों का विरोधी होता है। जब कोई व्यक्ति इस तरह का व्यवहार करता है कि उससे समाज के नियमों एवं मनकों का उल्लंघन होता है तो वह निश्चित रूप से असामान्य व्यवहार कहलाता है। जैसे चोरी करना, बलात्कार करना, हत्या करना आदि कुछ व्यवहार ऐसे होते हैं। जिससे समाज के मानकों एवं मूल्यों का उल्लंघन होता है अतः ऐसे व्यवहार को हम असामान्यता की श्रेणी में रखते हैं।
- मानसिक असंतुल- असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्ति मानकिस रूव से संतुलित होते है। ऐसे व्यक्तियों के व्यवहारों एवं विचारों में काफी अस्थिरता पायी जाती है। ऐसी व्यक्ति कभी कुछ

सोचते हैं और कुछ समय बाद ठीक उसके विपरीत सोचने एवं व्यवहार करने के ढंग से काफी अंसगतता दिखाई पड़ती है जो प्रायः एक सामान्य व्यक्ति के व्यवहार में नहीं पायी जाती है।

- अपर्याप्त समायोजन- असामान्य व्यवहार में समायोजन की अपर्याप्तता होती है। असामान्य व्यवहार दिखलाने वाल व्यक्ति आज समाज की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अपने आप को ठीक ढंग स समायोजित नहीं कर पाते हैं। समायोजन न करने की इस समरूप के कारण प्रायः तिरस्कार के पात्र भी बने रहते हैं।
- सूझ पूर्ण व्यवहार की कमी- असामान्य व्यवहार में सूझ की काफी कमी रहती है। इसी कमी के कारण असामान्य व्यक्ति को सही-गलत, नैतिक-अनैतिक, अच्छा बुरे का ज्ञान नहीं होता है। फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों का ठीक ढंग से मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं। सूझ की कमी के कारण असामान्य व्यक्ति किसी भी तरह के गलत कार्य को करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता है। इस तरह के व्यक्तियों की आलोचना का बिल्कुल भी डर नहीं रहता है।
- विघटित व्यकितत्व- असामान्य व्यवहार वाले व्यक्तियों का व्यक्तित्व अधिक विघटित होता है। उनके संज्ञानात्मक, क्रियात्मक, भावात्मक पक्षों में कोई तालमेल नहीं होता है। इनका व्यकितत्प इतना छिन्न-छिन्न होता है कि उनके व्यवहार में किसी तरह की संगतता नहीं रह जाती है। इनका व्यवहार इतना अविवेकी तथा असंतुलित हो जाता है कि उससे लोगों के लिए कोई सही अर्थ निकालना सम्भव नहीं रह जाता है।
- आत्मज्ञान तथा आत्म सम्मान की कमी- असामान्य व्यक्ति के व्यवहार से यह स्पष्ट रूप से झलकता है कि इसमें आत्मज्ञान तथा आत्म सम्मान की कमी होती है। ऐस व्यक्ति यह नहीं समझ पाते हैं कि वह क्योंकिसी खास व्यवहार को करता है और उसमें क्यों एक विशेष प्रकार का भाव उत्पन्न होता है। ऐसे व्यक्ति अपने गुणों एवं दायित्व का सही-सही मूल्यांकन नहीं कर पाते है। असामानय व्यक्तियों में आत्मसम्मान की कमी पाई जाती है। ऐसे व्यक्ति अपने आपको आनादर व हीनता के भाव से देखते हैं और विभिन्न समाजिक परिस्थितियों में अपने आप को कुसमायोजित पाते हैं।
- असुरक्षा की भावना- असामान्य व्यक्तियों में प्रायः असुरक्षा की भावना देखी जाती है। प्रायः ऐसे व्यक्ति अपने आपको समाज का एक स्वीकृत हिस्सा नहीं मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों को शक की निगाह से देखते हैं और विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में कभी भी खुलकर अपने विचारों की अभिव्यक्ति नहीं कर पाते हैं। ये प्रायः डरे-डरे से एवं सहमे-सहमे से रहते हैं।
- संवेगात्मक अपरिपक्वता- असामान्य व्यवहार में प्रायः संवेगात्मक अपरिपक्वता देखी जाती है । ऐसे व्यक्ति को अपने संवगी पर न के बराबर नियंत्रण रहाता है। बिना कारण हंस देना आदि व्यवहार देखा जाता है। परिस्थिति के अनुकूल संवेगी की अभिव्यक्ति या नियंत्रण करना इन्हें नहीं आता है। अतः ऐसे लोग संवेगात्मक दृष्टि से अनुपयुक्त होते हैं। जिसके चलते इनमें सांवेगिक अभियोजन की समस्या भंयकर रूप उत्पन्न हो जाती है।

- सामाजिक अनुकूल की क्षमता का अभाव- सामाजिक अनुकूलन की क्षमता के अभाव में ऐसे लोग अपने सहकर्मियों, पास पडो़स के साथ अधिक संतोषजनक सामाजिक सम्बन्ध बनाये रखने में असमर्थ रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों का अनुकूलन अपने घर के सदस्यों के साथ भी ठीक नहीं होता है। सांवेगिक अस्थिरता के कारण इनकी मानसिक स्थिति भी ठीक नहीं होती है। सांवेगिक अस्थिरता के कारण इनकी मानसिक स्थिति बदलती रहती है जिससे ऐसे व्यक्तियों की सामाजिक एवं घरेलु अनुकूलन की क्षमता कम होती जाती है।
- मनोरंजन की कमी- असामान्य व्यक्तियों में मनोरंजन का अभाव पाया जाता है। हल्की मानसिक व्यक्तियों से पीड़ित लोगों में यह कम पाया जाता है। हल्के मानसिक व्यक्तियों से पीड़ित लोगों में यह अभाव और अधिक मात्रा में पाया जाता है। कुछ ऐसे भी मानसिक रोगी होते हैं जिनमें मनोरंजन के स्थान पर विषाद पाया जाता है। बिना किसी कारण के रोगी इतना दुःखी होता है जैसे उस पर कोई बहुत बड़ी विपत्ति आ गई हो।
- दक्षता की कम मात्रा- असामान्य व्यक्ति सामान्य की अपेक्षा कम दक्ष होता है। शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु असामान्य व्यक्ति सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कम खर्च लेता है। वह अपनी आवश्यकताआं पूर्ति हेतु कोई क्रियाशील दिखाई नहीं देता है। सामाजिक, व्यावसायिक और धार्मिक कार्यों में सामान्य व्यक्ति की खर्च और दक्षता कम दिखाई देती है। अधिक गम्भीर बीमारी से पीड़ित व्यक्ति में दक्षता और भी कम होती है। रोगी जितना अधिक गम्भीर होगा, दक्षता उतनी कम होगी।
- पश्चाताप का अनुभव न होना- असामान्य व्यक्तियों को अपनी गलतियों के लिए किसी प्रकार पश्चाताप नहीं होता हे। फलतः इनके सुधरने का कोई प्रश्न नहीं उठता है। ऐसे व्यक्तियों को अपने गलत कार्यों के बाद तीसरा गलत कार्य बेफिक्र होकर करते हैं। उन्हें इस बात की भी कोई चिन्ता नहीं होती है कि कोई उन्हें क्या कहेगा या समाज उन्हें क्या कहेगा।

उक्त वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि असामान्य व्यवहार से उस व्यक्ति को भी हानि होती है जो इस तरह का असामान्य व्यवहार करता है। इस तरह असामान्य व्यवहार दूसरों के साथ-साथ अपने लिए भी कष्टप्रद व हानिकारक है। अतः असामान्य या असामान्य व्यवहार या असामान्य व्यक्ति की उक्त विशेषताओं के आधार पर हम पहचान कर सकते हैं। कि इन विशेषताओं के आधार पर हम आसानी से यह पता लगा लेते हैं कि अमुक व्यक्ति या अमुक व्यवहार असामान्य है या नहीं । अतः असामान्य व्यवहार की अपनी कुछ खास विशेषताएं होती है जिनक आधार पर हम इन्हें आसानी से समझ सकते हैं।

2.8 सारांश

संक्षेप में असामान्य मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसमें व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों एवं असामान्य मानसिक प्रक्रियाओं के निदान, वर्गीकरण, रोकथाम, उपचार से

सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है और आवश्यकतानुसार उसकी वैज्ञानिक की व्याख्या के लिए सिद्धान्तों का भी निर्माण किया जाता है। यह मनोविज्ञान की एक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण शाखा है। जिसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के असामान्य व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है। आज व्यक्ति ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में काफी प्रगति कर चुके हैं। उसके वैज्ञानिक, भौतिक एवं व्यावहारिक विकास की यात्रा तीव्र गति से जारी है किन्तु इसी के साथ-साथ दूसरा पक्ष भी हमारे समक्ष है कि आज हम पहले की तुलना में तनाव, चिन्ता, अंसतोष कुसमायोजन एवं अन्य-अन्य मानसिक विकारों एवं समस्याओं से बहुत अधिक प्रभावित है। आज भोतिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी व्यक्ति प्रायः सन्तुष्ट नहीं है। आज इस विषय की जानकारी स्वयं अपने लिए तो उपयोगी है ही साथ हम इसके द्वारा दूसरों की भी सहायता करके उसे स्वस्थ्य मानसिक जीवन व्यतीत करने के लिए उसका सहारा बन सकते हैं।

2.9 शब्दावली

- **भ्रम:** किसी वस्तु का गलत प्रत्यक्षीकरण करना।
- **विभ्रम:** वस्तु न होते हुए भी उसका प्रत्यक्षीकरण करना।
- **विघटित:** बिखरा हुआ।
- **समाज विरोधी:** समाज के नियमों के विरूद्ध कार्य।
- **अमूर्त:**ऐसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति शाब्दिक तथा गणितीय कौशलों चिह्नों को आसानी से समझ सकें।
- **नैराशय:** कुण्ठा (कुण्ठा जीव की वह अवस्था है ,जो किसी प्रेरणत्मक व्यवहार की संतुष्टि के कठिन या उसम्भव हो जाने के कारण उत्पन्न हो जाती है।)
- **आघात:** शारीरिक या मानसिक कष्ट या चोट के साथ सामान्जस्य से बैठने में असमर्थ पाता है।
- **अपरिपक्वता:**किसी कार्य को करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक रूप से योग्य न होना।
- **मस्तिष्कीय दुष्क्रिया:** मस्तिष्क में क्षति, पेरशानी या चोट
- **गुणसूत्र:** x और y क्रोमोसोक्स

2.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

1) कोलमैन के अनुसार सत्रवहीं शताब्दी......................... का युग रहा है।
2) एबनारमल् शब्द का शाब्दिक अर्थ .... व्यवहार है।
3) जे0एफ0 ब्राउन के अनुसार सामान्य, असामान्य व्यवहार का अति विकसित एवं................ रूप है।

4) किसी भी समाज में प्रायः सामान्य, असामान्य और .... तीन प्रकार लोग रहते हैं।
5) सामान्य और असामान्य .... के दो मुख्य रूप होते हैं।

- सही गलत का बताएये-

6) असामान्य व्यक्तियों में मनोरंजन का अभाय पाया जाता है।
7) सामान्य व्यक्ति में पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता होती है।
8) सामान्य व्यक्ति का व्यक्तित्व असंगठित होता है।
9) सामान्य व्यक्ति में सुरक्षा की उपयुक्त भावना पाई जाती है।
10) असामान्य व्यक्तियों में आत्मज्ञान एवं आत्म सम्मान की कमी होती है।
11) असामान्य व्यक्ति को अपनी गलतियों पर पश्चाताप होता है।
12) सामान्य व्यक्ति स्वयं का मूल्यांकन अपनी शारीरिक एवं मानसिक योग्ताओं से अधिक करता है।
13) कोलमैन के अनुसार अटठारवीं शताब्दी तक का युग था।

उत्तर: 1) ज्ञान 2) समान्य से दूर हटा हुआ 3) विकृति 4) प्रतिभाशाली

5) व्यवहार 6) सही 7) सही 8) गलत 9) सही

10) गलत 11) सही 12) गलत 13) सही

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ0 अरूण कुमार सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल, बनारसीदास। प्रकाशन, नई दिल्ली।
- डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव असामान्य मनोविज्ञान साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
- डॉ0 आर0एन0 सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान प्रकाशन अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
- डॉ0 मोहम्मद सुलेमान असामान्य मनोविज्ञान, प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- डॉ0 लाभ सिंह, डॉ गोविन्द तिवारी, असमान्य मनोविज्ञान, प्रकाशन विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

- अति लघु उत्तरीय प्रश्न (एक पंक्ति में उत्तर दीजिये)

1. लैटिन भाषा में नारमा शब्द का क्या अर्थ है?
2. सामान्य व्यक्ति कौन है?
3. व्यवहार के दो मुख्य रूप कौन से है?
4. यदि कोई व्यक्ति नए व्यक्तियों के सामने पहली बार भाषण देते समय डरता है, कॉपता है तो वह व्यक्ति सामान्य श्रेणी में अयेगा या असामान्य की?
5. असामान्य मनोविज्ञान के कितने रूप होते हैं?

- लघु उत्तरीय-

1. असामान्य मनोविज्ञान को परिभाषित कीजिये ?
2. सामान्य व्यक्ति से आप क्या समझते ?
3. सामान्य और असामान्य मनोविज्ञान के पांच मुख्य अन्तरों को बताइयों?

- दिर्घ उत्तरीय प्रश्न-

1. सामान्य व्यक्ति की विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
2. सामान्य और असामान्य व्यक्ति में आप किस तरह अन्तर करेंगे?

इकाई-3 मन का प्रत्यय, मन का आकरात्मक और गत्यात्मक पक्ष

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मन क्या है?
3.4 मन की अवस्थाएँ
3.5 मन के आकारात्मक पक्ष
3.6 चेतन अचेतन औ अर्द्धचेतन मन का तुलनात्मक अध्ययन
3.7 अचेतन मन का महत्व
3.8 मन के गत्यात्मक पक्ष
3.9 उपाहं, पराहं और नैतिक मन के बीच सम्बन्ध
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मन शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। जैसे- मानस, चित्त, मनोभाव, मन इत्यादि। लेकिन मनोविज्ञान में मन का तात्पर्य आत्मन् स्व् या व्यक्तित्व से है, हय एक अमूर्त सम्प्रत्यय है, जिसे केवल महसूस किया जा सकता है, इसे न तो देख सकते हैं, और न ही हम इसका स्पर्श कर सकते हैं, या इसे हम इस तरह से परिभाषित करे सकते हैं, कि मस्तिष्क के विभिन्न अंगों की प्रक्रिया का नाम मन है।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषण वादी मनोवैज्ञानिक सिग्मण्ड फ्रायड के अनुसार, मन का सिद्धान्त एक प्रकार का परिकल्पानात्मक सिद्धान्त है। इनके अनुसार मन से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन कारकों से होता है, जिसे हम अन्तरात्मा कहते हैं। तथा जो हमारे व्यक्तित्व में संगठन पैदा कर के हमारे व्यवहारों को वातावरण के साथ समायोजन करने में मदद करता है।

व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए आवश्यक है, कि उसके व्यक्तित्व के विकास एवं संगठन का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है, कि व्यक्ति के मन या मानसिक पहलू का अध्ययन किया जाए। मन या मानसिक पहलू से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन कारकों से होता है, जिसे हम अन्तरात्मा कहते हैं, तथा जो हमारे व्यक्तित्व में संगठन पैदा करके हमारे व्यवहारों को वातावरण के साथ समायोजन करने में मदद करता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के बाद आप-

- मन का शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषाओं के बारे में जान सकेंगे।
- मन की अवस्थाओं के बारे में जान सकेंगे।
- मन के आकारात्मक पक्ष-चेतन, अर्द्वाचेतन व अचेत के बारे में जाने सकेंगे।
- मन के गत्यात्मक पक्ष-उपाहं, पराहं, नैतिक मन के बारे में जान सकेंगे।
- उपाहं, पराहं, व नैतिक मन के कार्यों के विषय में जान सकेंगे।
- उपाहं, पराहं व नैतिक मन के सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे|

3.3 मन क्या है?

रेबर के अनुसार ‘‘मन का तात्पर्य परिकल्पित मानसिक प्रक्रियाओं एवं क्रियाओं की सम्पूर्णता से है, जो मनोवैज्ञानिक प्रदत्त व्याख्यात्मक साधनों के रूप में काम कर सकती है।’’

अतः मन की मात्र हम कल्पना कर सकते हैं, इसको न तो किसी ने देखा है, और नहीं इसका स्पर्श किया जा सकता है।

3.4 मन की अवस्थाएँ

मन की अवस्थाओं से तात्पर्य इसके विभिन्न पहलुओं से है, प्रसिद्ध मनोविश्लेषण वादी सिग्मण्ड फ्रायड ने मन, आत्मन् तथा व्यक्ति के अनके पद्वा बताऐ हैं, लेकिन फ्रायड ने मन के दो पहलुओं पर विशेष बल दिया है-

1. मन का आकाराम्क पहलू
2. मन का गत्यात्मक पहलू

3.5 मन के आकारात्मक पक्ष

मन के आकारात्मक पहलू से तात्पर्य जहाँ संघर्षमय परिस्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है। अर्थात मन का आकारात्मक पहलू वास्तव में व्यक्तित्व की गत्यात्मक शक्तियों के बीच हाने वाले संघर्षो का एक कार्यस्थल है। आकारात्मक पहलू के अनुसार मन को निम्न तीन स्तरों में बाँटा गया है।-

1. चेतन
2. अर्द्धचेतन
3. अचेतन

1) **चेतन-** चेतन का अर्थ मन का वह भाग जिसका सम्बन्ध वर्तमान से होता है, अर्थात चेतन क्रियाओं का सम्बन्ध तात्कालिक अनुभवों से होता है, जैसे- कोई व्यक्ति लिख रहा है, तो उसे लिखने की चेतना है। कोई व्यक्ति गा रहा है, तो उसे गाने की चेतना से है। व्यक्ति जिस शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के प्रति जागरक होता है, वह चेतन स्तर पर घटित होतीहै, चेतन स्तर पर घटित होने वाल सभी प्रकार की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं की जानकारी या चेतना व्यक्ति को रहती है, यद्यपि चेतना होती है, अर्थात चेतना कभी लुप्त नहीं होती है। जब व्यक्ति किसी से बातचीत करता है तो उसे सम्बन्धित जो अनुभव एवं विचार होते है, वह चेतन होता है। अतत्ः चेतन का सम्बन्ध वास्तविकता से अधिक होता है। चेतन मन से संबन्धित कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं|

i. चेतन मन का सबसे छोटा भाग है।
ii. चेतन मन का सीधा सम्बन्ध वाह्य जगत की वास्तविकताओं से होता है।
iii. चेतन मन अर्द्धचेतन व अचेतन पर प्रतिबन्धक का कार्य करता है।
iv. चेतन मन में वर्तमान विचारों एव घटनाओं के जीवित स्मृति चिन्ह् होते हैं, अतः इन विचारों एवं घटनाओं की पहचान एवं प्रत्यावाहन आसानी से किया जा सकता है।
v. चेतन मन व्यक्तिगत, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदर्शो का भण्डार होता है।

2) **अर्द्धचेतन**- यह मन का वह भाग है, जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय-सामग्री से होता है, जिसे व्यक्ति इच्छानुसार कभी भी याद कर सकता है। मन के इस भाग में वह विषय सामग्री होती है, जिसका प्रत्यावाहन करते में व्यक्ति को थोड़ाप्रयास पड़ता है। अर्द्धचेतन की अवचेतन व सुलभ स्मृति के नाम से भी जाना जाता है। अर्द्धचेतन की मानसिक अनुभूतियों या घटनाओं सेतो व्यक्ति अवगत नहीं रहता है, परन्तु थोड़ासा प्रयास करने पर उसका प्रत्यावाहन कर लेता है।, और व्यक्ति उस सूचना या घटना से अवगत हो जाता है। जैसे कभी-कभी हम किसी घटना से सम्बन्धि तथ्यों को यदि याद करना चाहते हैं, तो वह तत्काल याद नहीं आता है, परन्तु बाद ममें

थोड़ासा प्रयास करने वह घटना हमें याद आ जाती है। किसी किताब की जरूरत होने पर जब हम उसे अपनी अलमारी में नहीं परते हैं तो हम थोडी़ देर के लिए परेशान हो उठते हैं, और कुछ देर सोचने लगते हैं, कि कहाँ रखी थी, किसी को दी तो नहीं थी, फिर कुछ देर सोचने पर याद आता है कि वह किताब हमने अपने एक मित्र को दी थी। हमने किताब किसको दी थी, यह बात हम भूलें नहीं थे, बल्कि वह चेतन से हटकर अर्द्धचेतन में चला गया था। अर्द्धचेतन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं-

i. अर्द्धचेतन, चेतन और अचेतन के बीच का भाग है, यह चेतन से बड़ा और अचेतन से छोटा होना है।
ii. अर्द्धचेतन, अचेतन तथा चेतन के बीच सेतु का काम करता है। अचेतन से चेतन में जाने वाले वाला भाव, इच्छा एवं विचार आदि अर्द्धचेतन से होकर गुजरता है।
iii. अर्द्धचेतन तथा चेतन के बीच की कडी़ कमजोर होती है, यही कारण है, कि थोड़े से ही प्रयास से अर्द्धचेतन के भाव एवं विचार उस कडी़ को पर करके चेतन में आ जाते हैं।

3) **अचेतन**- यह मन का सबसे गहरा एवं बड़ा भाग है। अचेतन का शाब्दिक अर्थ है, जो चेतन या चेतना से परे हो। हमारे कुछ अनुभव इस तरह के होते हैं, जो न तो हमारी चेतना में होते हैं और नहीं अर्द्धचेतना में, ऐसे अनुभव अचेतन में होते हैं अर्थात यह मन का वो भाग है, जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय-वस्तु से होता है, जिसे व्यक्ति इच्छानुसार याद करके चेतना में लाना चाहे, तो भी नहीं ला सकता है

अचेतन में रहने वाले विचार एवं इच्छाओं का स्वरूप कामुक, असामाजिक, अनैतिक तथा घृणित होता है, ऐसी इच्छाओं को दिन प्रतिदिन के जीवन में पूरा कर पाना सम्भव नहीं है। अतः उन इच्छाओं को चेतना से हटाकर अचेतन में दबा दिया जाता है। और वहाँ पर ऐसी इच्छाओं को चेतना से हटाकर अचेतन में दबा दिया जाता है। और वहाँ पर ऐसी इच्छाएँ समाप्त नहीं होती है, बल्कि समय-समय पर ये इच्छाऐं चेतन स्तर पर आने का प्रयास करती रहती है|

फ्रायड ने इस सिद्धान्त की तुलना एक आइसवर्ग से ही है, जिसका 9/10 भाग पानी के अन्दर और 1/10 भाग पानी के बाहर वाला भाग चेतन होता है, पानी के अन्दर वाला भाग अचेतन तथा पानी के बाहर वाला भाग चेतन होता है, तथा जो भाग पानी की ऊपरी सतह से स्पर्श करता हुआ होता है, वह अर्द्धचेतन कहलाता है।

<u>अचेतन मन की विशेषताएँ निम्न है-</u>

1. अचेतन मन, चेतन व अर्द्धचेतन मन से बड़ा होता है।
2. अचेतन मन में कामुक, अनैतिकक, असामाजिक इच्छाओं की प्रधानता होती है।

3. अचेतन का सम्बन्ध गत्यात्मक होता है, अर्थात अचेतन मन में जाने पर इच्छाएँ समाप्त नहीं होती है बल्कि सक्रीय होकर ये चेतन मे लौट आना चाहती है, परन्तु चेतन मन तथा अहं की प्रतिबन्धिता के कारण वैसी इच्छाएँ चेतन में नहीं आ पाती है, और ये रूप बदलकर स्वप्न व दैनिक जीवन की छोटी-मोटी गलतियों के रूप में व्यक्त होती है, और ये अचेतन के रूप को गात्यात्मक बना देती है
4. अचेतन के बारे में व्यक्ति पूरी तरह से अनाभिज्ञय रहता है, क्योंकि अचेतन का सम्बन्ध वास्तविकता से नहीं होता है।
5. यह मन का छिपा हुआ भाग होता है, यह एक बिजली के प्रवाह की भांति होता है, जिसे सीधे देखा नहीं जा सकता है, परन्तु इसके प्रभावों के आधार पर इसको समझा जा सकता है।
6. अचेतन में बिना किसी इन्द के ही परस्पर किरोधी इच्छाएँ और भावनाएँ संचित रहती है, उदाहरणार्थ-अचेतन मन में निराशा एवं सफलता, प्रेम एवं घृणा का भाव, सुख एवं दुःख का भाव आदि संचित रहते हैं, और इनसे व्यक्ति को किसी प्रकार का मानसिक संघर्ष भी पैदा नहीं होता है, क्योंकि व्यक्ति इन सबसे अवगत नहीं रहता है|
7. अचेतन की इच्छाएँ व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर होती है। क्योंकि अचेतन के बारे में व्यक्ति पूर्णतः अनाभिज्ञय रहता है।

अचेतन के अस्तित्व के प्रमाण-

अचेतन व्यक्ति के मन का एक ऐसा अव्यक्त पहलू है, जिसे व्यक्ति न तो वाह्य निरीक्षण द्वारा सीधे अध्ययन कर सकता है, और न ही अन्तनिरीक्षण द्वारा ही इसके अस्तित्व को प्रमाणित कर सकता है। उदाहरणार्थ- यह बिजली के प्रवाह के भाँति होता है, जिस तरह से हम बिजली के प्रवाह देख नहीं सकते हैं, लेकिन उसके पड़ने वाले प्रभावों के रूप को जान सकते हैं, ठीक उसी तरह से अचेतन मन को सीधे नहीं जाना ना सकता है, बल्कि इसके अस्तित्व को परोक्ष रूप से ही कुछ सबूतों के आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है, अचेतन मन के अस्तित्व को निम्न सबूतों के आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है।

1. **स्वप्न-** अचेतन मन के अस्तित्व का सबसे बड़ा सबूत स्वप्न हैं नींद की स्थिति में चेतन मन प्रतिबन्ध कुछ ढीला पड़ जाता है, और अचेतन की अनुभूतियाँ एवं अतृप्त इच्छाएँ छद्म रूप धारण कर चेतन अवस्था में प्रेवश करती है, जिस कारण व्यक्ति स्पप्न देखता है, और अचेतन की अतृप्त इच्छाओं की संतुष्टि भी करता है। स्वप्न के रूप कुछ भी हो सकता है। और स्वप्न में व्यक्ति अपनी सुखद इच्छाओं की संतुष्टि भी करता है। स्वप्न के रूप कुछ भी हो सकता है। और स्वप्न में व्यक्ति अपनी सुखद इच्छाओं की संतुष्टि भी करते देखता है, या अपने आपको दण्ड देते हुए जैसे ऊपर से गिरते हुए देखना, नदी में डूबना व आग में जलते हुए देखता है। इन दोनों की तरह के स्वप्नों में अचेतन इच्छाओं एवं अनुभूतियों की संतुष्टि होती है। अतः अचेतन मन

की इच्छाओं के कारण ही हम स्वप्न देखते हैं, और स्वप्न को अचेतन के अस्तित्व का एक पर्याप्त सबूत माना गया है।

2. **दैनिक जीवन की भूलें-** प्रायः हम सभी अपने दैनिक जीवन में बहुत सारी छोटी-छोटी भूलें करते हैं, जैसे बोलने की भूलें, लिखने की भूलें, वस्तुओं को रखकर भूल जाने की भूलें, या पहचानने की भूलें आदि। यदि विज्ञान का कारण प्रभाव नियम सत्य है, तो इन भूलों का कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए, चेतन स्तर पर तो हम इस समस्या का समाधान नहीं कर सकते हैं, कि हम भलेते क्यों है? लेकिन जब हम अचेतन के अस्तित्व को मान लेते हैं, तो इसी व्याख्या करना सम्भव हो जाता है। फ्रायड के अनुसार ऐसी सभी सामान्य भूलें अपने आप संयोग वश नहीं हो जाती है बल्कि उसका एक निश्चित कारण होता है। जो अचेतन में दमित रहता है, अक्सर व्यक्ति अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में बोलना कुछ चाहता, और बोल कुछ जाता है। व्यक्ति किसी के घर जाता है तो वहाँ चाभी या रूमाल छोड़कर चला आता है, किसी समान को ऐसी जगह रख देता है, कि उसे ढूँढना काफी कठिन हो जाता है और ये सारी गल्तियाँ इसलिए होती है, क्योंकि अचेतन की इच्छाओं से इनका सम्बन्ध होता है, जैसे एक सज्जन जिन्हें अपने शब्द भण्डार एवं ज्ञान पर बहुत गर्व था, एक बार उन्हें अपने शब्द भण्डार एवं ज्ञान पर बहुत गर्व था, एक बार उन्हें अपने मित्र के लेख पर बधाई देनी थी, उन्हें कहना था, कि इस महान लेख पर मैं अपना साधारण विचार प्रकट कर रहा हूँ, पर उन्होंने कहा कि इस निम्न कोटि के लेख पर मैं अपना महान विचार प्रकट कर रहा हूँ। इस उदाहरण का विश्लेषण करने पर पता चला, कि व्यक्ति के मन में उस लेख के प्रति महानता का नहीं, बल्कि निम्नता का विचार था।

इसी तरह एक दूसरे उदाहरण एक बार महिला अपनी बेटी की कुछ मानसिक समस्याओं का इलाज कराने एक मनोचिकित्सक के पास गई, मनोचिकित्सक द्वारा बेटी का नाम पूछे जाने पर महिला उसका नाम बताने में असमर्थ रही क्योंकि वह उसका नाम भूल गई थी, बातचीन के दौरान पता चला कि महिला द्वारा बेटी के जन्म देने पर उसे भयानक तकलीफें उठानी पडी़ थी, अतः स्पष्ट है, कि अचेतन में दबी हुई अप्रिय एवं दुख अनुभवों द्वारा उत्पन्न मानसिक संघर्षो से मुक्ति पाने हेतु अचेतन रूप से महिला अपनी बेटी का नाम भूल गई थी।

व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में कुछ ऐसी सांकेतिक क्रियाएँ जैसे बैठे-बैठे पैर हिलाना कलम या पेंन्सिल के ऊपरी भाग दो दाँत से चबाना चाभी के गुच्छे को नचाना, भाषण देते समय किसी खास शब्द को बार-बार दोहराना, आदि। इन क्रियाओं के पीछे निश्चित रूप से अचेतन की दमित इच्छाओं का संकेत मिलता है, फ्रायड ने एक बार यह देखा कि एक विवाहित महिला अपनी अंगुली से बार-बार अंगूठी को निकालती थी, फिर अन्दर कर लेती थी, फ्रायड द्वारा पूछने पर कि वह ऐसा बार-बार क्यों कर रही है तो उसने कहा ऐसे ही परन्तु विश्लेषण करने पर पता चला कि महिला अपने पति को कुछ कारणों से तलाक देना चाहती थी, परन्तु सामाजिक एवं नैतिक कारणों से वह ऐसा करता उचित नहीं समझती थी, अंगुली से अंगूठी को निकालने की क्रिया द्वारा पति को परित्याग

करने तथा पुनः उस अंगूठी को अंगूली में डाल लेना नैतिक एवं सामाजिक बंधनों के कारण पति जो नहीं छोड़ने के विचारों का संकेत मिलता है।

प्रायः हमारे दैनिक जीवन में गल्तियों या भूलें जो स्पष्टतः बेतुकी या निरर्थक दीख पड़ती है, वास्तव में वो निरर्थक नहीं होती हे, इन भूलों एवं गल्तियों द्वारा अचेतन मन की अनृप्त इच्छाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति होती है। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दैनिक जीवन की ऐसी भूलें महत्वपूर्ण एवं सार्थक होती है।

3. **सम्मोहन-** सम्मोहन की अवस्था एक तरह की मोहावस्था है, जिसमें व्यक्ति की चेतना शून्य जो जाती है और व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था में आज्ञानुसार कार्य करने के लिये प्रेरित रहता है, हिस्टीरिया के अनेक रोगियों पर सम्मोहन विधि का प्रयोग करने पर पाया गया है, कि इस अवस्था में रोगी कुछ ऐसी अनुभूतियों एवं तथ्यों को बतलाता है, जिसे वह सम्मोहन अवस्था के पहले न तो किया था और न रोगी ने उसके बारे में कभी सोचा था स्पष्ट है, कि इसकी ऐसी अनुभूतियों एवं तथ्यों का स्रोत अचेतन मन में ही होता है, यदि सम्मोहन की अवस्था में रोगी को भविष्य में कुछ करने का सुझाव दिया जाता है, तो वह उसे आसानी से करता भी है, और कारण पूछने पर वह उसका कोई उत्तर नहीं दे पाता है, लेकिन वह उस कार्य को करता है। उदाहरण के लिए यदि रोगी को सम्मोहन की अवस्था में यह सुझाव दिया जाता है कि वह मंगलवार को सुबह 11 बजे अपनी बहन से मिलने जायेगा, तो ठीक उसी दिन उसी समय पर अपनी मौसी से मिलने जाता है यदि रोगी से इसका कारण पूछा जाये तो वह यही कहता है, कि बस यूँ ही चला गया था। अतः इस बता से यह स्पष्ट है कि वह अपना कार्य अचेतन के निर्देशानुसार कर रहा है।
4. **नींद में टहलता-** इसमें व्यक्ति कुछ क्रियाएँ सोई हुई अवस्था में भी सामान्य ढंग से करता है, और फिर पुनः जाकर सो जाता है, और नींद से जागने पर उसे इस बात का बिल्कुल भी अभास रहता है कि उसने सचमुच में ऐसी क्रियाओं को किया था। व्यक्ति नींद की अवस्था में उठकर, नदी स्नान करने चला जाता है, हारमोनियम बजाने लगता है, और कुछ देर बाद आकर करके पुनः सो जाता है। और फिर सुबह नींद टूटने पर उसे अपने द्वारा किये गये कार्यों पर बिल्कुल भी आभास नहीं रहता है। वास्तव में इन क्रियाओं का नियंत्रण एवं संचालन निश्चित रूप से अचेतन मन द्वारा ही होता है।
5. **मानसिक रोग-** प्रायः मानसिक रोग अचेतन की जटिल एवं प्रबल इच्छाओं का अचेतन में प्रवेश करने उत्पन्न होता है। मानसिक रोग प्रायः दो प्रकार के होते हैं, पहला स्नायुविकृति और दूसरा स्नायुविकृति स्नायु विकृति जैसे-चिन्ता स्नायुविकृति, बाध्यता, उन्माद, मनोवैज्ञानिक भय आदि। स्नायुविकृति जैसे, मनोविदलता, व्यामोर आदि। व्यक्ति में ये मानसिक रोग क्यों विकसित हो जाते हैं। इनके क्या कारण है? इन समस्याओं के समाधान चेतन मन के आधान पर सम्भव नहीं है लेकिन अचेतन के अस्तित्व को मान लेने पर इन प्रश्नों का समाधान सम्भव हो

जाता है। फ्रायड के अनुसार अचेनत इच्छाएँ जब अधिक कामुक तथा अनैतिक होती है, तो उनकी अभिव्यक्ति एवं सन्तुष्टि मानसिक रोगों के माधम से होती है। इस तरह मानसिक रोग का होना अपने आप में अचेतन में अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यदि अचेतन की अतृप्त एवं अनैतिक इच्छाओं द्वारा चेतन ग्रसित न हो तो व्यक्ति में किसी प्रकार का मानसिक रोग उत्पन्न नहीं होगा।

6. **घबराहट की अवस्था-** यह एक ऐसी सांवेगिक अवस्था होती है। जिसमें व्यक्ति का चेतन मन एक असंतुलित अवस्था में होता है, और व्यक्ति यह नहीं समझ पाता है, कि वह क्या करें, और क्या न करें। ऐसी स्थिति में चेतन मन का अचेतन मन पर रहने वाला प्रतिबन्ध कुछ ढ़िला पड़ जाता है और व्यक्ति कुछ ऐसी विचित्र बातों को बतलाता है जिसमें अन्य व्यक्ति तथा स्वम् वह अपने आप भी आश्चर्य में पड़ जाता है कि ऐसी विचित्र ऐसी बातें उसके अचेतन मन में होती है, जो मन में घबराहट से उत्पन्न असंतुलित अवस्था के कारण प्रतिबन्ध में ढीलापन होने से प्रवेश कर जाती है।
7. **एनेस्थेसिया का प्रभाव-** प्रायः देखा गया है कि जब व्यक्ति को एनेस्थेसिया दिया जाता है, तो वह चेतना विहीन हो जाता है और इस चेतना-विहीन अवस्था में भी वह कुछ न कुछ बड़बड़ाता रहता है, एनेस्थेसिया देने से व्यक्ति का चेतन मन तो शून्य हो जाता है अतः ब्रड़बड़ाने जैसी क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण अचेतन मन के द्वारा ही होता है।
8. **स्वतंत्र साहचर्य-** स्वतंत्र साहचर्य ऐसी विधि है जिसका प्रयोग मानसिक रोगियों की अचेतन इच्छाओं के बारे में पता लगाने के लिए किया जाता है इस विधि में रोगी स्वतंत्रता पूर्वक अपने मन में आने वाले सभी तरह के भावो, विचारों संघर्षों घटनाओं आदि को व्यकत् करता है, इस विधि में रोगी अपने मन की कुछ विस्तृत अनुभूतियों एवं भावों को भी बताता है और जिसका सम्बन्ध चेतन मन से न होकर अचेतन मन से होता है। अतः स्वतंत्र साहचर्य विधि द्वारा व्यक्त कुछ अनुभूतियाँ एवं भावों से भी व्यक्ति के अचेतन मन के अस्तित्व के स्पष्ट सबूत देखने को मिलते हैं।
9. **ठीक समय पर अचानक नींद पर टूट जाना-** प्रायः जब हम यह सोचकर सोते हैं, कि हमें प्रातः निश्चित समय पर पढ़ना है, या कही जाना है तो हम ऐसा करने में सफल भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जब हम रात में यह निश्चय करके सोते हैं कि हमें प्रातः 3:00 बजे उठकर पढ़ना है, तो ठीक उसी समय हमारी नींद टूट जाती है, या हम जग जाते हैं, और पूर्व निश्चित समय पर बैठकर पढ़ने लेगते हैं। अर्थात नींद की अवस्था में हमारा अचेतन मन सक्रीय रहता है, जो हमें पूर्व निर्धारित समय पर नींद से उठा देता है।
10. **किसी समस्या एवं स्वतः समाधान होना-** अक्सर होता है कि जब हम किसी समस्या का समाधान करते है, तो हम अपनी पूरी कोशिश के बाद भी उसका समाधान नहीं ढूँढ़ पाते हैं। हार कर हम उस समस्या के सम्बन्ध में सोचना छोड़ देते हैं, और कुछ समय बाद उस समस्या का अचानक हमें समाधान मिल जाता है, ऐसा प्रायः इसलिए होता है, क्योंकि चेतन रश्य से तो

व्यक्ति समस्या का समाधान करना छोड़ देता है, लेकिन अचेतन रूप से वह उस समस्या का समाधान सोचता रहता है, और इसी अचेतन के प्रयास का समाधान सोचता रहता है, और इसी अचेतन के प्रयास के कारण ही हमें उस समस्या का समाधान मिल पाना हैं।

11. **नशा-** नशे की हालत में होने वाले व्यवहारों से भी अचेतन के अस्तित्व का पता चलता है। प्रायः नशे की स्थिति में व्यक्ति गन्दे व अनैतिक विचारों एवं व्यवहारों को व्यक्त करता है, जबकि सामान्य स्थिति में वह ऐसा नहीं करता है, क्योंकि नशे की हालत में व्यक्ति का अचेतन मन सक्रीय हो उठता है और चेतन मन निष्क्रीय हो उठता है।

3.6 चेतन अचेतन और अर्द्वचेतन मन का तुलनात्मक अध्ययन

तीन भाग चेतन, अचेतन व अर्द्वचेतन मन के आकारात्मक पहलू है, इनका तुलनात्मक अध्ययन हम निम्न तथ्यों के आधार पर कर सकते हैं-

1. चेतन मन का वह भाग है, जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से लेता है, इस मन की समस्त अनुभूतियाँ है, मस्तिष्क में ताजी रहती है। और अर्द्वचेतन में व्यक्ति अनुभूतियों से वर्तमान समय में अवगत नहीं रहता है, बल्कि थोड़ा प्रयास करने पर उससे आसानी से अवगत हो जाता है । और अचेतन मन का वह भाग है, जिससे व्यक्ति पूर्णतः अनभिज्ञय रहता है, उसे चाहकर भी व्यक्ति याद करने में असफल रहता है।
2. चेतन मन का आकार सबसे छोटा होता है, अर्द्वचेतन का उससे बड़ा और अचेतन का आकार सबसे बड़ा होता है।
3. चेतन मन मे केवल वर्तमान अनुभूतियों की स्मृतियाँ रहती है, जबकि अचेतन मन में बीती हुई अनुभूतियाँ रहती है, जिनाक तत्कालिक अनुभवों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, जबकि अर्द्वचेतन में विगत अनुभूतियाँ तो होती है, परन्तु उनका तात्कालिकक अनुभवों से सम्बन्ध जुडा़ होता है, और आवश्यकता पड़ने पर हम उनका प्रत्यावाहन कर सकते हैं।
4. चेतन मन का स्वरूप नैतिक एवं सामाजिक होता है, जबकि अचेतन मन की इच्छाओं का स्वस्थ्य अनैतिक, असामाजिक तथा आर्थिक होता है, और अर्द्व-चेतन की इच्छाएँ भी नैतिक एवं सामाजिक ही होती है। लेकिन इसका व्यक्ति के व्यवहार पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता है।
5. मन के चेतन भाग सम्बन्ध पराहं (Superego) तथा अहं (Id) से अधिक होता है, परन्तु अचेतन का सम्बन्ध उपाहं (Ego) से अधिक होता है। और अर्द्वचेतन भाग पर अहं की प्रवृत्तियों का थोड़ानियंत्रण पाया जाता है।
6. चेतन मन की विषय एवं व्यक्त होता है, इसी कारण चेतन मन के विषय के किसी भी भाग का हम अपनी इच्छानुसार प्रत्यावाहन कर लेते हैं। अचेतन के विषय पूर्णतया दमित होते हैं फलतः

उनाक प्रत्यावाहन बहुत कोशिश करने के बावजूद भी हम नहीं कर पाते हैं, जबकि अर्द्धचेतन का विषय आंशिक रूप से दमित होता है, और आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति थोड़े से प्रयास द्वारा उनका प्रत्यावाहन कर लेता है।

3.7 अचेतन मन का महत्व

मनुष्य का स्वभाव बहुत जटिल होता है, और उस जटिल स्वभाव की अभिव्यक्ति व्यवहार के रूप में होती है, अतः व्यवहारों का जटिल होना स्वाभाविक व्यवहारों के समुचित विश्लेषण तथा व्याख्या के आधान पर मानव के जटिल स्वस्थ्य को समझने में अचेतन मन का विशेष महत्व है-

1. अचेतन मन का महत्व मानसिक रोगों को समझने एवं उसे लक्षणों के कारण को समझने में बहुत अधिक है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत है, कि मानसिक रोगों के कारण व्यक्ति की अतृप्त इच्छाएँ एवं मानसिक संघर्ष आदि होते रहते हैं, जो अचेतन में दबे रहते हैं, अचेतन के द्वारा इन रोगों के कारणों लक्षणों द्वारा को समझने में बहुत सहायता मिलती है।
2. हमारे जीवन में हर रोज की घटनाओं जैसे- स्वप्न दिवास्वप्न, दैनिक जीवन की भूलें, मानसिक संघर्षों आदि को समझने में अचेतन मन का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।
3. अचेतन मन का महत्व मानसिक रोगों के उचार बहुत अधिक होता है। मनोचिकित्सा की विभिन्न विधियों जैसे सम्मोहन, मनोविश्लेषण के द्वारा अचेतन मन की अतृप्त इच्छाओं एवं संघर्षों का पता लगाया जाता है, और फिर रोग के अनुकूल उसकी चिकित्सा की जाती है।
4. स्वप्नों की व्याख्या करने में भी अचेतन मन का महत्व बहुत अधिक है। क्योंकि स्वप्न अकारण नहीं होते हैं, बल्कि अचेतन में दबी इच्छाओं के कारण दिखाई देते हैं।

3.8 मन का गत्यात्मक पक्ष

मन के गत्यात्मक पहलू का सम्बन्ध अर्थ- अर्थात जिसके द्वारा मूल प्रवृत्तियों में उत्पन्न होने वाले संघर्षों का समाधान किया जाता है।

मूल प्रवत्तियों से तात्पर्य- ऐसे जन्मजात एवं शारीरिक उत्तेजना से होता है, जिसके द्वारा व्यक्ति के सभी तरह के व्यवहार निर्धारित किये जाते हैं, मूल प्रवृत्तियों को दो भागों में बाँटा गया है-

1. जीवन मूल प्रवृत्ति
2. मृत्यु मूल प्रवृत्ति

जीवन मूल प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के रचनात्मक कार्यों को करता है, और मृत्यु मूल प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के ध्वंसात्मक एवं आक्रमणकारी व्यवहार करता है। जबकि सामान्य व्यक्तित्व में इन दोनों तरह की प्रवृत्तियों में एक तरह का संतुलन बना रहता है और जब जीवन मूल

प्रवृत्ति और मृत्यु प्रवृत्ति में संघर्ष होता है, तो व्यक्ति उसका समाधान करने की कोशिश करता है, और इसका समाधान मूलतः तीन प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन कर लिया है-

1. उपाहं (Id)
2. पराहं (Ego)
3. नैतिक मन (Super ego)

1) उपाह- जन्म के समय की शरीर की संरचना मे जो कुछ भी निहित होताहै वह पूर्णतः उपांह (इड) होता है अर्थात जन्म के समय शिशु का मन पूर्ण रूप से उपांह होता है, यह जन्मजात और वंशानुगत होता है एक नवजात शिशु में उपांह की प्रवृत्तियाँ की भरमार हैाती है और ये प्रवृत्तियों आनन्द सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होती है क्योंकि ऐसी प्रवृतियों का मुख्य उद्देश्य आनन्द देने वाल प्रेरणाओं की संतुष्टि करना है उपांह को क्या उचितहै क्या अनुचित क्या सही, क्या गलत, विवेक - अविवेक समय स्थान आदि से काई मतलब नहीं होता है।

इसे वास्तविकता से कोई मतलब नहीं होता है। क्योंकि वह अवचेतन में होता है। उपांह की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न है-

1. उपांह में जीवन मूल प्रवृत्ति और मृत्यु मूल प्रवृति दोनों (अर्थात रचनात्मक और विध्वन्सात्मक) ही कार्यों से उसे सुख या आनन्द की प्राप्ति होती है। जैसे खिलौने से मन भर जाने के बाद वह उसे पटक-पटक कर तोड़ डालता है इस दोनों ही तरह के कार्यों में बच्चे को आनन्द मिलता है।
2. उपांह का सम्बन्ध जीवन की वास्तविकता से नहीं होती है अर्थात उपांह नैतिक एवं सामाजिक प्रतिबन्धों का बिना ख्याल किये ही अपनी सभी इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। जैसे यदि कोई बच्चा मोर देखने का निश्चय कर लेता है तो वह हर हाल में मोर देखने के लिए लालायित रहता है।
3. उपांह पूरी तरह अचेतन होता है। इसलिए यह नैतिकता से पूरे असामाजिक एवं वास्तविकता से दूर होता है।
4. उपांह आनन्द सिद्धान्त पर आधारित होता है। उपांह आनन्द सिद्धान्त द्वारा निर्देशित एवं नियंत्रित होता है इसका मुख्य उद्देश्य केवल सुख या आनन्द को प्राप्त करना है। जैसे जब कोई बच्चा मोद देखना चाहता है तो वह काफी दूर पैदल चलकर भी उसे देखने जाने में भी वह नहीं हिचकिचाता है।
   उपांह में सही गलत का ज्ञान नहीं होता स्तपक को क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए इसका उसे बिल्कुल ज्ञान नहीं होता है। यही कारण है कि एक छोटा बच्चा किसी भी चीज को पकड़ने से नहीं हिचकिचाता है।
5. अहं तथा नैतिक मन को बाह्य वातावरण की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है जबकि अहं का वाह्य वातावरण की वास्तविकता से सीधा सम्बन्ध होता है।

6. अहं व्यक्त्तिव का केन्द्रक होता है यह उपाहं और नैतिक मन के साथ वातावरण की वास्तविकताओं के मध्य सामान्जस्य बनाकर किया या व्यवहार करता है।

उपाहं, अहं और नैतिकमन में कुछ समानताएँ होते हुए भी ये तीनों एक दूसरे से अलग हैं।

उपाहं के कार्य- उपाहं का मुख्य कार्य इच्छाओं की संतुष्टि से है। यह किसी भी प्रकार के तनाव से तुरन्त छुटकारा पाना चाहता है। उपाहं व्यक्त्तिव में उत्पन्न तनाव एवं सघर्षों को दूर करने के लिए दो तरह की प्रक्रियाओं को अपनाता है-

i. सहज प्रक्रिया ii. प्राथमिक क्रिया

सहज क्रियाएँ जन्मजात एवं स्वचालित होती है। जैसे छीकंना, पलक झपकाना आदि। व्यक्ति सहज क्रियाओं के पूरा होने के बाद संतोष का अनुभव करता है। प्राथमिक प्रक्रिया में व्यक्ति वैसे उद्दीपको जिनसे पहले इच्छा की संतुश्टि होती थी के बारे में मात्र एक कल्पना कर अपने संघर्ष या तनाव को दूर करता है जैसे एक बच्चा जिसे खिलौने को वह पहले खेलता था नहीं देने पर वह उस खिलौने की मात्र कल्पना करके ही अपनी इच्छा की पूर्ति कर लेता है और मानसिक तनाव को दूर करता है।

2) अहं (Ego) पराहं- अहं मन के गत्यात्मक पहलू का दूसरा मुख्य भाग है। अहं का अर्थ आत्मा या चेतन बुद्धि से होता है। जन्म के कुछ समय बाद तक बच्चा पूरी तरह उपाहं की प्रवृत्तियों द्वारा नियंत्रिंक होता है लेकिन सामाजिक नियमों एवं नैतिक मूल्यों के कारण उसकी ऐसी प्रवृत्तियों या इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती जिसके फलस्वरूप बच्चे में निराशा का अनुभव होता है और उनका सम्बन्ध वास्तविकता से हो जाता है इस प्रक्रिया के दौरान उसमें अहं का विकास होता है। अहं का मन का वह भाग हे जिसका सम्बन्ध वास्तविकता से होता है तथा यह बचपन में उपाहं की प्रवृत्तियों से ही जन्म लेता है। यह मन का वह भार है जिसका सम्बन्ध वास्तविकता से होता है। यह उपाहं की इच्छाओं और भौतिक जगत की वास्तविकताओं के मध्य समायोजनकर्ता का कार्य करता है।

बालक की आयु जैसे -जैसे बदलने लगती है वैसे-वैसे उसमें मेरा और मुझे जैसे शब्दों से अर्थ स्पष्ट होने लगते हैं धीरे-धीरे बच्चा यह समझने लगता है कि कौन सी चीज उसकी है और कौन सी चीज दूसरों की है। अहं, उपाहं का एक विशिष्ट अंग है जो वाह्य वातावरण के कारण विकसित होता है।

अतः वाह्य वातावारण से इकट्ठा किया गया ज्ञान ही अहं की विषय-सामग्री है। अहं की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं-

1. अहं थोड़ाचेतन, थोड़ाअर्द्धचेतन और थोड़ाअचेतन होता है। अतः अहं के द्वारा तीनों ही स्तरों पर निर्णय लिये जाते हैं।
2. अहं वास्तविकता सिद्धान्त द्वारा निर्देशित एवं नियंत्रित होता है।
3. अहं व्यक्तिव की कार्यकारिणी शाखा के रूप में कार्य करता है अतः इसके द्वारा सभी महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं।
4. अहं एक समायोजक के रूप में कार्य करता है यह उपाहं एवं नैतिक मन की अवास्तविक प्रवृत्तियों से पूर्णतः अवगत रहता है तथा उसके परिणाम को गम्भीरतापूर्वक सोचता है और दूसरी ओर उन प्रवृत्तियों एवं इच्छाओं की सामाजिक वास्तविकता को ध्यान में रखकर मौका मिलने पर उसको पूरा करने की अनुमति भी देता है।
5. अहं का सम्बन्ध नैतिकता से हनीं होता है क्या उचित है क्या अनुचित है अहं का सम्बन्ध इससे नहीं होता है बल्कि अवसर मिलने पर यह अनुचित कार्यो को भी करने की अनुमति दे देता है यही कारण है कि अवसर देखकर विधार्थी परीक्षा में नकल कर लेते हैं।

अहं के कार्य- अहं का मुख्य कार्य वाह्य वातावरण के वास्तविकता के नियम के आधार पर करता है। यह तुरन्त इच्छाओं की संतुष्टि का विरोधी नहीं है बल्कि उपर्युक्त परिस्थिति के आते ही यह तात्कालित तृप्ति में सहायता करता है। यह व्यकित्तव का बौद्धिक पक्ष है अतः यह तात्कालिक संतुष्टि के लिये उपयुकत परिस्थिति को खोजने का कार्य करता है।

3) नैतिकमन (सुपर इगो)- व्यक्ति का यह भाग सबसे बाद में विकसित होता हैं। यह व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है जो व्यक्ति का समाजीकरण करता है। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाता है वह अपना तादातक्य माता, पिता के साथ स्थापित करने लगता है फलस्वरूप बच्चा वह सीख लेता है कि क्या सही है क्या गलत, क्या उचित है, क्या अनुचित है क्या नैतिक है और क्या अनैतिक और वही से नैतिक मन की शुरूआत होती है। यह आदर्शवादी सिद्धान्त द्वारा निर्देशित एवं नियति होता है। बचपन में सामाजीकरण के दौरान बालक अपने माता,पिता द्वार दिये गये उपदेशों को अपने अहं में आत्मसात कर लेता है और यही बाद में नैतिक मन रहस्य ले लेता है नैतिक मन विकसित होकर एक तरफ उपाहं की कामुक, आक्रामक एवं अनैतिक प्रवृत्तियों पर रोक लगाता है तो दूसरी ओर अहं की वास्तविक एवं यथार्थ लक्ष्यों से हटाकर नैतिक लक्ष्यों की ओर ले जाता है।

एक पूर्णतः विकसित नैतिक मन व्यक्ति के कामुक एवं आक्रामक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण दमन के माध्यम से करता है।

जबकि वह दमन का प्रयोग स्वंय नहीं करता है बल्कि वह अहं को दमन के प्रयोग का आदेश देकर ऐसी इच्छाओं पर नियंत्रण रखता है यदि व्यक्ति के अहं के इस ओदश का पालन नहीं

करता है तो व्यक्ति में दोष भाव उत्पन्न हो जाते हैं अहं की तरह ही नैतिक मन भी चेतन अर्द्धचेतन व अचेतन तीनों ही स्तरों पर होता है। नैतिक मन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं-

1. नैतिक मन आदर्शों का भण्डार होता है, यह नैतिकता से युक्त होने के कारण उपाहं की कामुक इच्छाओं पर नियंत्रण करता है। जिन व्यक्तियों में नैतिक मन का विकास अधुरा होता है वे प्रायः धृणित कार्यां (जैसे हत्या, चोरी, डकैती आदि) को करते हैं और इन्हें इसका कोई पश्चाताप भी नहीं होता है।
2. नैतिक मन,चेतन, अद्धचेतन व अचेतन तीनों ही स्तरों पर कार्य करता है।
3. नैतिक मन की दो कार्य प्रणाती होती है। अन्तः करण या विवेक तथा अहं का आर्दश । जब बच्चों द्वारा अनुचित या गलत कार्य किया जाता है, तब उन्हें माता,पिता द्वारा सजा या गलत कार्य किया जाता है, तब उन्हें माता, पिता द्वारा सजा या दण्ड मिलता है जिसके फलस्वरूप बच्चे में अन्तःकरण या विवेक विकसित होता है। तथा जब बच्चों द्वारा उचित या सही अच्छा कार्य किया जता है तो माता, पिता द्वार उन्हें शाबाशी या पुरूस्कार दिया जाता है। जिसमें बच्चें में अहं आदर्श विकसित होता है।
4. अपाहं का तरह की नैतिक मन अवस्तविक होता है क्योंकि यह अपने नैतिक ओदशों को अहं द्वारा पूरा करवाने में अहं के सामने आये वास्तविक कठिनाई यों का तनिक भी ख्याल नहीं करता है।
5. नैतिक मन व्यक्ति की अनैतिक एवं कामुक प्रवृत्तियों पर दमन द्वारा रोक लगाता है यद्यपि दमन का प्रयोग नैतिक मन स्वंय नहीं कर सकता है बल्कि इसका प्रयोग नैतिक मन स्वंय नहीं कर सकता है बल्कि इसका प्रयोग अहं द्वारा करवाकर ऐसी प्रवृत्तियों एवं इच्छाओं पद रोक लगवाता है। यदि अहं नैतिक मन के दमनकारी आज्ञा का पालन नहीं करता है तो नैतिक मन व्यक्ति में दोष की भावना व पश्चाताप की भावना उत्पन्न कर देता है।

नैतिक मन के कार्य- नैतिक मन सामाजिकता एवं नैतिकता का प्रतिनिधित्व करता है। नैतिक मन का कार्य पराहं और अहं से भिन्न है। यह अहं के उन सभी कार्यों पर रोक लगता है जो सामाजिक और नैतिक नहीं है। नैतिक मन अहं के प्रति कार्य और व्यवहार जैसा होता है। अर्थात यह अहं को नैतिक और सामाजिक लक्षयों की आरे ले जाने का प्रयास करता है।

3.9 उपाहं, पराहं और नैतिकमन के बीच सम्बन्ध

उपाहं अहं एवं नैतिक मन से व्यक्तिव की संरचना होती है और ये तीनों ही गतिशील पक्ष है। एक सामान्य व्यक्ति में इन तीनों ही अंगों में पर्याप्त मात्रा में सामंजस्य पाया जाता है इन तीनों की इकाइयों में जितना ही आपस में विरोध या खीचातानी होती है व्यक्ति का व्यक्तिव उतना ही असामान्य होता हैं एक सामान्य व्यक्ति के यह आवश्यक है कि इन तीनों इकाईयों में आपस में

सामान्जस्य बना रहे। उदाहरण के लिए-कोई व्यक्ति है उसकी जेब में पैसा है। पास लेटे दूसरे व्यक्ति के मन में यह ख्याल आता है कि नहीं यह गतल है। यहां पैसा चुराना उपाहं अभी नहीं जब वह व्यक्ति सो जायेगा तब पैसा चुराना अहं और पैसा न चुराने कि ये एक बुरी बात है नैतिक मन का प्रतीक है। जब व्यक्ति में अहं अधिक प्रबल होता है तब व्यक्ति में मैं की अधिकता होती है और जिस व्यक्ति में नैतिक मन की प्रबलता होती है वह आर्दशवादी व्यक्ति होता है उसमें भले बुरे का विचार अधिक होता है। उपाहं अहं और नैतिक मन में कुछ समानताएँ और कुछ भिन्नताएं निम्न है-

समानताएँ-

1. उपाहं अहं और नैतिक मन ये तीनों ही मन के गत्यात्मक पहलू के काल्पनिक भाग है।
2. किसी भी मानसिक संघर्ष में उपाहं, अहं और नैतिक मन तीनों की सम्मिलित होते हैं अन्तर सिर्फ मात्रा का होता है।

विभिन्नताएँ-

1. उपाहं बच्चों में जन्म से मौजूद रहता है एक वर्ष के बाद बच्चे में अहं का विकास होता है और बच्चा अपने माता,पिता के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। तथा उसके उपेदशों का पालन करने लगता है तो उसमें नैतिक मन का विकास होने लगता है।
2. उपाहं आनन्द सिद्धान्त द्वारा अहं वास्तविकता सिद्धान्त द्वारा और नैति मन आर्दशवादी सिद्धान्त द्वारा नियंत्रित होता है।
3. अहं एक समायोजक के रूप में कार्य करता है जबकि उपाहं और नैतिक मन की प्रवृत्तियों परस्पर विरोधी होती है। यह अं को अपनी ओर खीचने का कार्य करती है।
4. उपाहं पूर्णतया अचेतन होता है जबकि अहं तथा नैतिक मन थोड़ाअचेतन अर्द्धचेतन व चेतन होते हैं।

3.10 सारांश

मन के आकारात्मक और गत्यात्मक दोनों ही पक्षों का हमारे व्यत्ति के विकास एवं संगठन में विशेष स्थान है। से दोनों ही पक्ष हमारे व्यवहार को वातावरण के साथ समायोजन करने में मदद करता है। मन के आकारात्मक पहलू में अचेतन मन का महत्व काफी अधिक है, क्योंकि इससे असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र मं काफी प्रगति हुई है मन गत्यात्मक या संरचनात्मक पहलू का सम्बन्ध उन साधनों से होता है जिसके द्वार मूल प्रवृत्तियों ऐ उत्पन्न संघर्षों का समाधान होता है।

3.11 शब्दावली

- **तात्कालिक:** तुरन्त

- **प्रतिबन्धक:** रोकने का
- **आइसवर्ग:** हिम खण्ड
- **अनभिज्ञय:** अनजान
- **तादात्म्य:** सम्बन्ध

3.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- सत्य/असत्य बताइये
  1) मन की दो अवस्थाएँ होती है।
  2) चेतन, अर्द्धचेतन मन के गत्यात्मक पहलू के तीन भाग हैं।
  3) अचेतन मन का सबसे छोटा भाग होता है।
  4) अचेतन, अर्द्धचेतन और चेतन के बीच सेतु का काम करता है।
  5) अचेतन मन के बारे में व्यक्ति पूरी तरह से अनभिज्ञय रहता है।
  6) मूल प्रवृत्तियाँ तीन प्रकार की होती है।
  7) उपांह (Id) जन्म जात एवं वंशानुगत होता है।
  8) अहं (Ego) का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है।
  9) अहं (Ego) एक समायोजक के रूप में कार्य करता है।
  10) नैतिक मन आदर्शवादी सिद्धान्त द्वारा नियंत्रित नहीं होता है।
- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?
  11) चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतन मन के .... पक्ष के अन्तर्गत आते हैं।
  12) उपाहं पराहं और नैतिक मन.................... पक्ष के अन्तर्गत आते हैं।
  13) चेतन मन, अर्द्धचेतन व अचेतन पर .... का कार्य करता है।
  14) अर्द्धचेतन, चेतन और अचेतन की ....का भाग है।
  15) अचेत मन में कामुक .... ईच्छाओं की प्रधानता होती है।
  16) जीवन मूल प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के .... कार्य करता है।
  17) उपाहं (Id) का मुख्य कार्य .... इच्छाओं की संतुष्टि से है।
  18) उपाहं, पराहं और नैतिक मन का सम्बन्ध व्यक्ति के .... से होता है।
  19) उपाहं बच्चों में .... से मौजूद रहता है।
  20) अहम् व्यक्तित्व का .... होता है।

उत्तर: 1) सत्य 2) असत्य 3) असत्य 4) सत्य 5) सत्य 6) असत्य

7) सत्य 8) सत्य 9) सत्य 10) असत्य 11) आकारात्मक

12) गत्यात्क 13) प्रतिबन्धक 14) बीच 15) अनैतिक, असामाजिक

16) रचनात्मक 17) शारीरिक 18) व्यक्तित्व 19) जन्म से 20) केन्द्र

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ0 अरूण कुमार सिंह, उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान प्रकाशन, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, असामान्य मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- डॉ0 मोहम्मद सुलेमान, असामान्य मनोविज्ञान , मोती लाल, बनारसीदास ,दिल्ली।
- डॉ0 लाभ सिंह, डॉ0 गोविन्द तिवारी, असामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मन की कितनी अवस्थाएँ होती है?
2. मूल प्रवृत्तियाँ किसे कहते हैं?
3. मृत्यु मूल प्रवृत्ति से आप क्या समझते हैं?
4. मन के गत्यात्मक पहलू का अन्तिम भाग कौन सा है?
5. अहमं किस सिद्धान्त द्वारा नियंत्रित होता है?
6. उपाहं के अनैतिक, असामाजिक और संवेगों पर रोक कौन लगता है?
7. जब उपाहं, अहमं और नैतिक मन मेंस से एक इकाई अधि प्रभावशाली हो जीती है, तो क्या होता है?
8. अचेतन मन से आप क्या समझते हैं अचेतन मन के अस्तित्व के कुछ प्रमाण उदाहरण द्वारा प्रस्तुत कीजिए?
9. मन के गत्यात्मक पक्ष से आप क्या समझते है, उपाहं पराहं और नैतिक मन के बीच सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए?

इकाई–4 मनोविश्लेषणात्मक एवं व्यवहारात्मक उपागम

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मनोविश्लेषणात्मक उपागम
4.4 मनोविश्लेषणात्मक का अर्थ
4.5 मनोविश्लेषण सिद्धान्त की व्याख्या
4.5.1 व्यक्तित्व की संरचना
4.5.2 व्यक्तित्व की गत्यात्मकता
4.5.3 व्यक्तित्व का विकास
4.6 फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का मूल्यांकन
4.7 व्यवहारात्मक उपागम का अर्थ
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में असामान्यता की मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा का जन्म सिग्मण्ड फ्रायड के प्रयासों से हुआ। ये पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होनें बतलया कि असामान्य व्यवहार या मानसिंक रोग का आधार मनोवैज्ञानिक होता है और इसका उपचार भी मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जा सकता है। असामान्यता की इस विचारधारा को मनोविश्लेषिक विचार धारा तथा उनके द्वारा प्रस्तावना विधियों का मनोविश्लेषण कहा गया।

फ्रायड की इस विचारधारा का मूल तत्व यह है कि मानसिक रोग दैहिक कारकों से नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक कारकों से उत्पन्न होते हैं। फ्रायड की यह विचारधारा काफी जटिल है लेकिन फ्रायड की इस विचारधारा का विरोध महत्व के कारण मनोविज्ञान में एक विशेष स्थान है।

असामान्य मनोविज्ञान में असामान्य व्यवहार की व्याख्या एवं उपचार के लिए व्यवहारवादी विचारधारा की की उत्पत्ति मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्कूल जिसे व्यवहारवाद कहा जाता है महत्वपूर्ण स्कूल जिसे व्यवहारवाद कहा जाता है से हुआ है। यद्यपि व्यवहारवाद की स्थापना वाटसन के द्वारा की गई है लेकिन पैवलॉव थार्नडाइक स्मिथ आदि मनोवैज्ञानिकों की भूमिका अत्यन्त सराहनीय है।

4.2 उद्‌देश्य

इस इकाई को पड़ाने के बाद आप -

- प्रसिद्ध मनोविज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड के बारे में बता सकेगे।
- मनोविश्लेषणत्मक सिद्धान्त के विभिन्न पहलुओं के बारे में बता सकेगे।
- व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के बारे में बात सकेगें।
- व्यक्तित्व के विकास के बारे में बात सकेगे।
- व्यवहारात्मक उपागम के बारे में बता सकेगे।

4.3 मनोविश्लेषणात्मक उपागम

सिगमण्ड फ्रायड का जन्म 1856 में आस्ट्रिया के मार्बिया में हुआ था। ये जन्म से यहूदी थें। अपनी मृत्यु से चार वर्ष पूर्व तक ये वियना में रहे। आपकी मृत्यु 1939 में हुई। फ्रायड ने अपने 40 वर्षो के नैदानिक अनुभवों के बाद व्यक्तित्व के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया फ्रायड ने साइको सक्सुअल जीन्सेस द्वारा व्यक्तित्व विकास को समझाया। इन्होंने व्यक्तित्व विकास में लिंग को विशेष महत्व दिया। आपने शैशावस्था में कामुकता को विशेष महत्व दिया। जिस कारण लोग इन्हें गन्दे दिमाग वाला भी कहते हैं। क्योंकि फ्रायड ने छोटे बच्चों में भी यौन सन्तुष्टि सिद्धान्त को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने लिंग शब्द का अर्थ विशेष अर्थो में लिया।

क्योंकि फ्रायड ने छोटे बच्चों में भी यौन सन्तुष्टि सिद्धान्त को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने लिंग शब्द का अर्थ विशेष अर्थो में लिया।

- लिंग शब्द प्राणी की विशेषताओं के लिए प्रयुक्त है और जिन विशेषताओं के आधार पर प्राणियों को नर-मादा स्त्री-पुरूष कहते है।
- लिग शब्द का अर्थ ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया से है।
- लिंग शब्द का अर्थ आकर्षण से है। इसी लिए विपरीत लिंग के लोग एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते है।

4.4 मनोविश्लेषण का अर्थ

इस शब्द के तीन अर्थ है -

- प्रथम स्थान पर ये एक प्रविधि हैं। जिसके द्वारा मानसिक जीवन की चेतन और अचेतन गतिशीलता की खोज की जाती है।
- दूसरे स्थान पर यह एक मनोचिकित्सा है जिसके माध्यम से विभिन्न तरह के मानसिक रोगियों का उपचार इस तरह किया जाता है कि जीवन की समस्याओं के प्रति बेहतर और सुखी समायोजन कर सके।
- तीसरे स्थान पर मनोविज्ञान में मनोविश्लेषण एक सम्प्रदाय है जिसके अन्तर्गत बहुत से मनोवैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं।

4.5 मनोविश्लेषण सिद्धान्त की व्याख्या

यह सिद्धान्त मानव प्रकृति या स्वभाव के बारे में कुछ पूर्व कल्पनाओं पर आधारित हैं। इन पूर्व कल्पनाओं पर आधारित इस सिद्धान्त को तीन भागों में बॉटा जा सकता है।

1. व्यक्तित्व की संरचना
2. व्यक्तित्व की गतिकी
3. व्यक्तित्व का विकास

4.5.1 व्यक्तित्व की संरचना-

फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचाना का वर्णन करने के लिए दो प्रतिरूपों का निर्माण किया है।

1) आकारात्मक प्रतिरूप- आकारात्मक प्रतिरूप से तात्पर्य ऐसे पहलू से है, जहाँ मन में संघर्षपूर्ण स्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है। मन का यह पहलू व्यक्तित्व की गत्यात्मक शक्तियों के बीच होने वाले संघर्षो का एक कार्य स्थल होता हैं। फ्रायड ने इसे तीन भागों में बॉटा है -

    i. चेतन
    ii. अर्द्ध चेतन
    iii. अचेतन

चेतन मन का वह भाग जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से होता है जैसे- कोई पड़ रहा है तो पड़ने की चेतना होती है कोई लिख रहा है तो लिखने की चेतना होती है। चेतन व्यक्तित्व का लघु एवं

सिमित भाग होता हैं किसी भी क्षण व्यक्ति के मन में आ रही अनुभूतियों का सम्बन्ध उसके चेतन से होता है।

परन्तु प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाती है। अलमारी में किस किताब को ढूढने पर जब हम उसे नहीं पाते हैं, तो थोड़ी देर के लिए परेशान हो जाते है। कुछ देर सोचने के बाद अचानक याद आता है। कि वो किताब हमने अपने एक दोस्त को दी थी। तो यह अर्द्ध चेतन मन का उदाहरण होगा।

अर्द्ध चेतन मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय सामग्री से होता है जिसे व्यक्ति इच्छानुसार कभी भी याद कर सकता है। यह न तो पूर्णतः चेतन होती है, ओर न ही पूर्णतः अचेतन इसमें वैसी इच्छाएँ, विचार भाव आदि होते है, जो हमारे वर्तमान चेतन या अनुभव में नहीं होते।

अचेतन मन का वह भाग है जिसका समबन्ध ऐसी विषय सामग्री से होता है जिसे व्यक्ति इच्छानुसार याद करके चेतना में लाना चाहे तो भी नहीं ला सकता। अचेतन मन में रहने वाले विचार एवं इच्छाओं का स्वस्थय कामुक, असामाजिक, अनैतिक एवं घृणित होता है, क्योंकि ऐसी इच्छाएँ दिन-प्रतिदिन जी जिन्दगी में पुरा करना सम्भव नहीं हो पाता। अतः उनको चेतन से हटाकर अचेतन में दमित कर दिया जाता है। जहाँ जाकर ऐसी इच्छाएँ समाप्त नहीं हो पाती है, बल्कि थोड़ी देर के लिए निश्क्रिय अवश्य हो जाती है, और चेतन में आने का प्रयास करती रहती हैं।

2) गत्यात्मक प्रतिरूप- फ्रायड के अनुसार, मन के गत्यात्मक माँडल से अर्थ उन सधनों से होता है जिनके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संधर्शो का समाधान होता है। ऐसे साधन निम्न है।

उपाहम का मुख्य कार्य शारिरिक इच्छाओं की सन्तुष्टि से होता हे। यह किसी भी प्रकार के तनाव से तात्कालिक छुटकारा पाना चाहता हे। यदि कोई बच्चा पहले किसी खिलौने से खेलता था, उसे नहीं देने पर उस खिलौने मात्र की कल्पना करके अपनी इच्छा पूर्ति करता है ओर मानसिक तनाव दूर करता है।

अहंम आवश्यकताओं की वास्तविक पूर्ति से सम्बन्धित है। यह तुरन्त सन्तुष्टि का विरोध नहीं है बल्कि उपयुक्त परिस्थिति आने पर यह तात्कालिक सन्तुष्टि हैं अहं को व्यक्तित्व का निर्णय लेने वाला माना गया है क्योंकि यह थोडा चेतन थोडा अर्द्धचेतन और थोडा अचेतन होता है इसलिए अहं द्वारा इन तीनो स्तर पर निर्णय लिये जाते हैं। नैतिक मन सामाजिकता एवं नैतिक नहीं है। यह अहंमं के उन सभी कार्यो पर रोक लगाता है। जो सामाजिक और नैतिक नहीं है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है वह अपना सम्बन्ध माता-पिता के साथ स्थापित करने लगता है। फलतः वह सीख लेता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित इसे व्यक्तित्व की नैतिक शाखा माना गया है।

4.5.2 व्यक्तित्व की गत्यात्मकता-

फ्रायड के अनुसार मानव जीवन का अध्ययन करना एक जटिल कार्य है जिसमें शरीरिक ऊर्जा से व्यक्ति की शरीरिक क्रियाए जैसे- दोड़ना, लिखना, सॉस लेना आदि। मानसिक क्रियाए जैसे चिन्तन सीखना आदि। फ्रायड ने इन ऊर्जाओं से सम्बन्धित ऐसे प्रत्ययों का विकास किया जिनसे व्यक्तित्व की गत्यातमकता जैसे मूल प्रतृत्ति चिन्ता आदि वर्णन होता हे।

1) मूल प्रवृत्तिया- मूल प्रवृत्तियों से तात्पर्य जन्मजात शारीरिक उत्तेजना से है, जिसके द्वारा व्यक्ति के सभी तरह क व्यवहार निर्धारित होते हैं फ्रायड ने मूल प्रवृत्तियों को दो भागों में बॉटा है। -

जीवन मूल प्रवृत्ति, मृत्यु मूल प्रवृत्ति।

जीवन मूल प्रवृत्ति का इरोस तथा मृत्यु प्रवृत्ति को यैनाटोस कहा जाता है। जीवन मूल प्रवृत्ति द्वारा व्यक्ति सभी तरह के रचनात्मक कार्य जिनमें मानव वर्ग या जाति का प्रजनन भी शामिल है। मृत्यु मूल प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के ध्वंसात्मक कार्यो तथा आक्रमणकारी व्यवहारों का निर्धारण होता है। सामान्य व्यक्तित्व में दोनो की तरह क मू प्रवृत्तियों में संतुलन पाया जाता है।

2) चिन्ता- चिन्ता एक भावानात्मक तथा दु:खद अवस्थ होती हे। जो अहंम के खतरे से सतर्क करती है। ताकि व्यक्ति वातावरण के साथ अनुकूली ढंग से व्यवहार रक सके । हम प्रायः तीन तरह की चिन्ता का अध्ययन करते है।
   i) वास्तविक चिन्ता
   ii) तंत्रिकातापी चिन्ता
   iii) नैतिक चिन्ता

वहय वातावरण में व्याप्त वास्तविका खतरे के प्रति की गई साम्वेगिक अनुक्रिया को वास्तविक चिन्ता कहा जाता है। जैसे - भूकम्प, तूफान, आग आदि। तंत्रिका तापी चिन्ता की उत्पत्ति उपाहम की इच्छाओं पर अहंम की निर्भरता से होती है। नैतिक चिन्ता में जब अहंम को नैतिक मन से दण्ड दिये जाने की धमकी मिलती हे। तो इससे व्यक्ति में नैतिक चिन्ता उत्पन्न होती है। फलस्वरूप व्यक्ति में दोष भाव शर्म की भावना उत्पन्न हो जाती है। ये तीनों तरह क चिन्ता आपस में एक दूसरे से भिन्न नहीं है। क्योंकि एक तरह की चिन्ता दूसरे प्रकार की चिन्ता को जन्म देती है।

3) अहं रक्षात्मक प्रक्रम- अहं रक्षात्मक प्रक्रम अहं को चिन्ताअें से अचा पाता है। रक्षात्मक प्रक्रमों का प्रयोग तो सभी व्यक्ति करते है। परन्तु इसका प्रयोग अधिक करने पर व्यक्ति के व्यवहार में बाध्यता एवं स्नायु विकृति कर गुण विकसित हो जाता है। सभी तरह के रक्षात्मक प्रक्रमों में कम से कम दो गुण अवश्य पाये जाने चाहिए।
   1. सभी रक्षात्मक प्रक्रम अचेतन स्तर का कार्य करते है।

2. ऐसे रक्षात्मक प्रक्रम वास्तविकता के प्रत्यक्ष को विकृत कर देते हे। फलतः व्यक्ति के लिए चिन्ता का स्तर कम हो जाता है।

प्रमुख रक्षात्मक प्रक्रम निम्न है।

दमन- एक ऐसा रक्षात्मक प्रक्रम है जिसके द्वारा चिन्ता, तनाव, मानसिक संघर्ष उत्पन्न करने वाली असामाजिक इच्छाओं को चेतन से हटाकर व्यक्ति अचेतन में कर देता है। जैसे- बीमार पिता का लड़की किसी डॉक्टर से इलाज करवाती है। डॉक्टर खूबसूरत है। वह लड़की डॉक्टर से प्यार करती है। उससे शादी करना चाहती है। लेकिन अपने बीमार पिता को देखते हुए वह कुछ समय के लिए अपनी इच्छाओं का दमन कर देती है।

यौक्तिकरण- यौक्तिकरण में अयुक्तिसंगत अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं से उत्पन्न तनाव का समाधान उस अभिप्रेरकों एवं इच्छाआं को युक्तिसंगत बनाकर अर्थात तर्क एवं विवेकपूर्ण व्याख्या कर किया जाता है। जैसे- कोई व्यक्ति अपनी आर्थिक तंगी से उत्पन्न चिन्ता को दूर करने के लिए यदि वह सोचता है कि अपने घर सूखी रोटी दूसरे के घर हलवे से अधिक स्वादिष्ट है।

इस तरह यौक्तिकरण में व्यक्ति अपने अयुक्तिसंगत व्यवहारों को एक युक्ति संगत एवं तर्क संगत व्यवहार के रूप में परिणत तक अपने आप एवं दूसरो को संतुष्ट कर अपना मानसिक संघर्ष दूर करने की कोशिश करता है।

प्रतिक्रिया निर्माण- प्रतिक्रिया निर्माण में व्यक्ति अपने अहं को किसी कष्ट कर या अप्रिय इच्छा तथ प्रेरण से ठीक उस इच्छा या प्रेरणा के विपरीत इच्छाओं तथा प्रेरणा विकसित करउसे बचाता है। प्रतिक्रिया निर्माण के विकास के दो चरण है। पहले चरण में व्यक्ति अपने अप्रिय एवं कष्टकर विचारों और इच्छाओं को अपने अचेतन में दमन कर देता है। और दूसरे चरण में वह इन दमित इच्छाओं एवं विचारों को ठीक विपरीत इच्छा चेतन स्तर पर व्यक्त कर अपने तनाव को दूर कर सकता है। जैसे- कानून का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति ही कानून की बात करता है।

प्रतिगमन- प्रतिगमन का अर्थ है पीछे की ओर जाना। यह एक ऐसा रक्षात्मक प्रक्रम हे। जिसमें मानव के समाधान के लिए व्यक्ति में बाल्यावस्था के व्यवहारों की ओर पलटने की प्रवृत्ति होती हे। इसके कई उदाहरण हमें दिन-प्रतिदिन के दैनिक जीवन में देखने को मिलते हे। कभी-कभी तनाव की अवस्था में बड़े लोग भी बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोते देखे गये है।

प्रक्षेपण- दूसरे लोगो या वातावरण के प्रति अपी मनोवृत्तियों एवं व्यवहारो को अचेतन रूप से आरोपित करने की प्रक्रिया को प्रक्षेपण कहा जाता है। जैसे-जब हम किसी काय्र में असफल हो जाते है तो असफल होने के कई कारण बनाकर या समझकर व्यक्ति अपनी चिन्ता को दूर कर लेता है। जैसे परीक्षा मे फेल हो जाने पर छात्र इसका दोष स्वयं पर न लेकर कठिन प्रश्न पूछे जाने शिक्षकों द्वारा

पाठो को नहीं पड़ाया जाना, परीक्षा के समय माता - पिता द्वारा घरेलू कार्य कराया जाना आदि कारण बताकर व्यक्ति अपनी चिन्ता को दूर करता है।

विस्थापन- विस्थापन में व्यक्ति अपने संवेग या प्रेरणा को किसी वस्तु विशेष या व्यक्ति से अचेतन रूप से हटाकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु से सम्बन्धित कर लेता है। अतः व्यक्ति अपने मानसिक संघर्ष या चिन्ता को कम करने के लिए साम्वेगिक प्रक्रियाओं को मौलिक या सम्बन्धित वस्तु से हटाकर किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु पर स्थानान्तरित कर देता है जैसे- माँ या पिता द्वारा डॉट मिलने पर बालक अपने से छोटे भाई बहनों को डांटता है।

उक्त सभी रक्षात्मक प्रक्रमों द्वारा व्यक्ति अपने आप को बाहय एवं आन्तरिक तनावों से बचाता है। प्रत्येक प्रक्रम के उपयोग में मनोवैज्ञानिक ऊर्जा खर्च होती है और इसका प्रयोग सभी स्वस्थ व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

4.5.3 व्यक्तित्व का विकास-

फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास की व्याख्या दो दृष्टिकोणों के आधार पर की है। पहला दृष्टिकोण यह है। कि वयस्क व्यक्तित्व बाल्यावस्था के भिन्न भिन्न तरह की अनुभूतियें द्वारा नियन्त्रित होता है। तथा दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार जन्म के समय बच्चों में लैगिक ऊर्जा मौजूद रहती है। जो विभिन्न मनोलैगिक अवस्थाओं से होकर विकसित होती है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व विकास की पॉच मुख्य अवस्थाए है।

1. मुखीय अवस्था
2. गुदीय अवस्था
3. लिंग प्रधान अवस्था
4. अव्यक्तावस्था
5. जननेन्द्रिया

1) **मुखीय अवस्था-** मुखीय अवस्था जैसे अंनूठा चूसना माँ का स्तनपान करना, निगलना आदि इसे दो भांगो में बॉटा गया है। पहला मूखीय चूषण की अवस्था जन्म से आठ माह की अवस्था है। इस अवस्था में बालक के किसी अंग का स्पर्श किया जाए तो उसे प्रिय लगता है। फ्रायड के अनुसार बालक की काम शक्ति की सन्तुष्टि होठ, मुख जीभ द्वारा व जबड़े होते है। इस अवस्था में बालक को आनन्द की प्राप्ति काटने चूसने व निगलने के द्वारा होती है। इस अवस्था में बालक को दॉत की सफाई करना आदि सिखाया जाता है।
2) **गुदीय अवस्था-** यह अवस्था दो से तीन वर्ष की होती है। इस अवस्था को भी दो भागों में बॉटा गया हैं- पहली अवस्था गुदा निष्कासन क अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में बच्चे में क्रूरता

क्रमहीनता विनासिता आदि गुणों की प्रधानता होती है। इस अवस्था में बालक को कामुक सूख की प्राप्ति मल-मूल निष्कासन से होती है। उसे मल -मूत्र जाने का प्रशिक्षण् दिया जाता हे। बालक कभी-कभी बिस्तर पर पेशाब कर आक्रामक प्रवृत्ति व्यक्त करता है। उसे मल-मूत्र त्याग के महत्व को समझाया जाता है। लगभग तीन वर्ष तक बालक लिंगभेद सीख जाता है। कि वह आगे चलकर क्या बनेगा मम्मी या पापा।

दूसरी अवस्था गुदा अवधारणा की अवस्था कहलाती है। इसमें बालक में हठ क्रमबद्धता तथा सम्यनिष्ठा आदि शील गुणो की प्रधानाता होती है। बालक अपने मल-मूत्र के सामाजिक महत्व को सीख जाता है। बच्चा यह समझने लगता है। कि माता - पिता एक दूसरे के आकर्षण का केन्द्र है।

3) **लिंग प्रधान अवस्थ-** यह चार से पॉच वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में बालक अपने गुप्तागों या ज्ञनेन्द्रियों से तीन प्रकार से सुख प्राप्त करता है। छूने के द्वारा, सहलाकर व खेलकर प्रदर्शन द्वारा । बाल्यावस्था कभी-कभी ये मूल प्रतियोगिता करते हुए भी देखा जा सकता है। वह सोचता है कि मैं बड़े होकर पिता/माँ जैसा बनूगा/ बनूगी।
4) **अव्यक्तावस्था-** यह छः से बारह वर्ष की अवस्था होती है। इसे सुप्तावस्था भी कहते है। इस अवस्था में सामाजिक भय के कारण कामजनित क्रियाएं शान्त रहती है। इस अवस्था में बालक की रूचि साथियों के साथ खेलना गप्पे लडाना आदि मुख्य हैं। बालक को माता - पिता द्वारा प्रदर्शित प्रेम अच्छा नहीं लगता है परिवार का यदि कोई व्यक्ति कंधे पर हाथ रखकर थपथपाता ओर आशीर्वाद देता है तो बच्चा सिहर उठता है माता-पिता के प्रति प्रेम सम्मान में बदल जाता है। यह अवस्था सुप्तावस्था इसलिए कहलाती है। क्योंकि इस अवस्था में शैश्वाकालीन कामुकता शान्त रहती है। इस अवस्था में बालक घार्मिक विचारों की ओर उन्मुख रहता है।
5) **ज्ञाननेन्द्रिय अवस्था-** यह अवस्था तेरह वर्ष की आयु से बीस वर्ष की अवस्था है। इस अवस्था में कामुकता एक बार फिर से जागृत होती है। विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण और रूचि उत्पन्न होती है। इस अवस्था में लड़के और लडकियाँ मनगढन्त कहानियों में खूब रूचि लेते हे। लडकियाँ लज्जा का सहारा लेती है। और उनमें संकोच की प्रवृत्ति जागत होती है।

4.6 फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का मूल्यांकन

फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के कुछ गुण और कुछ सीमाँए है -

गुण -

- फ्रायड का यह काफी विस्तृत एवं चुनौतीपूर्ण है। इनके द्वारा व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या काफी समझने योग्य भाषा में की गई है।

- फ्रायड के सिद्धान्त की अधिकाश भाषा ऐसी है जो आधुनिक व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों के लिए इस क्षेत्र में शोध करने के लिए महत्वपूर्ण साधन साबित हुए है।
- फ्रायड के सिद्धान्त का स्वरूप कुछ ऐसा है जिसके माध्यम से मानव व्यवहार के बारे में ज्ञात तथ्यों को तार्किक रूप से मनोविश्लेषणात्मक ढॅाचे में आसानी से ढाला जा सकता है।

अवगुण-

- फ्रायड का यह सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं है। क्योंकि अपने शोधो का फ्रायड ने क्रमबद्ध वर्णन नहीं किया है। अतः सही-सही प्राकल्पना तैयार करना मुश्किल है।
- फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में सैक्सुअल ऊर्जा पर जरूरत से ज्यादा बल दिया।
- आधुनिक मनोवैज्ञानिको का मत है कि फ्रायड ने अपने सिद्धान्त को व्यक्तिगत प्रेक्षण पर आधारित किया है। इन आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने आशंका व्यक्त की है कि ऐसी सीमित अनुभूतियों के आधार पर सामान्य व्यक्तित्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना युक्ति सेगत नहीं है।
- सिगमण्ड फ्राययड एक ऐसे व्यक्ति थे जिनका अधिकतर समय मानसिक रोगियों की चिकित्सा में व्यतीत हुआ। इनका उद्देश्य सिर्फ रोगियों का उपचार करनरा ही नहीं बल्कि मानव व्यक्तित्व को समझने में पर्याप्त सुझ भी विकसित करना था नैदानिक दृष्टिकोण से फ्रायड द्वारा पतिपादित व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणत्मक सिद्धान्त को तीन तरह से प्रस्तुत किया है।

अपने अनुभव के आधार पर फ्रायड ने कुछ विशेष निष्कर्ष दिये -

1. विकास की विभिन्न अवस्थाये प्रदर्शित होती है। क्योंकि विकास अवस्था की अपनी कुछ विशेषताएँ य लक्षण होते है।
2. प्रत्येक विकास अवस्था में व्यवहार में उत्तरोत्तर सुधार होता है। और विकास के नवीन प्रतिमान प्रदर्शित होते है।
3. प्रत्येक बच्चे को विकास की सभी अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।
4. विकासात्मक परिवर्तन अचानक नहीं होते बल्कि कमिक रूप से प्रदर्शित होते है जैसे - शैशवास्था बचपनावस्था, बाल्यावस्था और फिर योवनावस्था आदि।
5. सभी बालको में विकास की परिस्थितिया एक जैसी नहीं होती है। उनमें विकास सम्बन्धी अन्तर दिखाई देते है।

स्वप्न विश्लेषण -

इस विधि में फ्रायड ने सामान्यतः दो विधियों का प्रयोग किया है - साहचर्य तथा प्रतीक । साहचर्य विधि में स्वप्न देखने वाले से अपने स्वप्न का सम्बन्ध वस्तुओं घटनाओं या व्यक्तियों से ढूढने के लिए कहा जाता हैं ऐसे शब्द तार्किक हो या आतार्किक हो स्वप्न देखने वाले को बतलाने

के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अगर कोई स्वप्न देखने वाला अपने मन का साहचर्य बतलाने मे असमर्थ रहता है। तो दूसरी विधि स्वप्न प्रतीक की विधि अपनाई जाती है। जिसमें स्वप्न को व्यक्त विषय के पीछे छिपे अचेतन तत्वों को प्रतीक के सहारे समझने की कोशिश की जाती है।

दैनिक जीवन की भूलें -

व्यक्ति अपने दिन-पतिदिन की जिन्दगी में प्रायः करता है। इन भूलों में बोलने की भूल लिखने की भूल पहचानने की भूल, वस्तुओं को गलत स्थान पर रखना आदि मख्य सामान्रू व्यक्तियों के लिए इनका कोई अर्थ नहीं होता है। परन्तु फ्रायड के अनुसार ये अर्थहीन न होकर बल्कि एक गम्भीर मानसिक प्रक्रिया है। इसकी उत्पत्ति दो मानसिक विरोधी विचारो से होती है। इन परस्पर विरोधी विचारों में एक का स्वरूप अचेतन होता है। परन्त इनमें से अचेतन इच्छाएँ अपनी प्रबलता के कारण अर्द्धचेतन की इच्छाओ का ध्यान नहीं रख पाती है। अतः दिन प्रतिदिन के जीवन में मानव व्यवहार जो ऊपर से अर्थहीन लगता है पर वास्तव में अर्थहीन नहीं होता है। उनसे भी व्यक्ति के अचेतन को समझने में मदद मिलती है।

फ्रायड के अनुसार ये भूले अनायास या बेकार नहीं होती है। बल्कि इनका विशेष कारण होता है। जो अचेतन में दमित होता है। अचेतन में दमित विरोधी विचार कामुक इच्छाएँ अतृप्त इच्छाएँ आकामक प्रवृत्तियॉ ही इन मूलो का कारण होती है। अचेतन में दमित ऐसी प्रवृत्तियॅ इन गलतियों या भूलो द्वारा चेतन मे अभिव्यक्त होती है।, ओर गलतियों को ही फ्रायड ने दैनिक जीवन की मनोवृत्तियॉ कहा है। फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'साईकोपैथालॉजी आफ इवरी डे लाइफ' 1914 में इस तरह की मनोविकृत्तियों का वर्णन किया है। फ्रायड ने दैनिक जीवन में होने वाली अनेक ऐसी भूलो का वर्णन किया है।

i) बोलने की भूले- प्रायः दैनिक जीवन में व्यक्ति से बोलने की भूले हो जाया करती है। वह बोलना कुछ चाहता है। और बोल कुछ देता है और ऐसी गलतियों पर स्वयं व्यक्ति को भी आश्चर्य होता है। फ्रायड का मानना है कि ऐसी गलतियों के जन्म का स्रोत अचेतन होता है बोलने सम्बन्धी भूलो के उदाहरण हमें दैनिक जीवन में प्रायः देखने को मिलते है, जैसे- एक रोगी दवा के खर्च से काफी परेशान था, और वह अचानक ही बोल उठा कि हमें इतना भी बिल न देना, जिन्हें में निगल ना पाऊ।

ii) नामों को भूलना- प्रायः हम अपने दैनिक जीवन में परिचित व्यक्तियों वस्तुओं तथा स्थानों के नामें को स्थायी या अस्थायी तौर पर भूल जाते है। कई बार प्रयास करने पर उनके नाम याद नहीं आते है, परन्तु बाद में फिर अपने आप याद आ जाते है। उदाहरण के लिए- एक महिला अपनी बेटी का इलाज कराने के लिए चिकित्सक के पास गयी, जब उसकी बेटी का नाम चिकित्सक ने पूछा तो उसे नाम बताने में माँ असमर्थ रही, क्योंकि वह थोड़ी देर के लिए उसका नाम भूल गयी थी। बातचीत के दौरान पता चला कि उस महिला को इस बेटी

के जन्म पर भयानक तकलीफे उठानी पडी थी। अतः अचेतन में दमित अप्रिय एवं दुःखद अनुभव द्वारा उत्पन्न मानसिक संर्घषो से मुक्ति पाने हेतु अचेतन रूप से महिला अपनी बेटी का नाम भूल गई।

iii) लिखने की भूलें- इस तरह की भूल में व्यकित लिखना कुछ चाहता है। और लिख कुछ और देता है। लिखने की इस भूलों में इसके अलावा अन्य भूले जैसे- अधिक शब्द लिख देना, सही शब्द के बदले विपरीत शब्द लिख देना, किसी महत्वपूर्ण शब्द का छूट जाना, वाद के शब्दों को पहले लिख देना आदि सम्मिलित होता है। उदाहरण के लिए- एक नर्स को किसी डॉक्टर से प्रेम हो गया था परन्तु डॉक्टर द्वारा उसे नापसन्द किया जाने पर उसे डॉक्टर को भूलना पडा, काफी दिनो बार किसी कार्यवश उसे डॉक्टर को पत्र लिखना था, जिसमें उसने डॉक्टर के स्थान पर डियर लिखा था, इस भूल के माध्यम से नर्स ने डॉक्टर के प्रति अचेतन में संचित प्रेम प्रदर्शित किया।

iv) छपाई की भूले- प्रायः समाचार- पत्रों पुस्तकों, विज्ञापनों में इस तरह की भूले हमें देखने को मिलती है, और इन गलतियों से भी हमें अचेतन में दमित इच्छाओं एवं विचारो के संकेत मिले है। उदाहरण के लिए- एक बार लंदन के समाचार पत्र में छपा कि क्लोन प्रिस, जबकि क्राउन प्रिंस छपना था, बाद में इस गलती का कारण ढूढने पर पता चला कि उस प्रेस के सभी कर्मचारियों के क्राउन प्रिंस के पति घृणा की भावना थी।

v) पहचानने की भूल- ऐसी भूले किसी वस्तु स्थान तथा व्यक्ति को पहचानने से सम्बन्धित होती है। प्रायः किसी अपरिचित व्यक्ति को हम परिचित व्यक्ति समझ बैठते है। तथा किसी परिचित व्यक्ति या वस्तु के उपस्थित रहने पर भी हम उसे देख नहीं पाते है। इसी तरह समाचार पत्र में किसी समाचार के रहते हुये उसे नहीं देख पाना तथा अपने बगल से किसी परिचित मित्र को गुजरते हुए न देख पाना कुद ऐसी पहचानने की भूले है। जिनके पीछे कोई न कोई अचेतन की दमित इच्छाएँ सक्रिय होती है।

vi) अनजाने से की गयी क्रियाए- प्रायः ऐसा होता है, कि हम चेतन रूप से जो करना चाहते है उसके बदले में हम कोई दूसरी क्रिया कर बैठते है। जैसे किसी व्यक्ति को हम सौ रूप्ये की जगह पॉच सौ का नोट देने लगते है। प्रायज् हम हस्ताक्षर करने के लिए पेन माँगते है, ओर फिर उसे अपनी जेब में रख कर चले जाते है। अनजाने में की गई इन सभी क्रियाओं के पीछे अचेतन की दमित इच्छाएँ प्रबल होती है।

vii) वस्तुओं को गलत स्थान पर रखना- प्रायः हम वस्तुओं जैसे चाभी, रूमाल, महत्वपूर्ण कागज डायरी आदि को इधर उधर रख देते है और जरूरत के समय उस चीज को ढूढने पर वो हमें नहीं मिलती है। दैनिक जीवन की इन भूलो के पीछे भी अचेतन की दामित इच्छाएँ सक्रीय होती है। फ्रायड के अनुसार वस्तुओं को इधर-उधर रख कर उसके बारे में भूल जाने से यह संकेत मिलता है। कि व्यक्ति में उस वस्तु को अपने सामने से हटा देने की प्रवृत्ति अधिक होती है। क्योंकि ऐसा करने से उसकी किसी समस्या का समाधान हो जाता है।

viii) सांकेतिक क्रियाए- दैनिक जीवन में व्यक्ति कुछ सांकेतिक क्रियाए जैसे- पैर हिलाना, एक ही शब्द को बार- बार दोहराना चाभी के गुच्छे को बार-बार नचाना पैन्सिल का या कलम का उपरी हिस्सा चबाना आदि फ्रायड के अनुसार इस सांकेतिक क्रियाओं के द्वारा दमित इच्छाओ के संकेत मिलते है एक विवाहित महिला अंगूली से अंगूठी को बार-बार निकालती व पहनती थी फ्रायड द्वारा पूछने पर पता चला कि वह अपने पति को कुछ कारणों से तलाक देना चाहती थी। लेकिन सामाजिक एवं नैतिक कारणों से वह ऐसा करना उचित नहीं समझती है।

अतः हमारे दैनिक जीवन में होने वाली गलतियॉ या भूले जो बेकार या बेतुकर दिखाई देती है, वास्तव में ये निरर्थक नहीं होती है, बल्कि इन भूलों एवं गलतियों द्वारा अचेतन मन की अतृप्त इच्छाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति होती है। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टि|

मनोचिकित्सा- मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का उद्देश्य अचेतन की इच्छाओं को चेतन में लाकर उसके अर्थ एवं महत्व को समझना रोगी को अहं मजबूत करना तथा उसके पराई की इच्छाओं को चेतन में लाने के लिए दो प्रविधियों का प्रयोग किया है।

i. स्वतंत्र साहचर्य
ii. स्वप्न विश्लेषण

स्वतंत्र साहचर्य में रोगी के किसी चेतन विचार को प्रारम्भ बिनदु मानकर उस पर उसे स्वतंत्र होकर बोलने या उससे सम्बन्धित संगत या असंगत बातों को बताने के लिए कहा जाता है। परन्तु यह प्रक्रिया आसान नहीं है। रोगी इसे सही अर्थो में करने में असमर्थ रहता है। इसलिए फ्रायड ने ऐसे रोगियों के लिए स्वप्न विश्लेषण पर बल दिया है। यहां अपने स्वप्नों को उपचार के दौरान बतलाते है।

4.7 व्यवहारात्मक उपागम का अर्थ

व्यवहारात्मक उपागम को मनोविज्ञान का रूप देने वाले मनोवैज्ञानिको में जे.बी.वाटसन का नाम प्रमुख है। वाटसन का पूरा नाम जॉन ब्रादर्स वाटसन था। इनका जन्म ग्रीन विली, दक्षिणी, कैरोलिना में हुआ था। इन्होने शिकांगो विश्वविद्यालय से शरीर क्रिया तथा तंत्रिका तंत्र में अन्तस्था के विकास के साथ व्यवहार में होने वाले परिवर्तनो का अध्ययन किया। इनके अनुसार व्यवहार उत्तेजना और उसकी अनुक्रिया का परिणाम है। व्यवहारवाद में अधविश्वासों, रहस्यों और दार्शनिक परम्परा का कोई स्थान नहीं है। व्यवहारवाद के अनुसार व्यक्तित्व के विकास में परिवेश एक महत्वपूर्ण आधार है। परिवेश में वांछित परिवर्तन करके किसी भी व्यक्ति को कुछ भी बनाया जा सकता है।

असामान्य व्यवहार एवं उपचार के व्यावहारवादी विचार की उत्पत्ति अनुकूल प्रयोगो से हुई । इसका प्रारम्भ पैवलॉव के प्रतिबद्धता क्रिया के फलस्वरूप हुआ (पैवलॉव के प्रयोग कुत्ते के मुह से

लार का टपकना)। पैवलॉन के इस प्रयोग से वाटसन काफी प्रभावित हुए। बाद में वाटसन ने अपने अध्ययन की दिशा बदलकर प्रत्यक्ष व्यवहार कर दिया। जिसे व्यवहारवाद कहा गया। व्यवहारात्मक उपागम का केन्द्र अनुभवों के परिणामस्वरूप व्यवहार में बदलाव होता है। व्यवहारवादी उपगम की व्याख्या निम्न तथ्यों के आधार पर की जा सकती है।

व्यवहारवादी विचारधारा तीन महत्वपूर्ण कल्पनाओं पर आधारित है।

i. पर्यावरणवाद
ii. प्रयोगवाद
iii. आशावाद

i) पर्यावरणवाद- पर्यावरणवाद में इस बात पर बल दिया गया है। कि सभी प्राणी मनुष्य एवं पशु पर्यावरण द्वारा निर्धारित होते है। हम लोग अपने गत साहचर्यो के आधार पर भविष्य के बारे में सीखते है और इसी कारण हम लोगों का व्यवहार दण्ड तथा पुरस्कार द्वारा व्यवस्थित किया जाता है। जिस व्यवहार पर हमें पुरस्कार मिलता है। उसे हम भविष्य में करना चाहते है। तथा जिस व्यवहार पर हमें दण्ड मिलता है। उसे हम त्यागना चाहते है।

ii) प्रयोगवाद- इसमें प्रयोग के माध्यम से यह पता लगाया जाता है। कि पर्यावरण के किस पहलू से व्यवहार प्रभावित होता है। तथा किस तरह हम उसे परिवर्तित कर सकते है।

iii) आशावाद- इस पूर्वकल्पना का सम्बन्ध परिवर्तन से है यदि व्यक्ति पर्यावरण से है यदि व्यक्ति पर्यावरण का प्रतिफल है और अगर वातावरण का वह सब पहलू जो उसे परिवर्तित किया है। को प्रयोग द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। तो पर्यावरण में कभी परिवर्तन होने से व्यक्ति में भी परिवर्तन होगा।

इन तीनों पूर्वकल्पनाओं पर्यावरणवाद, प्रयोगवाद, व आशावाद का उपयोग असामान्य व्यवहार की व्याख्या में प्रत्यक्ष रूप से की गई हैं -

1. सामान्य तथा असामान्य व्यवहार को गत अनुभूति से सीखा जाता हैं और जब व्यक्ति अपअनुकूलित अर्जित आदतों को सीख लेता है। तो उससे व्यक्ति में असामानय व्यवहार की उत्पत्ति होती है।
2. हम प्रयोग करके यह निर्धारित कर सकते है कि पर्यावरण के किस पहलू से असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है।
3. यदि हम पर्यावरण के इन कुसमायोजित व्यवहार को त्याग देगा और उसकी जगह पर नया समायोजी व्यवहार सीख लेगा।

अतः व्यवहारी विचारधारा के अनुसार कुसमायोजी व्यवहार या असामान्य व्यवहार के दो मुख्य कारण होते है।

1. व्यक्ति द्वारा समायोजी व्यवहार या संतोषजनक वैयक्तिक विकसित करने की असफलता।
2. अप्रभावी या कुसमायोजित व्यवहार को सीखना प्राणी किसी व्यवहार को किस तरह सीख लेता है तथा वह क्या चीज है। जिसे वह सीखता है ? व्यवहारवादी विचारधारा के अनुसार सीखने की दो मुख्य प्रक्रियाए प्राचीन अुनबन्धन ओर नैमित्तिक अुनबन्धन है। जिसमें माध्यम से व्यक्ति सामान्य एवं असामान्य व्यवहार को सीखता है।
   I. पैबलोवियन या प्राचीन अनुबन्धन
   II. नैमिक्तिक या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन
   I. **पैबलोवियन या प्राचीन अनुबन्धन-** सीखने के इस सिद्धान्त की व्यख्या रूसी वैज्ञानिक आई0वी0 पैवलॉर द्वारा क गई। इस सिद्धान्त के अनुसार उदीपक तथा अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करना ही सीखना है। पैवलॉव ने अपने एक प्रयोग कुत्ते के ऊपर किया। एक भूखे कुत्ते को एक ध्वनि नियन्त्रित प्रयोगषाला में एक विशेष उपकरण के सहारे खडा कर दिया और कुत्ते के सामने भोजन देखकर उसके मुह में लार आ जाती थी। कुछ प्रयासों के बाद भेजन देने के 4-5 सेकेण्ड पहले धण्टी की ध्वनि बजाई जाती थी। इस तरह के कई प्रयास कराये गये, कई प्रयासों के बाद ये देखा गया, कि बिना भोजन आये ही मात्र धण्टी की ध्वनि पर कुत्ते के मुख से लार टपकना शुरू हो गया। पैवलॉव के अनुसर कुत्ता धण्टी की आवाज पर ही लार-स्राव करने की क्रिया को सीख लेता है। इनके अनुसार घण्टी की आवाज तथा लार के स्राव (अनुक्रिया) के बीच एक साहचर्य स्थापित होने की प्रक्रिया को अनुबन्धन की संबा दी है।
   II. **नैमिक्तिक या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन-** इस तरह के अनुबन्धन में प्राणी मुक्त अनुक्रिया परिस्थिति में रहकर किसी व्यवहार को सीखता है। इस अनुबंधन की खास विशेषता यह होती है, कि प्राणी अनुक्रिया स्वयं करता है। न कि किसी विशेष उद्दीपन के उत्तेजित होने पर इस किसी सिद्धान्त के अनुसार किसी लक्ष्य जो प्राप्त करना ही सीखना है किसी पुरस्कार को पाना लक्ष्य हो सकता है, या फिर किसी दण्ड से दूर रहना लक्ष्य हो सकता है।

थार्नडाइक के पॅजल बॉक्स में बिल्ली को तरह तरह की अनुक्रिया करने के बाद बाहर रखे (पुरस्कार) भोजन की प्राप्ति होती है। ओर धीरे -धीरे कई प्रयासों के बाद किया करना सीख लेती है।

1) व्यवहार की व्याख्या- मानव हो या पशु व्यवहार एक उत्तेजना से प्रारम्भ होता है। किसी भी अनुक्रिया के लिए उत्तेजना का होना अत्यन्त आवश्यक है। उत्तेजना से तात्पर्य- पर्यावरण के किसी वस्तु से शारीरिक परिवर्तन होना। उत्तेजना सरल व जटिल दोना ही प्रकार की हो सती है। अनुक्रिया से तात्पर्य उन सभी क्रियाओ से है जिसे प्राणी करता है। अनुक्रिया अर्जित और अनार्जित दोनो हो सकती हैं। यह अस्पष्ट और स्पष्ट भी हो सकती है। जैसे - ऑख मटकाना, सॉस लेना, रोना आदि सपष्ट अनार्जित अनुक्रिया है तथा रक्तचाप, पाचन क्रिया, हृदय की

धडकन अनर्जित अनुक्रिया के उदाहरण है। व्यवहारवादी उपागम के दो विशिष्ट उद्देश्य है। पहला उद्दीपन के बारे में जानकर अनुक्रिया के बारे में पूर्व कथन करना तथा दूसरा अनुक्रिया के बारे में पूर्व कथन करना तथा दूसरा अनुक्रिया के बोर में जानकर उद्दीपन के बारे में पूर्व कथन करना।

2) सम्वेदना और प्रत्यक्ष वस्तु- वाटसन ने सम्वेदना और प्रत्यक्ष वस्तु का वर्णन किया है। क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे मनुष्य की सम्वेदना को नहीं जान सकता। केवल एक उद्दीपन के लिए अनुक्रिया को जाना जा सकता है। चाहे वह दृष्टि सम्बन्धी हो या श्रवण सम्बन्धी। प्रत्यक्ष सम्वेदी क्रियाओ का काग्र है जो उद्दीपक को नोट करता है। और मस्तिष्क के दोनो ओरर भागों को भेज देता है।और ये संवेदी आवेग जो ग्राहको से आते है। उनको गति केन्द्रो में भेज दिया जाता है।

3) स्मृति प्रतिमाएँ- स्मृति प्रतिमाएँ हर एक व्यक्ति में होती है। प्रत्येक व्यक्ति इनका उल्लेख कर सकता है। जैसे यदि आपसे कहा जाये कि अपने मित्र स्मरण कीजिये तो तुरन्त उसकी एक प्रतिमा मन-मस्तिष्क पर अंकित हो जाती हे। जब कोई व्यक्ति सीखे पाठ का प्रत्यावाहन करने में असमर्थ रहता है। अर्थात जो पेशीय तंत्र मौलिक सीखना के द्वारा निर्मित हुए थे वे टूट गये । प्राणी के अन्दर जो मस्तिष्क होता है वह सम्वेदी तथा गतितंत्रिकाओं को जोडना है। जिसके फलस्वरूप ज्ञानेन्द्रिया और पेशिया हो जाती है। और ये प्रतिमाएँ वास्तव में प्रेरक क्रियाए है।

4) अनुभूति और संवेग- वाटसन का मानना हे। कि व्यवहार में भी इन्द्रिय चलित कार्य होते है जैसे - सुख-दुख की अनुभूति विभिन्न इन्द्रियों मे आने वाली उत्तेजनाओं और पेशियों में होने वाली गतियों का परिणाम है। वाटसन ने यह भी सिद्ध कर दिया कि भय क्रोध और प्रेम के अलावा जो अन्य समवेग होते है वे अर्जित संवेग है ओर जब संवेग अर्जित होते है तो इस प्रक्रिया में प्रतिबद्ध अनुक्रिया का सिद्धान्त कार्य करता है।

5) सीखना- वाटसन ने थॉर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित प्रभाव के नियम के स्थान पर अभ्यास के नियम की स्थापना की । यदि स्थिति में सफल अनुक्रिया होती है। तो सीखने वाले को सन्तोष मिलता था और वह अनुक्रिया धीरे-धीरे अत्मसात कर ले जाती है। किन्तु असफल अनुक्रियाओं में असन्तुष्टि मिलती थी।

वाटसन सिद्धान्त अनुसार अन्य व्यवहारों के समान प्रत्यक्षण भी एक प्रकार को सीखा गया व्यवहार है और जिन नियमों और सिद्धान्तों द्वारा अन्य व्यवहार निर्धारित होते है। ठीक उन्ही नियमों एवं सिद्धान्तों द्वारा प्रत्यक्षण भी निर्धारित होता है। जिस तरह कोई भी सीखा गया व्यवहार आदत रचना, सामान्यीकरण तथा अवरोध आदि के नियमों द्वारा निर्धारित होता है। उसी तरह से प्रत्यक्षण भी इन्ही नियमों से निर्धारित होता है।

व्यवहारवादियों का यह भी विचार है कि जब कोई उद्दीपन व्यक्ति के सामने कुछ देर तक रखने के बाद हटा लिया जाता है। ताक कुछ देर बाद तक उसका प्रभाव वंत्रिका तंत्र में होता है। इस प्रभाव को उद्दीपन चिन्हन कहा जाता है। ऐसे उद्दीपन चिन्ह वर्तमान किसी शब्द का अर्थ पहले कहे गये वाक्यों या शब्दों के सन्दर्भ में हम समझते है। यहां वर्तमान तंत्रिका आवेग उत्पन्न होते है। इन

दोनो के अन्तःक्रिया कहा जाता है। जैसे- किसी शब्द का अर्थ पहले कहे गये वाक्यों या शब्दों के सन्दर्भ में हम समझते है। यहा पहले कहे गए वाक्य या शब्द उद्दीपन चिन्हके उदाहरण है तथा वर्तमान शब्दों द्वारा वर्तमान तंत्रिका आवेग उत्पन्न होते है। इन दोनो के अन्तःक्रिया होने पर शब्दों का क्रियाओं के आधार पर एक विशेष सम्प्रत्यय का प्रतिपादन किया जिसे उद्दीपक प्रारूप कहा जाता है। हल का मानना है। कि कोई उद्दीपन किसी एक पैटर्न में रहकर एक ढंग की अनुक्रिया उत्पन्न करता है। तथा वहीं उद्दीपन दूसरे प्रतिरूप में रहकर दूसरी अनुक्रिया उत्पन्न करता है।

SWORD	8053

उक्त चित्र के बायी ओर सॉर्ड लिखा है। जिसका अर्थ हिन्दी में तलवार है तथा दायी ओर एट थाउसेण्ड फिप्टी थ्री लिखा हुआ है। जब हम सॉर्ड के एस तथा ओ0 और नम्बर के (0) और (5) के प्रत्यक्षण पर ध्यान दे तो यह दोनो उद्दीपन दोनो ही परिस्थितियों में समान रूप से लिखे गये है। लेकिन शब्द के संदर्भ में उसे अलग- अलग देखा जाता है। अतः एक ही उद्दीपन का अर्थ भिन्न - भिन्न उद्दीपन पैटनर्स में अलग-अलग होता है।

कुछ व्यवहारवादियों ने उद्दीपन में पैटर्न के तथ्य को साबित करने के लिए कुछ प्रयोग भी किये है जिसमें वुड बरी द्वारा कुत्तों पर किया गया प्रयोग उल्लेखनीय है। इनके प्रयोग में उच्च स्वर तथा मन्ध स्वर एक साथ दिये जाने पर कुत्ता जब अनुक्रिया करता था अर्थात लकडी के बने पिंजरे के छड में आना मुह रगडने की अनुक्रिया करता था। तो उसे भोजन दिया जाता था। परन्तु इन दोना उद्दीपनो अर्थात उच्च स्वर तथा मन्द स्वर में से कोई एक स्वर उपस्थित होने पर भी यदि कुत्ता मुह रगडने की अनुक्रिया करता था तो उसे भोजन नहीं दिया जाता था। परिणामस्वरूप पाया गया कि कुत्ता उच्च स्वर तथा मन्द स्वर के अलग-अलग उपस्थित किये जाने पर अनुक्रिया न करना सीख लिया परन्तु इन दोनो उद्दीपनों को एक साथ उद्दीपन किये जाने पर अनुक्रिया करना सीख लिया। अतः स्पष्ट है कि कुत्ते में एक उद्दीपन पैटर्न विकसित हो गया कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष के इस व्यवहारवादी उपागमों की आलोचना निम्न आधारों पर की।

- कुछ व्यवहारवादियों का मानना है कि प्रव्यक्षण की व्यवस्था में बहुत से रहस्यपूर्ण सम्प्रत्यय है, जिसका वस्तुनिष्ठ रूप से अध्ययन संभव नहीं है।
- प्रत्यक्षण की व्याख्या में विभिन्न प्रकार के उद्दीपन चिन्ह की अंतःक्रिया तथा उद्दीपन पैटर्न की बात की गयी है। हल ने उन लोगो की व्याख्या के क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश किया है।
- वाटसन की आलोचना इस बिन्दु पर भी की गयी है कि उन्होने कुछ आत्मनिष्ठ सम्प्रत्ययो जैसे इच्छा चिन्तन आदि को व्यवहारवादि भाषा में परिणत करने की कोशिश की गई है।
- टॉलमेन ने वाटसन के मनोविज्ञान की आलोचना करते हुए लिखा है कि वाटसन ने अपने अपने मनोविज्ञान में उद्देश्य को व्यवहार की व्याख्या से पूर्णतया हटा दिया है।

इन सभी आलोचनाओं के बावजूद यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वाटसन ने मनोविज्ञान की जड को वस्तुनिष्ठा के धागे में इतना मजबूत कर दिया था कि बाद के मनोविज्ञान को इसके स्वास्थ को और प्रयोगात्मक एवं वैज्ञानिक बनाना काफी आसान हो गया। यद्यपि आज मनोविज्ञान के अन्य सम्प्रदाय के समान व्यवहारवाद का अस्तित्व नहीं रहा परन्तु इसका प्रभाव मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में स्पष्ट देखने को मिल रहा है।

4.8 सारांश

असमान्यता की व्याख्या के लिए जितने भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है इनमें फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त काफी चर्चित व विवादास्पद सिद्धान्त रहा है। मनोविश्लेषणात्मक वियारधारा ने असमान्य व्यवहार के अध्ययन एवं उपचार की प्रतिक्रियाओ को सर्वाधिक प्रभावित किया है। इनके इस सिद्धान्त के आधार पर अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो चुका है कुछ मनोवैज्ञानिको ने फ्रायड के इस सिद्धान्त सुक्ष्म तर्कपूर्ण वैज्ञानिकता पूण्र तथा वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रगति प्रदान करने वाला बताया तो किसी ने फ्रायड के सिद्धान्त की आलोचना की साथ ही व्यवहावादी सिद्धान्तवादी के अनुसार अन्य व्यवहारों के समान प्रत्यक्ष क्षण भी एक प्रकार का सीखा व्यवहार है इनके अनुसार प्रत्यक्ष पूर्णरूपसे गया व्यवहार होता है और जिन नियमों ओर सिद्धान्तों द्वारा अन्य व्यवहार निर्धारित होते है। अनेक आलोचनाओं के बावजूद यह सिद्धान्त काफी महत्वपूर्ण है।

4.9 शब्दावली

- **शैश्वावस्थ:** जन्म से दो सप्ताह की अवस्था
- **यौक्तिकरण:** तुलना करना
- **निष्कासन:** बाहर निकालना
- **साहचर्य:** जब हमारे मस्तिष्क में एक साथ दो विचार आते है और उन दोनो में एक तरह का सम्बन्ध होता है। जैसे A के बाद B का स्मरण हो जाता है।
- **परिवेश:** वातावरण
- **वांछित:** इच्छानुसार
- **कालिक:** समय
- **अर्जित:** सीखे गए (वातावरण)
- **मानसिक विकृति:** मास्तिष्क विकास तो होता है, परन्तु उससे कार्यो में कई प्रकार की विकृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती है।
- **गत अनुभूति:** पिछली चीजो को महसूस करना।

- **साहचर्य:** जब दो विचार हमारे मस्तिष्क में एक साथ आते है, और उन दोनो में एक तरह का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जैसे ए के बाद बी का स्मरण अपने आप हो जाता है।
- **त्यागना:** छोडना
- **अपअनुकूलित:** परिस्थतियों के विपरीत
- **अर्जित:** जिनको व्यक्ति वातावरण के सम्पर्क में रहकर सीखना हे।

4.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. सिगमण्ड फ्रायड का जन्म सन् .... में हुआ था।
2. फ्रायड ने .... कामुकता पर विषेश बल दिया।
3. मूल प्रविृत्तियों का तात्पर्य जन्मजात .... उत्तेजना से होता है।
4. प्रतिगमन का अर्थ .... है।
5. गुदीय अवस्था दो से .... वर्ष तक होती है।
6. जननेन्द्रिय अवस्था .... वर्ष तक होती है।
7. स्वप्न विश्लेषण में साहचर्य तथा .... दो विधियो का प्रयोग किया जाता।

- सत्य असत्य बताइये -

8. सिगमण्ड फ्रायड की मृत्यु 1909 में हुयी थी। (सत्य/ असत्य)
9. फ्रायड ने मन को तीन भागों में बॉटा है। (सत्य/ असत्य)
10. मूल प्रवृत्तियाँ चार प्रकार की होती है। (सत्य/ असत्य)
11. रक्षात्मक प्रक्रम व्यक्ति को सिर्फ वाहय तनाव से बचाता है। (सत्य/ असत्य)
12. अव्यक्तावस्था जो सुप्तावस्था भी कहते है। (सत्य/ असत्य)
13. जननेन्द्रिय अवस्था में व्यक्ति विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित होता है। (सत्य/ असत्य)
14. व्यवहारात्मक उपागम को मनोविश्लेषणत्मक सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। (सत्य/ असत्य)
15. व्यवहार एक उत्तेजना से प्रारम्भ होता है। (सत्य/ असत्य)

उत्तर: 1) 1856 2) शैशवाकालीन 3) जन्मजात शारीरिक 4) पीछे की ओर लौटना

5) तीन वर्ष 6) तेरह से बीस वर्ष 7) प्रतीक 8) असत्य 9) सत्य

10) असत्य 11) सत्य 12) सत्य 13) सत्य 14) असत्य 15) सत्य

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ0 अरूण कुमार सिंह उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 अरूण कुमार सिंहए उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान प्रकाशन, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा।
- डॉ0 आर0एन0 आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मन शब्द से आप क्या समझते हैं?
2. चेतन, अचेतन और उर्द्धचेतन से आप क्या समझते हैं?
3. मूल प्रवृत्तियाँ कितने प्रकार की होती है?
4. मनोविश्लेषण शब्द का क्या अर्थ है?
5. व्यक्ति प्रायः अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में किस तरह की भूते करता है?
6. व्यवहार शब्द की व्याख्या कीजिये?
7. फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए?
8. व्यवहारात्मक उपागम से आप क्या समझते हैं। विस्तृत व्याख्या कीजिए?

इकाई-5 प्रक्षेपी प्रविधि, केस अध्ययन विधि

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 प्रक्षेपी प्रविधि का स्वरुप
5.4 प्रक्षेपी प्रविधियों का स्वरुप
5.5 केस अध्ययन विधि क्या है
5.6 नैदानिक केस अध्ययन विधि का सामान्य प्रारुप
5.7 केस अध्ययन विधि के गुण एवं दोष
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस प्रविध द्वारा व्यक्तित्व की माप अप्रव्यक्ष रुप से होती है। यद्यपी इसका प्रयोग प्राचीनकाल में भी होता था। इसके आधुनिक इतिहास का प्रारम्भ गोल्टन के शब्द साहचर्य परीक्षण की प्रक्षेपण प्रविधि के रुप में किया गया। इस संक्षिप्त इतिहास के बावजूद प्रक्षेपण परीक्षपण की प्रक्षेपण प्रविधि के रुप में किया गया। इस संक्षिप्त इतिहास के बावजूद प्रक्षेपण विधि के उपयोग के लिए सही प्रेरणा रोटी के प्रयासों से मिला । प्रक्षेपण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी सिगमंड फ्रायड ने 1894 में किया । इनके अनुसार प्रक्षेपण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने अभावों, विचारों, भावनाओं, इच्छाओं, संवेगों का अन्य व्यक्तियों या वाह्य जगत के माध्यम से सुरक्षात्मक रुप प्रस्तुत करता है।

मनसिक रोगों के निदान में केस अध्ययन विधि ही एक ऐसी विधि है जिसका प्रयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिक तथा मनोचिकित्सक दोनो ही करते हैं। केस अध्ययन विधि ही एक ऐसी विधि है जिसमें रोगी के व्यक्तित्व की संरचना, गतिकी उसकी कमजोरियों एवं शक्ति, विकासात्मक पूर्व वृत्तियाँ, भविष्य में रोगी के बारे में किया जाने वाला निर्णय आदि का अध्ययन किया जाता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- व्यक्तित्प मापन की विधियों के बारे में जान सकेंगे।
- प्रक्षेपी प्रविधि के स्वरुप को समझ सकेंगे।
- प्रमुख प्रक्षेपी के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व सूचियों की रचना फलाकन प्रशासन एवं विवेचना के बारे में जान सकेंगे।
- रोगों के निदान के विषय में जान सकेंगें ।
- केस अध्ययन विधि के प्रारूप के विषय में जानेंगें।
- इस विधि के गुण एवं दोषों के विषय में जान सकेंगे।

5.3 प्रक्षेपण प्रविधियों का स्वरुप

प्रक्षेपी प्रविधि में व्यक्ति के सम्मुख एक ऐसी उद्धीपक स्थिति प्रस्तुत की जाती है और उसे ऐसा अवसर प्रदान किया जाता है कि वह अपने व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित छिपी बातों को उन स्थितियों के माध्यम से प्रकट कर सके। इस विधि का सम्बन्ध व्यक्तित्व के अचेतन पक्ष से होता है। यह मुख्यतः व्यक्ति के अचेतन मन का मापन करती है। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ इच्छाएं, भावनाएं एवं अभिवृत्तियाँ होती हैं, जो व्यक्तित्व के ही विभिन्न अंग हैं और ये गुण न तो वाहय रुप से दिखाई देते हैं और न ही हम इन्हें समझ पाते हैं। अतः इन सभी गुणों का मापन करने के लिए हम प्रक्षेपी प्रविधियों का सहारा लेते हैं। इन विधियों में परीक्षण सामग्री पूर्ण रुप से निर्देशित अथवा अर्द्धनिर्देशित होती है। प्रयोज्य तस्वीर देखकर कहानी लिखता है। अधूरे वाक्यों की पूर्ति करता है। अपनी इच्छानुसार खिलौने से खेलते हैं । इनके माध्यम से व्यक्ति अपने अंदर के भावों को स्वतंत्र रुप से व्यक्त करता है। इसमें प्रयोज्य को यह नहीं पता चलता है कि उसके किन-किन गुणों का मापन किया जा रहा है। व्यक्ति अपनी इच्छाओं, भावों, संवेगों, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं को इस परीक्षण सामग्री पर प्रक्षेपित करता है। फिर उस विषय का विश्लेषण एवं विवेचन करके उसके व्यक्तित्व के बारे में जानने की कोशिश की जाती है।

प्रक्षेपी प्रविधि की विशेषताएँ -

- प्रक्षेपी प्रविधि के द्वारा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त होती है। उसे किसी बात को छिपाने का अवसर नहीं मिल पाता है।

- व्यक्ति के अंदर दबे हुए विचारों को प्रकट करने में सहायक होती है।
- इस प्रविधि के द्वारा चेतन एवं अचेतन पहलुओं का मापन किया जाता है। यह अचेतन को समझने की सबसे श्रेष्ठ विधि है।
- इस परीक्षण को करते समय परीक्षण एवं परीक्षार्थी के भी अच्छा सामंजस्य होना आवश्यक है।
- इनको प्रायः व्यक्तिगत रुप से करना सम्भव होता है।
- इसके द्वारा सामान्य एवं असामान्य दोनों ही तरह के व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।
- इसकी विश्वसनीयता एवं वैधता सामान्य होती है।
- व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व का स्पष्ठ चित्र उपस्थित कर व्यक्ति को समझने में सहायक होती है।

सीमाएँ-

- प्रक्षेपी प्रविधि का मापन करना एक कठिन कार्य है।
- इस विधि की गढ़ना एक साधारण व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं है। इसका प्रयोग योग्य कुशल एवं अनुभवी व्यक्तियों द्वारा ही संभव है।
- इस प्रविधि के परीक्षणों को करने में अधिक समय लगता है। फलतः व्यक्ति में थकान व अरूचि का अनुभव होने लगता है।
- सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा असामान्य व्यक्तियों के मापन की श्रेष्ठ विधि है।
- इसकी विश्वसनीयता एवं वैधता सीमाएंको निर्धारित करना एक कठिन कार्य है।

5.4 प्रक्षेपी प्रविधियों का प्रारूप

1) **शब्द साहचर्य परीक्षण-** यह प्रक्षेपी विधि की सबसे पुरानी विधि है। इसका निमार्ण प्रसिद्ध जीवशास्त्री गाल्टन ने (1879) में 75 शब्दों की सूची बनाकर किया। इस विधि में प्रयोज्य को शब्द सुनते ही उसके मन में जो पहला शब्द आए उसे बताना होता है। इस क्रिया को व्यक्ति को शीघ्रता के साथ पूरा करना है। इसकी विवेचना बातें पर आधारित होती हैं।

(1) प्रयोज्य ने प्रतिचार के रूप में कौन से शब्द कहें।

(2) और प्रयोज्य ने प्रयुत्तर देने में कितना समय लिया।

ज्यादा समय में उत्तर देना, व्यर्थ के शब्द बोलना प्रतिक्रिया के प्रति असफलता तथा व्यक्ति का असामान्य व्यवहार व्यक्ति की छिपी हुई मनोग्रन्थियों तथा संवेगात्मक विचारों की ओर संकेत करता है। इसका प्रारूप इस तरह है-

क्र.स.	उद्दीपक शब्द	प्रतिक्रिया शब्द	प्रतिक्रिया काल	अन्तःसूचना
1.	चाकू			
2.	साँप			
3.	माँ			

2) **चित्र साहचर्य परीक्षण-** इस परीक्षण का निमार्ण रोजेविग ने (1944,1948) में किया। इसके द्वारा कुण्ठा एवं आक्रामक दशाओं में व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का मापन किया जाता है। इसके 24 कार्टून कुण्ठा स्थितियों को प्रदर्शित करते हुए दिखाए गये है। इसमें ऐ व्यक्ति ऐसा दिखाया गया है जो दूसरे दिखाए गए व्यक्ति की कुण्ठा के कारण के सम्बन्ध में कुछ कहता है और प्रयोज्य को एक रिक्त स्थान पर कुछ लिखना होता हैं इस विधि का प्रयोग प्रायः बाल-अपराधी, कामुक अपराधी, आत्महत्या प्रवृत्ति वाले, अधिक आयु वाले रोगी, शारीरिक विकलांग, मानसिक अवरोधी व्यक्तियो के रोग के निदान हेतु किया जाता हैं मानव प्रेरणा को समझने एवं व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्षों का ज्ञान करने में यह सहायक होती है।

उदाहरण-

उसने हमें क्यों नही बुलाया?	?

3) **वाक्य पूर्ति परीक्षण-** इस परीक्षण में कुछ अपूर्ण वाक्य दिये जाते है, जिसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति को निर्देश दिये जाते है। इसमें परीक्षणकर्ता एक-एक करके प्रत्येक अधूरे वाक्य को बोलता जाता है तथा प्रयोज्य उस सुने हुए वाक्य को तुरन्त पूरा करने का प्रयास करता है। इसकी शुरूआत एविंग हास ने की। इसमें अपूर्ण वाक्य इस तरह होते है-

..............................मेरी असफलता ....

..................................अच्छा होता कि मैं..

...................................मेरी माता ने...

.................................अन्य व्यक्तियों से ....

इस परीक्षण के द्वारा व्यक्ति की आकांक्षा, इच्छा, आवश्यकता, रूचि तथा समायोजन आदि का पता चलता है। इसे सरलता से व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है। इसका प्रयोग सामूहिक रूप से भी किया जा सकता है। इस परीक्षण का प्रयोग शिक्षित व्यक्तियों पर नहीं किया जा सकता हे क्योंकि कभी-कभी परीक्षार्थी इतना सतर्क हो जाता है कि सही बात नहीं बताता है। फलस्वरूप परिणाम निकालना एवं विवेचना करना कठिन हो जाता है।

4) **मनोनाटकीय विधि-** इस विधि का प्रयोग प्रयोज्य की भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए किया जाता है। इसके दो प्रारूप है-वयस्क वयक्तियों के लिए, बालकों के लिए। पहले प्रारूप में चार तथा दमसरे प्रारूप में तीन परीक्षाएँ होती है। प्रत्येक परीक्षा में 125 शब्द होते है। एक पक्ति में पाँच शब्द होते हैं।–

Drink, Choke, Flirt, Unfair, White

Disgust, Fear, Sex, Suspicion, Water

प्रयोज्य को यह आदेश दिया जाता हैकि उसे जो शब्द अप्रिय लगता है उसे काट दें। उस कटे हुए शब्द के आधार पर व्यक्ति की भावनाओं के सम्बन्ध में जानकारियाँ प्राप्त की जाती है।

5) **खेल प्रविधि-** इस प्रविधि के माध्यम से बच्चों तथा वयसकों को अपनी भावनाओं तथा समस्याओं का भली-भाँति प्रदर्शन करने का अवसर मितजा है। बालक किस तरह के खिलौने से खेलता है या कौन से खेल पसन्द करता है। वह उन खिलौनों के साथ किस तरह अपनी भावनाओं का प्रक्षेपण करता है, आदि के आधार पर बालक या वयस्कों के व्यक्तित्व के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। बच्चों के व्यक्तित्व मापन की यह एक सर्वश्रेष्ठ एवं उपयोगी विधि है।
6) **रोर्शा स्याही के धब्बों का परीक्षण-** 1921 में स्विस मनोचिकित्सक हर्मन रो ने स्याही के धब्बों वाले परीक्षण का निमार्ण किया।व्यक्तित्व मापन की यह अत्यधिक प्रसिद्ध एवं व्यापक रूप से प्रयोग की जाने वाली विधि है। अचेतन स्तर पर दबी हुई व्यक्ति की सभी इच्छाओं, भावनाओं आदि को जानने की अत्यधिक उपयोगी विधि है। इस परीक्षण में दस मानकीकृत कार्ड होते हैं। जिसमें से पाँच काले, सफेद तथा पाँच विभिन्न रंगों वाले शेड कार्ड्स है जिस पर 1 से X तक नम्बर अकिंत है जिन्हें इसी क्रम में व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इन विभिन्न कार्डो पर व्यक्ति अपनी रचना के अनुसार विभिन्न वस्तुओं-मानव, पशुओं आदि का चित्र देखता है जिसके प्रति वह प्रतिक्रिया करता है। यह केवल व्यक्तिगत रूप से ही संभव है। व्यक्ति को दस कार्ड एक -एक करके दिये जाते है। प्रयोज्य को यह आदेश दिया जाता है कि- मैं तुम्हें स्याही के धब्बों से बनी आकृतियों का एक-एक कार्ड दिखाऊंगा/दिखाऊंगी इसको देखने के बाद तुम्हें जो कुछ दिखाई दें, वह मुझे बताओ। तुम कार्ड को जैसे चाहे घुमा सकते हो, जब तुम्हें कुछ न दिखाई दे तो कार्ड मुझे वापस कर दो। फिर मै तुम्हे दूसरा कार्ड दूंगा/दूंगी।

समस्त कार्डो पर उत्तर प्राप्त करने के बाद एक कार्ड में लगा समय, कार्ड घुमाने की स्थिति रंग, स्थान, आकार तथा गति आदि को सूची में अकिंत कर लें और उसके आधार पर फिर परिणाम निकलते है। इस विधि का प्रयोग मुख्यतः चिकित्सा निदानों बाल -निर्देशन, व्यावसायिक चयन, निर्देशन सेवाओं पूर्व कथन करने तथा शोध कार्यो मं किया जाता है।

प्रयोज्य द्वारा दिये उत्तरो को निम्न प्रपत्र में अकिंत किया जाता है

रोर्शा रिकार्ड प्रपत्र

कार्ड नं0	प्रथम अनुक्रिया	प्रथम अनुक्रिया समय	अन्य अनुक्रिया	अनुक्रिया समय	कडिघुमाने की स्थिति	पूछताछ
1.						
2.						
3.						
4.						

- पूछताछः-

पूछताछ के दौरान यह ज्ञात कर लिया जाता है कि प्रयोज्य ने कितने स्थान को देखा किस स्थान को अधिक महत्व दिया, किन रंगों को ऊंचाई , निचाई, कोमलता-कठोरता या स्थिति को उसने महत्व दिया।

- परीक्षण फलांकन:-

इस परीक्षण की प्रतिक्रियाओं का फलांकन तीन चरणों में किया जाता है-

1) स्थान
2) प्रत्युत्तर निर्धाकर
3) विषय वस्तु

1) स्थान: इसमें व्यक्ति कौन सा स्थान देखकर उत्तर देता है। और वह चित्र उसे कहाँ दिखाई दे रहा है।
2) प्रत्युत्तर: इसमें आकार रंग, ऊँचाई-निचाई, कठोरता, मुलायम पन गति, स्थिति आदि को प्रदर्शित किया जाता है।

3) विषय वस्तुः इसके अन्तर्गत व्यक्ति के प्रत्युत्तरों अर्थात व्यक्ति की अनुक्रिया जैसे -आकृति, मानव शरीर के भागों, पशुओं पशु शरीर के भागों, घरेलू वस्तुओं, पदार्थो, चट्टानों, धुआँ आदि देखता है, जो अकिंत किया जाता है।

- प्रसिद्ध प्रत्युत्तर:-

प्रसिद्ध प्रत्युत्तर व होते है, तो प्रायः सामान्य व्यक्तियों द्वारा दिये जाते है प्रसिद्ध प्रत्युत्तर केवल उसी परिस्थिति में सम्भव हो सकता है, जब प्रयोज्य द्वारा की गई अनुक्रिया में एक अच्छे आकार का प्रत्युत्तर दिया है।

- संगठन:-

जब प्रयोज्य ने दो या दो से अधिक पदार्थो को संगठित कर उत्तर दिया हो उसे संगठन कहते है। रोशी द्वारा समस्त चिन्हों एवं संकेतो को अकिंत करने के लिए निम्न तालिका का प्रयोग किया जाता है।

कार्ड नं0	स्थापन	निर्धारक	विषयवस्तु	प्रस,प्रत्युत्तर	संगठन
1.					
2.					
3.					
4.					

- विवेचन:-

प्रसिद्ध प्रत्युत्तरों अकिंत करने के पश्चात् व्यक्ति को समझने के लिए उसका विवेचन स्थान, निर्धारकों तथा विषय -वस्तु के अधार पर किया जाता है।

i) स्थान: यदि व्यक्ति अधिक सरलता से देखने वाले स्थान की आकृति की उपेक्षा, सम्पूर्ण कार्ड को देखकर प्रत्युत्तर देता है, तो व्यक्ति की अमूर्त पदार्थो के प्रति सोचने की शक्ति अधिक होती है। वह बुद्धिवाला होता है। और जब व्यक्ति आसानी से न दिखने वाले छोटे भाग को दिखकर प्रत्युत्तर देता है तो व्यक्ति, मनोग्रस्तता के लक्षणों तथा जब व्यक्ति सफेद भाग को देखकर अधिक प्रत्युत्र देता है, तो शक्की प्रवृत्ति का होता है।

ii) निर्धारकों की विवेचना: विभिन्न प्रत्युत्तर निर्धारक व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के प्रतीक होते है-

जैसे- आकार, वास्तविकता से सम्बन्धित, रंग सुख के संवेग काल रंग उदासीनता, ऊँचाई-निचाई हीनता कठिनता, कोमलता प्रेमच्छा, गति रचनात्मकता एवं कल्पता के प्रतीक होते है।

iii) विषय-वस्तु की विवेचनाः यदि मनुष्य प्रत्युत्तर प्रयोज्य अधिक दे तो व्यक्ति का मानव पर्यावरण से उचित सम्बन्घ नहीं है, पशु प्रत्युत्तर मानव की ग्राहस -योग्यता के बतलाते है। और जब आन्तरिक अंक प्रत्युत्तर सामान्य से अधिक हो तो वे प्रयोज्य में स्वकाय दुरचिन्ता को बतलाते है।

7) **प्रसंगात्मक बोध परीक्षण-** रोशी परीक्षण की तरह यह भी पूरे व्यक्तित्व का मापन करती है। इसका निमार्ण मरे एवं मार्गन ने 1935 में किया। इसके द्वारा सामान्य एवं स्नायु दौर्बल्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व को समझा जाता है। इस परीक्षण में तीस तस्वीरों वाले मानवीकृत कार्ड होते है और एक खाली कार्ड होता है। यह परीक्षण 14 वर्ष से अधिक पुरूषों और स्त्रियों के लिए है। इन तीन कार्डो में दस कार्ड पुरूषों के लिए, दस स्त्रियों के लिए तथा दस सभी के लिए होते है। एक प्रयोज्य पर प्रायः बीस कार्ड प्रयुक्त होते है। यह प्रयोग एक समय में एक ही व्यक्ति पर किया जा सकता है। इनको भरवाने में लगभग एक घंटे का समय लगता है। इसमें प्रयोज्य से मित्रतापूर्ण व्यवहार स्थापित करने के बाद परीक्षणकर्ता प्रयोज्य को निम्न निर्देश देता है-

मै तुम्हें एक-एक करके तस्वीकर दूंगा। तुम्हें इन तस्वीरों पर अलग-अलग एक कहानी बनानी है। मैं देखना चाहता हूँ कि तुम अपनी कल्पना से कितनी सुन्दर कहानी बना सकते हो। कहानी बनातमे समय तुम्हें निम्न चार बातों को ध्यान रखना है-

- पहले क्या-क्या बात हुई, जिससे यह घटना चित्र में दिखाई गयी ।
- इस समय क्या हो रहा है?
- चित्र में कौन-कौन लोग है वे क्या सोच रह है उनके मन में क्या -क्या भाव उठ रहे है।
- इसका अंत क्या होगा ?

प्रत्येक कहानी के लिए आपको पाँच मिनट का समय दिया जायेगा और अन्त में प्रयोज्य को खाली कार्ड के निम्न निर्देश दिये गये–’’यह अन्तिम लेकिन खाली कार्ड है इसमें कोई चित्र नहीं बना है। इस खाली कार्ड में पहले कोई चित्र फिर उक्त चारों बातों को ध्यान में रखते हुए एक कहानी बनाओ|’’

समस्त कार्डो को पूरा करने के बाद प्रयोज्य से संदेहयुक्त स्थानों पर पूछताछ की जाती है पूछताछ करना परीक्षण का एक अंग है। इनके फलाकंन की कोई निश्चित विधि नहीं है। भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भिन्न फलांकन विधियों का प्रयोग किया जाता है। मुख्य रूप से परीक्षण में कहानी कीर विवेचना निम्न आधारो पर की जाती है।

- कहानी का हीरो(नायक) कौन है, जिसके साथ प्रयोज्य ने तादात्मीकरण किया है।

- नायक की आवश्यकताएँ एवं लक्ष्य क्या है?
- नायक की भग्नासा स्थितियाँ से कैसा सम्बन्ध है?
- नायक का अन्य व्यक्तियों से कैसा सम्बन्ध है?
- कहानी का प्रसंग क्या है?
- क्या परिणाम दुखी, सुखी, वास्तविक व काल्पनिक निकलेगा?

प्रायः वयक्ति टी0ए0टी कहानियों के आधार पर ही अपनी आवश्यकताओं, दवाब, प्रसंग तथा परिणाम का प्रक्षेपण करता है, एक नायक से अपना तादात्मीकरण करता है, अतः कहानी के नायक का वर्णन करना व्यक्तित्व का स्वयं वर्णन करना है। कहानी में उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त कहानी का मूल्यांकन निम्न आधार पर किया जाता है।

1. कहानी का प्रकार
2. कहानी का प्रकरण
3. कहानी का सामग्री में सम्बन्ध तथा तालमेल
4. आकृतियों का वर्णन
5. कहानियों की आकृतियों में लौगिंक सम्बन्ध
6. कहानी का मुख्य नायक तथा कम महत्वशील नायक कौन?

प्रसंगात्मक बोध परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने हेतु पुर्नपरीक्षण तथा अर्द्ध-विच्छेद विधि को अधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी पाया गया है।

प्रसंगात्मक बोध परीक्षणों का प्रयोग जहाँ बड़े लागों (वयस्कों) पर किया जाता है, वही सी0 ए0 टी0 परीक्षण बालको के लिए उपर्युक्त होता है। इस परीक्षण का सबसे पहले प्रयोंग 1943 में लियोपोल्ड बेलक ने किया। यह परीक्षण 3 से 11 वर्ष तक की आयु वाले बालकों के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के लिए प्रयोग किया जाता था। इसमें कुल 10 चित्र है, जिनमें से प्रत्येक पर जानवरों के चित्र अकिंत है। इन चित्रों के माध्यम से बालकों के परिवार सम्बन्धी, सफाई सम्बन्धी, परीक्षण आदि अनेक समस्याओं और आदतों का लगता है।

- <u>स्नीड मैंन चित्र कहानी बनाओं परीक्षणः-</u>

स्नीडमैन के द्वारा चित्र कहानी बनाओं, बनाओं परीक्षण की रचना की गई। प्रसंगात्मक बोध परीक्षण की भांति यह परीक्षण भी व्यक्ति की कल्पना शक्ति तथा सृजनात्मक योग्यताओं का मापन करता है, इस परीक्षण में 22 चित्र विभिन्न पृष्ठभूमियों जैसे जंगज बैठक कक्ष, (ड्रांइग रटम) स्नानकक्ष आदि से सम्बन्धित है, तथा 67 गत्ते पर काटें हुए चित्रों में से 19 पुरूषों, 11स्त्रियों, 2 हीजड़ों, 12 बच्चों, 10 अल्पसमूहों (जैसे नीग्रो, यहूदी आदि) 2जानवरों तथा 5 खाली चेहरे वाले चित्र है, इस परीक्षण को करते समय केवल ऐ पृष्टभूमिको प्रस्तुत किया जाता है, तथा प्रयोज्म को उनमें से केवल

एक आकृति चुननु के लिए कहा जाता है, जो एक दृश्य निर्मित करती है, और इस चित्र के आधार पर प्रयौज्य से एक कहानी लिखने के लिए कहा जाता है, प्रयोज्य से ये पूछा जाता है, कि चित्र में क्या हो रहा है, उसके पात्र कौन-कौन है, और वे क्या कर रहे है, परीक्षण के लिए एक औपचारिक फलांकन विधि विकसित की गई है। इस परीक्षण का मुख्य उद्देश्य कल्पना निमार्ण के मनोविज्ञानिक पहलू का अध्ययन करना जो मनोविदलता में मुख्य भाग अदा करता है।

- सजोन्दी परीक्षण:-

चयन प्रविधि पर आधारित इस परीक्षण में प्रयोज्य जिन चित्रों को प्राथमिकता देता है, वह उन चित्रों को ही व्यवस्थित करता है, इस परीक्षण में 48 फोटोग्राफ्स होते है, जो आठ श्रंखलाओं में प्रस्तुत किये जाते है, प्रत्येक श्रंखला में एक-एक चित्र समकामलिंगी, पीड़ित हत्या, अपस्मार रोग, मुर्छा सम्बन्धी, उदास, उग्र मनोविदलता तथा व्यामोह मनोविदलता से सम्बन्धित व्यक्ति के विषय में होता है। परीक्षण के समय प्रयोज्य से यह कहा जाता है कि वह प्रत्येक श्रंखला में से ऐसे कोई दो चित्र चुन लें, जिन्हें वह सर्वाधिक पसन्द करता है। प्रत्येक चित्र के चयन के आधार पर व्यक्ति का वर्णन आठ आवश्यकता पद्धतियों के अनेसार किया जाता है, तथा व्यक्ति द्वारा चित्र को चुनने एवं उनकों अस्वीकृत करने के व्यवहार के आधार पर प्रयोज्य के आन्तरिक तनाव का अध्ययन किया जा सकता है।

- बुक का घर-पेड़ व्यक्ति परीक्षण:-

बुक का घर-पेड़ व्यक्ति परीक्षण भी एक व्यक्ति प्रकार की प्रविधि होती है। इनके अनुसार घर की आकृति परीक्षार्थी के घर तथा उसमें रहने वाली वस्तुओं के साहचर्य को इंगति करता है। पेड़ की आकृति परीक्षार्थी के जीवन सम्बन्धी कार्य भागों तथा उसकी सामान्य परिवेश से ग्रहण किये गए आनन्द की आनन्द की योग्यता को व्यक्त करती है। व्यक्ति की आकृत्ति परीक्षार्थी के अन्तवैयक्तिक सम्बन्धों की व्याख्या करती है।

- खिलौना परीक्षण:-

इस परीक्षण में दोनो लिगां एवं वयस्कों के लिए खिलौने जैसे कठपुतली, गुड़िया, लघु रक्ष्य चित्र आदि परीक्षार्थी को खेलने के लिए दिये जाते है, एक परीक्षण कर्त्ता बच्चे द्वारा खेल के लिए चुने गए पदार्थ को नोट करता है। बच्चा किस तरह से इनकों खेलता है, पकड़ता है, तथा उनके साथ उस प्रत्यक्ष दिखने वाला व्यवहार, संवेगात्कम शब्दीकरण किस प्रकार का है, देखता है इन परीक्षणों के माध्यम में भाई-बहनों की स्पर्धा, तनाव , भय, आक्रामकता आदि को पता चलता है।

- मेकहोवर ड्रा ए परसन टेस्टः-

व्यक्ति प्रविधिओं पर आधिारित यह एक विख्यात परीक्षण कार्य के अर्न्तगत प्रयोज्य को कागज पेन्सिल देकर उससे एक व्यक्ति का चित्र बनाने के लिए कहा जाता है। पहला चित्र पूरा होने के बाद उससे विपरीत लिंग का चित्र बनाने के लिए कहा जाता है। यदि पहले चित्र स्त्री का बनाया है, जो दूसरे में पुरूष का चित्र बनाने के लिए कहा जाता चित्र बनाते समय समय परीक्षणकर्ता यह देखता है, कि प्रयोज्य ने शरीर के विभिन्न भागों को बनाने का क्या क्रम रखा है। कौन सा भाग पहले और कौन सा भाग अन्त में बनाया है। परीक्षणकर्ता चित्र बनाने की अन्य प्रतीकत्मक बातें तथा प्रयोज्य की व्याख्या को भी नोट करता है। इस परीक्षण की विवेचना निम्न तीन आधारों पर की जाती है-

(1) ड्रांइग के सामान्य सम्पूर्ण प्रभाव का विश्लेषण:- इसमें आकृति की स्थिति, चेहरे की अभिव्यक्ति, आकृत्ति की गति या स्थिरता, आदि बातों का विश्लेषण करके प्रयोज्य के बारे में यह बतलाया जाता है, कि उसमें कितनी मात्रा में विस्तृता, विरद्वता, आक्रामता एवं नम्रता है।

(2) ड्राइंग की संरचनीय आकृत्तियों का विश्लेषण:- इसके अन्तर्गत चित्र का आकार रेखाओं का दबाब, शरीर के विभिन्न अंगों को बनाने का क्रम, उसका अनुपात, दिये गये पृष्ठ की स्थिति आदि का विश्लेषण किया जाता हैं।आकृति के आकार का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के आत्म सम्मान से होता है, निम्न आत्म-सम्मान वाला व्यक्ति छोटी आकृति बनाता हैं, जबकि उच्च सम्मान वाला व्यक्ति अपेक्षाकृत बड़ी आकृति बनाता है।

(3) आकृत्तियों की विषय-वस्तु का विश्लेषण:- आकृत्तियों का विषय-वस्तु विश्लेषण में ड्राइंग में शरीर के विभिन्न भागों को महत्व दिये जाने तथा कपड़ों को पहनने आदि का विश्लेषण यिका जाता है। यदि चित्र में अन्य भागों की अपेक्षा सिर को अधिक महत्व दिया गया है। तो यह व्यक्तित्व के अनेक मुख्य पक्षों को व्यक्त करता है। जैसे यदि सिर का आकार शरीर के अन्य भागों से अधिक बड़ा चित्रित किया गया है, तब यह व्यक्ति में आंगिक, मस्तिष्क विकार, को व्यक्त करता है। नंगी मानवीय आकृतियों जननेन्द्रियों तथा छाती को विशेष महत्व दिया जाना व्यक्ति के मनोकामुक प्रवृत्तियों को, पुरूष आकृत्तियों मं होंठो को अधिक महत्व देना समकामुक प्रवृत्तियों, हाथों को महत्व देना कामुकता विरूद्धता, एवं आक्रमक तथा अपराध सम्बन्धी भावनाओं को प्रकट करता है।

कभी-कभी चित्र में हाथ बनाना छूट जाता है, अर्थात व्यक्ति के अचेतन मन में अपराध भावना छिपी है, जिसके कारण वह स्वयं को दण्डित अनुभव करता है, पुश्च्प द्वारा व्यक्ति की कमीज की जेब को महत्व दिया जाता समलिंगता का सूचक है। खीची गई आकृति में चाकू का होना आक्रमकता एवं विरूद्धता का सूचक है, आकृति चित्रांकन में पेटी को महत्व देना स्त्री या पुरूष की नियन्त्रित काम प्रवृत्तियों को व्यक्त करता है। विपरीत लिंग की आकृति बनाने में असमर्थ होना, वयक्ति की भीतरी सम-लिंगता की प्रवृत्ति को इंगित करता है।

5.5 केस अध्ययन विधि क्या है

केमर (1995) के अनुसार, “केस अध्ययन प्रायः एक व्यक्ति का विस्तृत एवं वर्णात्मक अध्ययन होता है। यह व्यक्ति की पृष्ठभूमि वर्तमान परिस्थियों एवं लक्षणों का वर्णन करता है। इसमें विशेष प्रकार के उपचार परिणाम एवं प्रयोगो को वर्णन होता है। इसमें इस बात काअंदाज लगाया जाता है कि व्यक्ति की समस्या किस तरह विकसित हुई थी।’’

इस परिभाषा के फलस्वरूप इस विधि में रोगी के बारे में प्रायः इस तरह का प्रश्न किया जाता है- कि रोगी किस तरह की समस्या से ग्रस्त है? किस तरह की समस्या रोगी को सबसे ज्यादा कष्ट पहुँचा रही है। रोगी किस तरह का व्यक्ति है? किस तरह की समस्या रोगी को सबसे ज्यादा कष्ट पहुँचा रही है। रोगी किस तरह का व्यक्ति है? वह कुसुमायोजित व्यवहार क्यों करता है? वह सामाजिक वातावरण से अपने आप को कैसे सम्बन्धित करता है? उसके जीवन में तनाव के पैदा होने का कारण क्या है। वह इन तनावों को दूर करने के लिए क्या रास्ता अपनाता है? रोगी को किस तरह के नैदानिक उपचार की जरूरत है? रोग के उपचार के लिए क्या किया जा सकता है? उसके क्या परिणाम हो सकते हैं आदि प्रश्नों का उत्तर इस विधि के द्वारा दिया जा सकता है।

वेलर (1962), हूबर (1961) ने अपने अध्ययनों के आधार पर नैदानिक केस अध्ययन विधि का एक प्रारूप तैयार किया जो नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के बीच बहुत प्रसिद्ध व लोकप्रिय है। इसमें रोगी के वर्तमान, भूत व भविष्य तीनो पहलुओं से सम्बन्धित प्रश्नों का एक अनोखा संगम दिखने को मिलता है। फलतः रोगी के बारे में जो चित्र उभरकर सामने आता है वह नैदानिक के अध्ययन विधि में काफी उपयोगी है।

5.6 नैदानिक केस अध्ययन विधि का सामान्य प्रारुप

1) **वर्तमान स्थिति-** वर्तमान स्थिति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी से निम्न पहलुओं से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर जानने की कोशिश करते हैं।

- रोगी अपनी दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में कौन-कौन सा कार्य करता है तथा कैसे करता है? वह जो कार्य करता है उसमें आदर्शता का स्तर है या उससे नीचे है?
- लाक्षणिक व्यवहार के अन्तर्गत निम्न सूचनाएँ रोगी से प्राप्त की जाती हैं।

- स्वयं रोगी की नजर से वी कौन सी समस्या है जो रोगी को कष्ट पहुँचा रही है। उसके लक्षण क्या हैं।

- परिवार के सदस्य रोगी के किस व्यवहार से सबसे अधिक परेशान होते हैं।

- मूल्यांकन कर रहे चिकित्सक के दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिक क्षुब्धता का आधार क्या है? क्या रोगी चिन्तन विकृति से ग्रस्त है? क्यों रोगी में चिन्ता, विषाद, नाकारात्मक संवेग की अधिकता है कि उसे नियंत्रित करना संभव नहीं है?

- रोगी को उपचार गृह लाने पर उसके मन में क्या प्रत्याशा है? क्या रोगी यह उम्मीद करता है कि उसके रोग के लक्षण समाप्त हो जायेंगें या उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन आ जायेगा । मानसिक रोग तथा मानसिक स्वास्थ्य के बारे में रोगी का अपना क्या विचार है? आदि प्रश्नों का उत्तर जानने की कोशिश की जाती है।
- उपचार गृह में रोगी का व्यवहार कैसा है। क्या रोगी उपचार गृह में चिन्तित नजर आता है? क्या उसके व्यवहार से यह पता चलता है कि वह प्रतिरक्षा का सहारा ले रहा है।

2) अभिव्यक्त व्यवहार-

इस स्थिति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी से निम्न बिन्दुओ पर उत्तर जानने की कोशिश करते हैं-

- क्या रोगी का स्वास्थ्य ठीक है। उसका शारीरिक संगठन कैसा है? उसकी बीमारी का इतिहास कैसा है?
- क्या रोगी चिड़चिड़ा है या संवेगों पर उसका नियंत्रण है। क्या उसके संवेग उम्र एवं परिस्थिति के अनुरूप हैं? क्या उसके हाव-भाव तनावपूर्ण है।
- रोगी अपने में व्यक्तित्व के किन गुणों का अनुभव करता है और दूसरे लोग उसे किन गुणों के रूप में जानते हैं?
- रोगी का व्यवहार दूसरे लोगों के साथ कैसा है? उसके दोस्त किस तरह के है उनकी संख्या कितनी है।

3) व्यक्तित्व गतिकी एवं संरचना-

इसमें तीन तरह की रचनाओं से सम्बद्धप्रश्न किये जाते हैं-

- रोगी के चेतन और अचेतन अभिप्रेरक क्या हैं? वे आपस में किस तरह से सम्बन्धित है। रोगी को सबसे ज्यादा आनन्द किस चीज में आता हैं रोगी का नैतिक सिद्धान्त क्या है? उनके मुख्य विश्वास क्या है?
- रोगी से अहं शक्ति चिन्तन, आत्मप्रत्तय से सम्बन्धित प्रश्नों को पूछकर सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं।

4) सामाजिक निर्धारक तथा वर्तमान जीवन की परिस्थिति-

- स्मूह के सदस्य की भूमिका क्या है? रोगी किस तरह के सामाजिक समूह से अपना सम्बन्ध रखता है?

- रोगी का पारिवारिक सम्बन्ध कैसा है? रोगी का अपने माता-पिता, बच्चों, पति व पत्नी के साथ कैसा सम्बन्ध है?
- रोगी का विद्यालय जीवन के सम्बन्ध में इतिहास तैयार किया जाता हैं? रोगी अपने कार्य, आय से संतुष्ट है? क्या उसे कार्य से विश्राम मिलता है? उसके शौक क्या हैं?
- रोगी किस तरह के समाज मं रहता है। वह अपने घर में रहता है या दूसरों के घर में।

5) मुख्य तनाव एवं उससे निबटने की अन्तःशक्ति-

किन कारणों से रोगी में तनाव उत्पन्न होता है? क्या उसके तनाव का कारण उसके व्यक्तिगत सम्बन्ध या विवाह या प्यार आदि ता नहीं हैं? अपने प्रयासो से किस सीमा तक रोगी इन तनावों से बच पाता हैं?

6) व्यक्तित्व विकास-

रोगी के व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित कुछ तथ्यों को एकत्र करने की कोशिश की जाती है। रोगी की प्रारम्भिक जीवन की अनुभूतियों एवं अन्य महत्वपूर्ण लोगों-माता-पिता, भाई-बहिन आदि के सम्बन्घो के स्वरूप की जानकारी प्राप्त की जाती है।

7) केस निर्माण-

रोगी के सम्बन्ध में तीन तरह की सूचना प्राप्त करते है-

- रोगी की मनोवैज्ञानिक परेशानी को समझने की कोशिश की जाती है। क्या कोई ऐसा सबूत मिलता है जिससे रोगी को अपनी विकृति और अधिक मजबूत करने में बल मिलता है।
- रोगी के रोग की वर्तमान अवस्था की पहचान करने के लिए अन्य मनोचिकित्सकीय विशेषताओं पर पहल करने की कोशिश की जानी चाहिए।
- रोगी किन-किन क्षेत्रों में ठीक ढंग से काम करता है तथा किन -किन क्षेत्रों में वह ठीक ढंग से काम नहीं कर पाता है। क्या रोगी में कोई स्मृति या चिन्तन दोष है? आदि।

8) सिफारिशें एवं मूल्यांकन-

केस अध्ययन विधि का यह वपहलू बहुत महत्वपूर्ण होता है।

- वांछित परिणाम
- संभावित सहयोग
- भविष्य की जिन्द्री का क्रम

यदि रोगी स्वस्थ वयक्ति बनना चाहता है तो कौन-कौन से गुणों या परिस्थितियों में परिवर्तन लाना आवश्यक है। उसकी बड़ने वाली प्रमुख आवश्यकता कौन कौन सी हैं, जो चिकित्सीय हस्तक्षेप के लिए प्रमुख लक्ष्य बन सके ?

क्या रोगी की जीवन की वर्तमान अवस्थाओं में परिवर्तन कर देने से उसका मानसिक तनाव कम हो जायेगा? क्या रोगी के साथ रहने वाले व्यक्ति से परामर्श किया जा सकता है? क्या रोगी लिए मनोचिकित्सा जरूरी है? यदि है तो उसका स्वरूप कैसा होना चाहिए वैयक्तिक या सामूहिक ? क्या उसे किसी तरह की औषधि या विद्युत चिकित्सा की आवश्यकता है?

नैदानिक इलाज के बाद रोगी के जीवन के बोर में किस तरह की भविष्यवाणी की जा सकती है? भविष्य में रोगी का किस तरह के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक हस्तक्षेप जरूरी है?

केस अध्ययन विधि के प्रारूप को निम्न शीर्षकों में हम बाँट कर अध्ययन कर सकते है-

1. परिचय सम्बन्धी सूचनाएं-रोगी का नाम, उम्र, लिंग, धर्म, पेशा, पता आदि।
2. समस्या
3. चिकित्सक के पास आने का कारण
4. पारिवारिक इतिहास
5. स्वास्थ्य एवं मेडिकल इतिहास
6. स्कूल एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि
7. व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन
8. कार्य एवं व्यावसायिक रिकार्ड
9. वैवाहिक इतिहास एवं समायोजन
10. व्यक्तित्व वर्णन
11. सिफारिशें एवं पूर्वानुमान

उक्त वर्णन के आधार पर हम रोगी के वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों के बारे में पता लगा सकते हैं।

5.7 केस अध्ययन विधि के गुण एवं दोष

केस अध्ययन विधि के कुछ गुण और दोष निम्न है-

- इस विधि द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं की सम्पूर्ण तस्वीर मिलती है। फलतः मूल्याकंन की यह प्रक्रिया काफी विश्वसनीय होती है।
- केस अध्ययन विधि द्वारा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को वर्तमान समय में रोग के उपचार में काफी सहायता मिलती है।
- इस विधि द्वारा कुछ असाधारण समस्याओं का भी आसानी से अध्ययन किया जा सकता है; जैसे-बहु व्यक्तित्व विकृति के बारे में प्रापत तथ्य या सूचनाएं एक महिला के केस पर आधारित था जिसक तीन व्यक्तित्व थे प्रत्येक व्यक्तित्व की स्मृति, पसंद तथा व्यक्तिगत आदतें भिन्न-भिन्न थीं।

केस एक जटिल विधि में कुछ गुणों के अतिरिक्त कुछ सीमाएँ भी हैं-

- यह एक जटिल विधि है। प्रश्नों को ठीक ढंग से तैयार करने के लिए नैदानिक सूझबूझ, कौशल एवं समझ की आवश्यकता होती है। इसके लिए किसी योग्य, प्रशिक्षित एवं कुशल मनोवैज्ञानिक की आवश्यकता होती है।
- इसका स्वरूप आत्मनिष्ठ है। अतः इसकी विश्वसनीयता एवं वैधता कम होती है।
- इस विधि द्वारा गम्भीर मानसिक रोगी का इलाज नहीं किया जा सकता है।

उक्त कमियों के बावजूद यह केस अध्ययन विधि नैदानिक मनोविज्ञान की एक सर्वश्रेष्ठ विधि है। इसकी महत्ता नैदानिक मनोविज्ञानियों के लिए काफी अधिक है।

5.8 सारांश

नैदानिक मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य रोगों का निदान करना होता है। प्रमुख रोगों के निदान में केस अध्ययन प्रविधि नैदानिक मूल्यांकन की एक सर्वश्रेष्ठ विधि है इस विधि द्वारा रोगी के वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों पहलुओं से सम्बद्ध प्रश्न देखने को मिलते है और इन सभी प्राप्त सूचनाओं द्वारा हमें जो तस्वीर (रोगी की) देखने को मिलती है, वह नैदानिक रूप से काफी उपयोगीर सिद्ध होती है।

मनोवैज्ञानिक परिक्षण के द्वारा इसामान्य वयवहार को आसानी से समझा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक परिक्षण व्यवहार का मापन करते है। असामान्य व्यवहार के प्रति मानवीय दृष्टिकोण के कवोस के साथ ही साथ अनेक ऐसी अध्ययन पद्धतियों का विकास हुआ जिसके द्वारा असामान्य व्यवहार के बारे में पता लगाया जा सकता है। जब व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं का मापन व्यक्तित्व सूचियों या अन्य विधियों द्वारा प्रायः असंभव हो जाता है तब हम ऐसी स्थिति में प्रक्षेपी प्रविधियों का प्रयोग करते है। क्योंकि इनके द्वारा व्यक्तित्व की आन्तरिक सतहः तक की दबी हुई इच्छाओं एवं व्यक्तित्व संरचना का ज्ञान होता है और इसीलिए प्रक्षेपी प्रविधियों को व्यक्तित्व मापन की श्रेष्ठ विधि समझा जाता है।

5.9 शब्दावली

- **विश्वसनीयता:** एक विश्वसनीय परीक्षण वह है, जिससे प्राप्त फलांक विश्वनीय है। अर्थात वही परीक्षण दोबारा उन्ही परिस्थितियों में किये जाए तो पहले जैसे फलांक प्राप्त हो ।
- **वैधता:** जब हम शुद्धता तथा प्रभावकतापूर्वक उसी योग्यता का मापन करते हैं जिसके लिए परीक्षण का निमार्ण किया गया है ।
- **मानकीकृत:** जिसके निश्चित मानक स्थापित किये जाए ।

- **स्नायुदौर्बल्य:** निरन्तर काम न करने पर भी थकावट का होना।
- **गतिकी:** गति से
- **अभिव्यक्त:** विचारों को व्य क्त करना
- **नैदानिक:** निदान करना
- **प्रत्याशा:** आकांक्षा
- **परामर्श:** सलाह देना
- **भग्नाशा:** कुण्ठा
- **मनोविदलता:** व्यक्ति को किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होती है, तथा व्यक्ति किसी वस्तु का गलत प्रत्यक्षीकरण करता है।

5.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

1. मनोनाटकीय विधि के परीक्षण में कुल .... पद होते है।
2. रोर्शा परीक्षण में कुल ....कार्ड होते है।
3. रोर्शा परीक्षण का पूरा नाम ....परीक्षण है।
4. मरे एवं मॉर्गन ने सन्........................में प्रसंगात्मक बोध परीक्षण का निर्माण किया।
5. केस अध्ययन विधि ....मूल्याकंन की सर्वश्रेष्ठ विधि है।

- सत्य/असत्य बताइये ?

6. प्रक्षेपी प्रविधि द्वारा व्यक्ति के चेतन मन की जानकारी प्राप्त की जाती है| ( )
7. शब्द साहचर्य परीक्षण का निमार्ण हरसन रोशी ने किया| ( )
8. स्याही के धब्बों के परीक्षण का निर्माण हरमन रोशी ने किया| ( )
9. प्रसशांत्मक बोध परीक्षण में तीस मानवीकृत्त कार्डस्ट होते है। ( )
10. सन्जोदी परीक्षण में कुल पैतीस, चित्र होते है। ( )
11. व्यक्ति प्रविधियों पर आधारित मे होवर ड्रा एपरसन टेस्ट एक विख्यात परीक्षण है। ( )
12. क्स अध्ययन विधि का प्रयोग नैदानिक मनोविज्ञानिक एवं मनोचिकित्सक दोनों करते है।
13. खिलौना परीक्षण द्वारा स्पर्धा, तनाव, भय आक्रमकता आदि का पता चलता है।

उत्तर: 1) 125 2) 10 कार्डस् 3) रोशी स्याही के धब्बों का परीक्षण 4) 1935 में

5) मानसिक रोगों से 6) असत्य 7) असत्य 8) सत्य

9) सत्य 10) असत्य 11) सत्य 12) सत्य 13) असत्य

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ0 अरूण कुमार सिंह, उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान, प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 डी0 एन0 श्रीवास्तव असामान्य मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन आगरा।
- डॉ0 महेश भार्गव, आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- डॉ0 मो0 सुसमान: असामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- डॉ0 आर0 एन0 सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- डॉ0 लाभ सिंह डॉ0 गोविन्द तिवारी असामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रक्षेपण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया?
2. प्रक्षेपी प्रविधि द्वारा व्यक्तित्व के किन पहलुओं का मापन किया जाता है ?
3. खेल प्रविधि की विवेचन किन दो बातों पर आधारित होती है ?
4. प्रसंगात्मक बोध परीक्षण में खाली कार्ड के लिए प्रयोज्य को क्या निर्देश दिये गये हैं ?
5. व्यक्तित्व मापन की सर्वश्रेष्ठ विधि कौन सी है ?
6. खेल प्रविधि का प्रयोग मुख्यतः किन कार्यो में होता है ?
7. केस अध्ययन विधि का प्रयोग कौन करता है ?
8. केस अध्ययन विधि का प्रसिद्ध का प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय किस मनोवैज्ञानिक का है ?
9. प्रक्षेपी प्रविधियाँ क्या है? इनकी विशेषताओं एवं सीमाओं का वर्णन कीजिये ?
10. प्रसंगात्मक बोध परीक्षण से आप क्या समझते है ?
11. केस अध्ययन विधि के प्रारूप की विवेचना कीजिये ?

इकाई- 6 स्वप्न विश्लेषण

6.1 प्रस्तावना
6.2 उददेश्य
6.3 निद्रा का स्वरुप
6.4 निद्रा के प्रकार
6.5 निद्रा की अवस्थाएँ
6.6 हम सोते क्यों है एवं निद्रा रोग
6.7 स्वप्न विश्लेषण
6.8 स्वप्न विश्लेषण के प्रकार
6.9 स्वप्न के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधाराएं
6.10 स्वप्न के दैहिक सह सम्बन्ध
6.11 आयु एवं यौन का प्रभाव
6.12 स्वप्न के सिद्धान्त
6.13 सारांश
6.14 शब्दावली
6.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
6.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.17 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

नींद का आना एक जन्मजात अभिप्रेरक है और यह प्रत्येक व्यकित के लिये आवश्यक है। सिर्फ मनुष्य ही सोते हुए नहीं देखे जा सकते बल्कि जीव-जन्तु भी सोते हुये देखे गये है और नींद के स्वप्न का दिखयी जाना एक आम बात है। बच्चा हो या बड़ा। प्रत्येक व्यक्ति के मुख से अक्सर सुनने को मिलता है कि आज उसने एक अच्छा स्वप्न देखा या बुरा स्वप्न देखा। कभी तो हम सुबह उठने के साथ ही स्वप्न भूल भी जाते है। और कभी स्वप्न सच होते भी देखे गये है। स्वप्न क्या है ? यह हमें क्यों दिखायी देते है? यह जानने के लिए पहले हम नींद का अध्ययन करेगे और फिर स्वप्न विश्लेषण के बारे में अध्ययन करेगे।

नींद के दौरान संवेदी छवियों और ध्वनियों के अनुभव को महसूस करेने को स्वप्न कहते हैं, अनुक्रम में आने वाले सपनों को स्वप्न देखने वाला एक पर्यवेक्षक के बजाए एक प्रकट भागीदार की तरह आम तौर पर महसूस किया करता हैद्व सपने प्रायः पोनस् (मस्तिष्क का संयोजक अंश) द्वारा उत्प्रेरित होता है, ओर हल्की नींद के (तीव्र ऑख गतिक नींद) दौरान अधिकांशतः सपने आया करते है।

नींद का प्रभाव प्रायः स्मृति (स्मरण) पर भी देखा गया है, जब व्यक्ति आवश्यकता से कम मात्रा में सोता है तो इसका प्रभाव स्मृति पर स्पष्ट रूप से देखा गया है। एक अध्ययन के दौरान पाया गया कि नींद के अभाव में 35 प्रतिशत तक स्मृति में गिरावट देखी गई।

6.2 उद्देश्य

- निद्रा के स्वरूप के विषय में जान सकेंगे।
- हम सोते क्यों है यह जान-सकेगें।
- निद्रा के प्रकार और अवस्थाओं के बारे में जान सकेगें।
- प्रमुख निद्रा रोगो के बारे में जानकारी हासिल कर सकेगे।
- स्वप्न का हमारे आयु और लिंग पर क्या पड़ता है के बारे में जान सकेगे।

6.3 निद्रा का स्पररूप

नीदं की अवस्था चेतन की एक बदली हुई अवस्था है। अधिकतर व्यक्ति अपनी जिन्दगी का करीब एक तिहाई भाग नींद में व्यतीत करता है। नींद की अवस्था में व्यक्ति सुप्तावस्था में होता है। जब व्यक्ति नींद की अवस्था में होता है तो उसकी शरीरिक क्रियाऐं तेजी से काम करत है और जब व्यक्ति आंख बन्द कर लेता है तो व्यक्ति का मस्तिष्क ज्ञानेन्द्रियों से सूचनायें प्राप्त करता रहता है लेकिन उनका विश्लेषण नहीं कर पाता है। नींद के दौरान हृदय और सांस की गति धीमी पड़ जाती है। वैज्ञानिक रूप से नीदं का अध्ययन करने के लिए एल्क्ट्रोएनसीफेलोग्राम का सहारा लिया जाता है।

6.4 निद्रा के प्रकार

इस क्षेत्र में हुये अध्ययनों के आधार पर नींद को दो भागों में बाटा गया है।

1. तीव्र आंख गतिक नींद (आर0इ0एम0)
2. अतीव्र आंख गतिक नींद (एन0आर0ई0एम0)

तीव्र आंख गतिक नींद में हृदय व सांस की गति काफी तेज व अनियमित हो जाती है इसमें व्यक्ति को गहरी नींद नहीं आती है और व्यक्ति को नींद की अवस्था से अचानक उठा लिया तो इस

बात की सम्भावना लगभग बनी रहती है कि वह कोई न कोई स्वप्न देख रहा है। यही कारण है कि तीव्र आंख गतिक नींद को स्वप्न नींद भी कहा जाता है।

अतीव्र आंख गतिक नींद में व्यक्ति को गहरी नीदं आती है। इसमें नेत्र गोलक में गति नी के बराबर होती है तथा साँस व हृदय की गति धीमी पड़ जाती है। व्यक्ति के शरीर का रक्तचाप कम हो जाता है। यदि इस तरह की नींद की अवस्था से व्यक्ति को उठा दिया जाये तो तीस प्रतिशत इस बात की सम्भावना बनी रहती है कि व्यक्ति कोई न कोई स्वप्न देख रहा है।

6.5 निद्रा की अवस्थाएँ

मनोवैज्ञानिक ने प्रेषण के दौरान पाया कि कुछ लोग ऐसे होते है जिन्हें नींद से जगाना कठिन होता है। और कुछ लोग ऐसे होते है जिन्हें नींद से जगाना आसान होता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसका गम्भीरता से अध्ययन किया गया और पाया गया कि नींद के दौरान मस्तिष्क में होने वाली वैद्युतीय परिवर्तन जिसे एनसिफैलोग्राम द्वारा मस्तिष्क तंरगों के रूप मे रिकार्ड किया जाता है। मापनें की कोशिश की गई मस्तिष्क तरंगों के आधार पर इसकी पांच अवस्थाएँ होती है, जिसमें प्रथम चार अतीव्र आंख गतिक नींद की व अन्तिम अवस्था तीव्र आंख की गतिक की होती है।

1) पहली अवस्था- व्यक्ति जब सोने के लिए बिस्तर पर जाता है तो वह उस समय तनावरहित एवं आराम की अवस्था में होता है। और हमारे मस्तिष्क में जो तरंगे बनती है उसे अल्फा तरंगे कहा जाता है। जो प्रति सेकेण्ड 8 से 12 चक्र की गति से चलती है। इसके बाद व्यक्ति को नीद अने लगती है तो अल्फा तरंगे बनना समाप्त हो जाती है। यही से नींद की पहली अवस्था प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में व्यक्ति को नीदं से जगा देना काफी आसान होता है।
2) दूसरी अवस्था- इस अवस्था में अल्फा तरंगें और तीव्र गति से (14 से 16 चक्र प्रति सेकेण्ड) बनती है।
3) तीसरी अवस्था- इस अवस्था में जो मस्तिष्क तरंगे बनती है काफी धीमी गति से (प्रति सेकेण्ड 1 से 2 चक्र) बनती है। ऐसी तरंगों को डेल्टा तरंगे कहा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति को जगाना थोडा कठिन होता है।
4) चौथी अवस्था- यह गहरी नींद की अवस्था होती है। इसमें जितनी भी मस्तिकीय तरंगे बनती है उसकी करीब 50 प्रतिशत से अधिक डेल्टा तरंगें होती है। तीसरी अवस्था की तरह इस अवस्था में भी नींद से जगाना कठिन होता है।
5) पांचवी अवस्था- उपर्युक्त चारों अवस्थाएं अतीव्र आंख गतिक नींद की होती है और जब व्यक्ति करीब एक घंटा नींद में बिता चुका होता है। तो दूसरी अवस्था की तरह तीव्र आंख गतिक अवस्था की तरह तीव्र आंख गतिक अवस्था प्रारम्भ होती है।

नीद की पांच अवस्थाओ में से पहली चार अवस्थाऐं अतीव्र नींद की और पांचवी अवस्था तीव्र आंख गतिक नींद की होती है। पूरी रात दोनों अवस्थाएं बारी-बारी से आती रहती है। नीदं जो विभिन्न अवस्थाओं के दौरान मस्तिष्क तरंगों में होने वाले परिवर्तन को हम निम्न चित्र में देख सकते है।

6.6 हम सोते क्यों है एवं निद्रा रोग

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि हम लोग किसी तरह की कमी को पूरा करने के लिए नहीं सोते है बल्कि नींद एक ऐसा जरिया है जिसके द्वारा हम अपने शरीर में उस परिस्थिति में ऊर्जा इकटठा करते है जब उसकी आवश्यकता किसी कार्य मं नहीं होती है। जब कोई व्यक्ति शारीरिक या मानसिंक कार्य करता है तो उसके परिणामस्वरूप उसे शरीरिक व मानसिक थकान होती है क्योंकि फिर से कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। व्यक्ति सो जाता है।

प्रमुख निद्रा रोग-

कुछ व्यक्तियों का अपनी नींद पर वंश होता है। वे जब चाहें जितनी देर के लिए सो जाते है दूसरी ओर कुछ लोगो का अपनी नींद पर नियंत्रण नहीं होता है और वह बहुत मुश्किल से ही थोड़ी देर के लिए सो पाता है। जो व्यक्ति मुश्किल से कम समय के लिए सो पाते है उन व्यक्तियों में आगे चलकर नींद से सम्बन्धित कुछ विकार या रोग उत्पन्न हो जाते है।

- अनिद्रा रोग- रात में नींद न आने पर उसे अनिद्रा रोग कहा जाता है। इस रोग में बहुत से लोग परेशान होते है। एक सर्वे के अनुसार पुरूषो में लगभग 6 प्रतिशत और महिलाओं में लगभग 14 प्रतिशत की शिकायत रहती है। विशेषकर महिलाओं को थोडा मुश्किल से नीदं आती है। इस रोग की एक विशेषता यह भी है कि इसमें व्यक्ति को थोडा मुश्किल से नींद आती है। इस रोग की एक विशेषता हय भी है कि इसमें व्यक्ति को नींद की जितनी कमी होती है। वह उससे अधिक का अनुमान लगाता है।
- नारकोलेप्सी- इसमें व्यक्ति का अपनी नींद पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता है। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति कभी भी सो जाता है। उदाहरण के लिए कक्षा में प्रोफेसर का लेक्चर चल रहा है। ओर इस बीच किसी छात्र को नींद आ जाये तो उसे नारकोलेपसी नहीं कहा जायेगा। लेकिन यदि व्याख्यान देते-देते प्रोफेसर को नींद आ जाती है, तो उसे नारकोलेप्सी को रोगी कहा जायेगा।
- निद्रा भ्रमण- यह एक ऐसा निद्रा रोग है जिसमें व्यक्ति अपने बिस्तर से उठकर खुली आंखों के साथ टहलता हैं इनके व्यवहार को देखने से लगता है कि ये कुछ खोज रहे हो। अनेक अध्ययनों द्वारा यह स्पष्ट हुआ है। कि यह बीमारी अतीव्र आंख गतिक नींद की गड़बड़ी के कारण होती है।

- रात्रि संत्रास- इसका अर्थ नींद से अचानक घबराकर या डरकर उठ जाना। इस तरह का संत्रास ज्यादातर बच्चों में देखा गया है। ऐसी अवस्था में जगने के बाद कुछ देर तक व्यक्ति में असमंजस्य की स्थिति बनी रहती है थोड़ी देर तक उसे कुछ भी समझ में नहीं आता है।

निद्रा वंचन के प्रभाव-

कभी-कभी व्यक्ति जब कई दिनों तक सो नहीं पाता है या नींद नहीं आती है तो उसमें कुछ लक्षण जैसे सम्भ्रन्ति किसी चीज के प्रत्यक्षण में कठिनाई व किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई आदि विकसित हो जाती है।

पिछले भाग में आपने पड़ा कि हम सोते क्यों है हमें नीद कब आती है और नींद न आने पर कौन-कौन से रोग हो जाते है। और सोते समय स्वप्न का आना या देखना एक स्वाभाविक किया है। इस इकाई में हम स्वप्न विश्लेषण के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.7 स्वप्न विश्लेषण

स्वप्न एक ऐसी घटना है जो हम सभी के साथ घटित होता है। हम सभी अक्सर स्वप्न देखते है कभी ये स्वप्न सुखद होते है और कभी दुखद। कभी इनका मिला जुला रूप देखने को मिलता है। अतः स्वप्न हम सभी के जीवन का हिस्सा होते है। इसके बारे में जानने की जिज्ञासा हम सभी में बनी रहती है। बच्चे हो या बड़े प्रायः सभी के मुख से स्वप्न देखने की बात सुनी जाती है।

स्वप्न का तात्पर्य चिन्त, प्रक्रियाओं भावों के कम से होता है जो नीदं के दौरान व्यक्ति के मन में उत्पन्न होते है। आदि काल से ही विशेषज्ञों दार्शनिकों लेखकों एव शरीर विज्ञानियो का मत है कि स्वप्न का स्वरूप अलौकिक होता है अतः स्वप्न के समय आत्मा जो कुछ भी देखती है सुनती है स्वप्न है। इसके बाद कुछ लोगो नेइसकी व्याख्या शरीर के भीतर होने वाले परिवर्तनों के रूप की। आजकल मनोवैज्ञानिक ने इसकी व्याख्या एक मानसिक प्राक्रिया के रूप में की। इनके अनुसार भिन्न भिन्न तरह की क्रियाए लगातार चलती रहती है और स्वप्न भी इन्ही लगातार चलने वाली क्रियाओ में से एक है। स्वप्न हमारे जीवन की धटनाओं से सम्बन्धित होते है। इनका स्वरूप विभ्रमिक होता है। यही कारण है कि स्वप्न टूट जाने एवं नीद खुल जाने पर स्वप्न के अनुभव तेजी से समाप्त होते हुये दिखाई देते है। पेज 1974 ने फ्रायड के विचारों को व्यक्त करते हुये कहा कि स्वप्न में अचेतन के सम्बन्धों की झलक मिलती है। दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है तथा फ्रायड द्वारा इसे अचेतन की ओर जाने वाला एक राजकीय मार्ग कहा गया है। स्वप्न का तात्पर्य चिन्तन प्रक्रियाओं भावों के क्रम से होता है, जो नींद के दौरान व्यक्ति के मन में उत्पन्न होते हैं, स्वप्न का सम्बन्ध तीव्र आंख गतिक नींद से होता है अर्थात जब व्यक्ति गहरी नींद नहीं आती है, और जब उसे तीव्र आंख गतिक नीद से उठाया जाता है तो 80 समय में व्यक्ति बताता है कि वह स्वप्न देख रहा था परन्तु जब

उसे अतीव्र आंख गतिक नींद से उठाया जाता है तो मात्र 7 प्रतिशत समय में व्यक्ति स्वप्न देखते बतलाना है।

स्वप्न से सम्बन्धित हम सभी के मन में कुछ न कुछ प्रश्न उठते है जैसे-

1) **स्वप्न कितने समय तक बना रहता है-** अनेक शोधो द्वारा यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्ति द्वारा देखा गया स्वप्न लगभग उतने ही समय तक चलता है जितने समय तक वास्तविक जिन्दगी की घटनायें घटती है इस कथन की पुष्टि के लिए बोलपर्ट एवं डीमेन्ट ने एक अध्ययन किया सिमं तीव्र आंख गतिक नीद जिसमें व्यक्ति स्वप्न देख रहा था उठाया गा और उससे देखे जा रहे स्वप्न के बारे में बताने को कहा गया और पाया गया कि स्वप्न का चित्रमभिनय करने में वही समय लगा जितना तीव्र आंख गतिक नींद का था।
2) **क्या सभी लोग स्वप्न देखते है?-** मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये शोधो से यह स्पष्ट होता कि प्रायः सभी लोग स्वप्न देखते है और सभी उम्र के लोग स्वप्न देखते है अन्तर सिर्फ इतना होता है कि कुछ लोग नींद से उठने के बाद स्वप्न के दृश्यें एवं प्रतिमाओं का सफल प्रव्यावाहन कर लेते है जबकि कुछ लोग ऐसा करने में कठिनाई महसूस करते है। दूसरी ओर कुछ लोग ऐसे होते है जिन्हे नींद से उठाना काफी आसान होता है और ऐसे लोग देखे जा रहे स्वप्न का अधिक से अधिक प्रव्यावहन करने में सफल होते है, जबकि कुछ लोग से होते है जिनकी नींद गहरी होती है उन्हे नींद से उठाना आसान नहीं होता है, ऐसे व्यक्ति देखे जा रहे स्वप्न का प्रत्यावाहन नहीं कर पाते है।
3) **क्या लोग स्वप्न के विषय वस्तु को नियन्त्रित कर सकते है?-** इस प्रश्न का उत्तर मनोवैज्ञानिकों ने हां मे दिया है और बताया कि कुछ हद तक स्वप्न की विषय वस्तु को नियन्त्रित किया जा सकता है। रोफवार्ग ने इस सम्बन्घ में अपने अध्यन दौरान बताया कि जब प्रायोज्यों को सोने से पूर्व लाल रंग का चश्मा पहनने के लिये देया जाता था, और कुछ समय पश्चात उनके स्वप्न पने वाले प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि अधिकांश प्रयोज्यों के स्वप्न में लाल रंग ही दिखाई दिया जब कि उनका यह निर्देश उन्हे सोचने के पूर्व कुछ समय तक उन्हें लाल रंग का चश्मा पहनने का सुझाव गुप्त था। इसी तरह टार्ट और डिक के एक अध्ययन में जिसमें इस तरह के सुझाव का स्वप्न विषय वस्तु पर पड़ने वाले प्रभाव को दिखालया इस विधि में सम्मोहित प्रयोज्यों को विस्तृत स्वप्न वृतान्त सुनाया गया इस तरह का सुझाव देने के बाद उन्हे सोने दिया गया और फिर तीव्र गतिक नींद की अवस्था में पहुँचने पर उन्हें उठा दिया गया और अध्ययन के दौरान पाया कि कुछ प्रयोज्यों ने सुझाव के तात्विक पहलुओं को स्वप्न में अधिक देखा जबकि कुछ अन्य प्रयोज्यों ने सुझाव के विशिष्ट तत्वों को स्वप्न में अधिक देखा।

अतः उक्त प्रयोगो द्वारा ये बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तर सम्मोहित सुझाव के द्वारा भी स्वप्न की विषय वस्तु को बदला जा सकता है।

स्वप्न की विशेषताएँ -

मनोवैज्ञानिकोक ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि स्वप्न निरर्थक न होकर बल्कि सार्थक किया हे जिसके आधार पर हमें मानसिक रोगो के लक्षणों एवं गतिक को समझने सहायता मिलती है स्वप्न से सम्बन्धित कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न है।

1) **स्वप्न सार्थक होते है-** सामान्यतया लोग स्वप्न को अर्थहीन समझते है परन्तु स्वप्न का विशेष अर्थ होता है मनोविश्लेषकों ने अनेको उदाहरणों द्वारा इस स्पष्ट भी किया है उदाहरण के लिए एक बार एक छात्र ने स्वप्न देखा कि उसकी माँ की मृत्यु हो गयी है माँ का शमशान घाट की ओर जा रहा था तो रास्ते में उसके पिता अचानक बेहोश होकर गिर पडे ओर उनकी मृत्यु हो गयी ओर जब छात्र के उस स्वप्न का मनोविश्लेषक द्वारा मनोविश्लेषण किया गया तो पाया गया कि छात्र अपने माता पिता दोनो से नफरत करता था क्योंकि उन दोनो ने मिकर उसे अपनी प्रेमिका के साथ प्रेम व्यवहार जारी रखने में बाधा पहुचाई थी। अतः स्वप्न निरर्थक न होकर सार्थक होते है।
2) **स्वप्न प्रतीकात्मक होते है-** स्वप्न में हम जो कुछ भी देखते है वह वास्तव में अचेतन की दमित इच्छाओं का एक प्रतीक मात्र होता है। प्रतीक का अर्थ अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग होता है ऐसे प्रतीक वैयक्तिक प्रतीक कहलाते है ऐसे प्रतीकों का सम्बन्ध निजी घटनाओं से होता है। फ्रायड ने अचेतन इच्छाओं की प्रतीक की एक लम्बी सूची दी है और इन प्रतीकों को माध्यम से स्वप्न के अर्थ को समझना काफी आसान हो जाता है।
3) **स्वप्न विभ्रमात्मक प्रवृत्ति के होते है-** स्वप्न में व्यक्ति जो कुछ भी देखता है या अनुभव करता है यह एक प्रकार का विभ्रम होता है क्योंकि नींद टूटने के बाद स्वप्नावस्था की सारी बाते एवं दृश्य गायब हो जाते है।
4) **स्वप्न आत्मगत एवं आत्मकेन्द्रीत होते है-** स्वप्न को आत्मगत इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके विषय एवं घटनाये व्यक्ति के निजी जीवन के अनुभवों से सम्बन्धित होता है जिसका अनुभव केवल उस व्यक्ति को ही होता है दूसरे को नहीं। स्वप्न का केन्द्र व्यक्ति स्वयं ही होता है।
5) **स्वप्न से भविष्य का संकेत मिलता है-** प्रायः स्वप्न में व्यक्ति को भविष्य में होने वाली घटनाओं का भी संकेत मिलता है न सिर्फ बीती हुई जिन्दगी की दमित इच्छाओं की ही अभिव्यक्ति होती है।
6) **स्वप्न के अचेतन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है-** स्वप्न की घटनाओं एवं विषयों के आधार पर हमें अचेतन के स्वरूप का पता चलता है प्रायः व्यक्ति स्वप्न में उन इच्छाओं की पूर्ति का प्रयास करता है जिसे वह साधारण जिन्दगी में सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण नहीं पाया है। अतः स्वप्न इच्छा पूर्ति के प्रयास का एक माध्यम है।

स्वप्न एक ऐसी मानसिक घटना या प्रक्रिया है जिसका मनोवैज्ञानिक महत्व काफी अधिक है क्योंकि स्वप्न हमें व्यक्ति के बीती जिन्दगी तथा भविष्य की घटनाओं दोनो के बारे में एक अर्थपूर्ण ज्ञान देता है।

6.8 स्वप्न के प्रकार

स्वप्न प्रायः दो प्रकार के होते है -

- सरल स्वप्न
- जाटिल स्वप्न

सरल स्वप्न की घटनांए एवं कहानी छोटी व सरल होती है तथा इसमें दमित इच्छाओं की पूर्ति प्रत्यक्ष रूप से होती है।

जटिल स्वप्न में स्वप्न की घटनांए लम्बी एवं एक दूसरे से इस तरह जुडी हुई होती है कि दमित इच्छाओं की पूर्ति अप्रत्यक्ष रूप से दिख पड़ती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्न में देखी गयी घटनाओं एवं विषयों के आधार पर स्वप्न को कई भागों में बाटा जैसे इच्छापूर्ति स्वप्न चिन्ता दण्ड स्वप्न प्रतिरोध स्वप्न समाधान स्वप्न गति सम्बन्धी स्वप्न।

1) **इच्छापूर्ति स्वप्न-** जिस स्वप्न में व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से व्यक्ति की इच्छापूर्ति होती है जैसे एक बालक स्वप्न में पैसे, खिलौने से जी भर कर खेलता है जिसे वह जागृतावस्था में खेलने की तीव्र इच्छा रखता है। इसे इच्छापूर्ति स्वप्न कहते है।
2) **दुश्चिन्ता स्वप्न-** इस तरह के स्वप्न में व्यक्ति स्वप्न देखते-देखते काफी गम्भीर हो जाता है उसके शरीर पर संवेगात्मक परेशानी स्पष्ट रूप से झलकने लगती है कभी-कभी व्यक्ति कॉपने व जोर जोर से रोने चिल्लाने लगता है और जब वह नीद से उठता है तो वह अपने आपको पसीने से तरबतर पाता है मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि इस तरह के स्वप्न ऐसे व्यक्ति अधिक देखते है जिसकी संवेगात्मक जिन्दगी क्षुब्ध होने के कारण अधिक चिन्तित एवं आशंकित रहते है।
3) **दण्ड स्वप्न-** इस तरह के स्वप्न में स्वप्न देखने वाला किसी तरह की सजा पाता है जिसे दण्ड स्वप्न कहा जाता है। इस तरह के स्वप्न वैसे व्यक्ति देखते है जिनका पराहं तो विकसित होता है परन्तु फिर भी कुछ ऐसे कार्य अपने दैनिक जीवन में कर बैठते है जो अनैतिक एवं असमाजिक होते है। इस तरह के स्वप्न में व्यक्ति प्रायः देखता है कि उसे बांधा जा रहा है उसकी आंख फोडी जा रही है उसे पीटा जा रहा है आदि।
4) **समाधान स्वप्न-** कुछ स्वप्न ऐसे होते है जिसमें व्यक्ति अपनी समस्याओं का विशेषकर मानसिक परेशानियों तथा संघर्षो का समाधान करता पाया जाता है। जैसे एक विद्यार्थी जो गणित की कठिन समस्याओं का हल प्रायः स्वप्न में ही करता था ऐसी कठिन समस्याओं का

समाधान जब वह जागृतावस्था में नहीं कर पाता था तो स्वप्न में वह ऐसी समस्याओं का समाधान आसानी से कर लेता था।

5) **भविष्योन्मुख स्वप्न-** जिस स्वप्नो में व्यक्ति जो भविष्य में होने वाली किसी घटना का संकेत मिलता है उसे भविष्योंन्मुख स्वप्न कहा जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति में देखता है कि उसका परीक्षाफल निकल गया है और वह पास हो गया है ओर कुछ समय बाद परीक्षाफल आने पर वह पाता है, कि वह पास हो गया है। इस तरह स्वप्न आगे वाली घटनाओं की ओर भी संकेत देते है।
6) **प्रतिरोध स्वप्न-** प्रतिरोध स्वप्न जिसमें व्यक्ति सामाजिक मान्यताओं एवं मूल्यों को तोड़ता है उनका प्रतिरोध करता हे फिशर ने बताया जैसे यदि कोई व्यक्ति स्वप्न में यह देखता है । कि उसने अपने शरीर के वस्त्र उतार कर सडक पर फेंक दिये है क्योंकि कुछ लोग उसके कीमती वस्त्र लेने उसके पीछे दौडे चले आ रहे है। यह एक प्रतिरोध स्वप्न है।
7) **गति सम्बन्धी स्वप्न-** इस तरह के स्वप्न में व्यक्ति अपने आपको तैरते, गाते, उछलते, उडते हुये देखता है इसे गति सम्बन्धित स्वप्न कहा जाता है। मनोवैज्ञानिको के अनुसार ऐसे स्वप्न वे व्यक्ति अधिक देखते है जिनकी काल्पनिक शक्ति अधिक विकसित होती है।

6.9 स्वप्न के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधाराएँ

मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा के अनुसार स्वप्न अचेतन के बारे में जानने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। अचेतन की इच्छाओं एवं प्रेरणाओं के माध्यम स्वप्न के माध्यम से करता है। प्रायः अचेतन में ऐसी इच्छायें होती है जिन्हे दिन प्रतिदिन के जीवन में पूरा कर पाना सम्भव नहीं है। फलस्वरूप वे इच्छाएं भिन्न-भिन्न रूप धारण कर स्वप्न के माध्यम से व्यक्त होती है। जिस प्रक्रम द्वारा स्वप्न के अव्यक्त के व्यक्त विषय के रूप में परिवर्तित होते है उसे स्वप्न प्रक्रम कहते है।

सूचना संसाधन विचारधारा के अनुसार स्वप्न में व्यक्ति की छिपी हुई इच्छाओं एवं आवेगों को प्रतिविम्बित नहीं किया जाता है बल्कि स्वप्न द्वारा रात में मस्तिष्क के भीतर मौजूद जटिल क्रियाओं की एक झलक मिलती है। इसके अनुसार स्वप्न का अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता है। व्यक्ति दिन भी के कार्यो से जिन-जिन तरह के अनुभवों या सूचनाओं को प्राप्त करता है । स्वप्न में उन्ही सूचनाओं एवं अनुभूतियों को व्यक्ति संसाधित करता है।

दैहिक विचारधारा के अनुसार स्वप्न में मस्तिष्क की क्रियाओं की एक आतमनिष्ठ अनुभूति होती है अर्थात स्वप्न द्वारा तंत्रीय क्रियाओं से संज्ञानात्मक तंत्र के माध्यम से कोई न कोई अर्थ निकालने का प्रयास किया जाता है। स्वप्न व्यक्ति की स्मृति एवं ज्ञान के ढाचें को प्रतिविम्बित करता है। अतः वे मानव मन के बारे में कुछ यर्थाथ सूचनाएं देते है।

6.10 स्वप्न के दैहिक सह सम्बन्घ

स्वप्न का सीधा समबन्ध नींद से है। पहले भाग में आपने पड़ा कि नींद दो प्रकार की होती है। तीव्र आंख गतिक नींद, अतिव्र आंख गतिक नींद।

तीव्र आंख गतिक नींद पर सबसे पहले अध्ययन एसरीनस्काई तथा क्लिट मैन द्वारा किया गया था। इसमें व्यक्ति को गहरी नींद नहीं आती है और वह भिन्न-भिन्न स्वप्न देखता रहता है। इस तरह की नीदं में व्यक्ति आधा सोता है आधा जागता है। इसमें 80 प्रतिशत ये उम्मीद की जाती है कि यदि उसे अचानक उठा दिया जाये तो वह किसी ने किसी स्वप्न के बारे में बतायेगा। इसीलिए इसे स्वप्न नहीं भी कहते है और अतीव्र आंख गतिक व्यक्ति को अचानक उठा देने पर मात्र 20 प्रतिशत की यह उम्मीद होती है कि वह कोई न कोई देख रहा होगा। इन दोनो ही अवस्थाओं में दो तरह के दैहिक सहसम्बन्घ पाये जाते है।

1) ई0ई0जी0 प्रतिरूप- स्वप्न के दौरान मस्तिष्क तंरगों में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देते है जिसका अध्ययन इलेक्ट्राएनसिफैलोग्राम द्वारा किया जाता है डेमेन्ट तथा क्लिटमैन के अनुसार, जो व्यक्ति तीव्र गतिक ऑख नींद में स्वप्न देखता है, उससे मस्तिष्क में बनने वाली तरंग लगभग वैसी होती है जैसी जगे रहने की अवस्था में होती है इस अवस्था में मस्तिष्क तरंग प्रति सेंकेण्ड 8 से 12 चक्र की दर से उत्पन्न होती है इनकी ऊंचाई अधिक तथा नियमित होती है। इन्हे अल्फा तरंगे कहा जाता है इनकी हृदय गति 45 से 100 प्रति मिनट व श्वासन अनियमित हो जाता है। अतीव्र आंख गतिक नींद के दौरान जो स्वप्न होते है। उसमें अल्फा तंरगे कम व डेल्टा तरंग अधिक देखने को मिलती है डेल्टा तरंग में 1 से 2 चक्र प्रति सेकेण्ड की दर से मस्तिष्क तरंग बनाती है इनकी ऊंचाई कम तथा अधिक नियमित होती है।
2) स्वप्न के दौरान होने वाली अन्य शारीरिक गतिविधियॉ- अनेक अध्ययनों में दोनो ही अवस्थाओं में स्वप्न के दौरान अनेक शारीरिक परिवर्तन होते देखे गये हैं। डेमेन्ट के एक अध्ययन के अनुसार जब मानव प्रयोज्यों को तीव्र आंख गतिक नीद की अवस्था से लगातार पाच शर्तो तक एक विशेष प्रबन्ध द्वारा बंचित रखा और पाया कि उसमें चिडचिडापन, चिन्ता तथा तनाव आदि अधिक पाया गया। ऐसे प्रयोज्यों का व्यवहार दिन में सामान्य से कुछ अधिक विचलित पाया गया। ऐस प्रयोज्यों के व्यवहार एकाग्रता की कमी तथा स्मृति लोप के कुछ लक्षण पाये गये। इस सम्बन्ध में एक प्रयोग जिम्बाडों द्वारा किया गया। इन्होंने अपने प्रयोग में बिल्ली को तीव्र गतिक नींद की अवस्था से 70 दिनों तक उसे वंचित रखा और पाया कि बिल्ली में आक्रमकता यौन एवं क्रोध जेसे व्यवहारों में पहले से काफी वृद्धि पायी गयी।

अतः स्वप्न में कुछ प्रमुख दैहिक परिवर्तन होते है। जिन्हे मनोवैज्ञानिकों ने इलेक्ट्रोएनसिफैलोग्राम द्वारा तथा तीव्र आंख गतिक नीद की अवस्थाओं से प्राणियों को वंचित करके अध्ययन किया और स्पष्ट किया कि स्वप्न का दैहिक अवस्थाओं से सम्बन्ध होता है।

6.11 स्वप्न का आयु एवं यौन पर प्रभाव

क्या स्वप्न का हमारे आयु एवं यौन पर प्रभाव पड़ता है? यह जानने के लिए हॉल तथा कास्त्ल 1986 ने 100 महिलाओं और 100 पुरूषों के स्वप्न का विश्लेषण किया और निम्न निष्कर्ष किये -

- महिलाओं द्वारा जो स्वप्न देखे जाते है वे पहचान एवं धरेलू वातावरण से सम्बन्धित होते है परन्तु पुरूषों के स्वप्न एक अजनबी व वाहय वातावरण से सम्बन्धित होते है।
- महिलाओ के स्वप्नों में किसी व्यक्ति विशेष की नहीं बल्कि व्यक्तियों के समूहों की प्रधानता होती है जबकि पुरूषों के स्वप्नों में व्यक्तियों के समूहों की प्रधानता होती है व्यक्ति विशेष की नहीं।
- महिलाओं के स्वप्न में जो व्यक्ति या पात्र होते है उसके दैहिक आकृतियों के वर्णन पर अधिक बल डाला जाता है परन्तु पुरूषों स्वप्नों में ऐसा नहीं होता है।
- पुरूषों के स्वप्न में आक्रामकता यौन शारीरिक उत्तेजना तथा उपलब्धि से जुडी घटनाओं की प्रधानता होती है परन्तु महिलाओं के स्वप्न में इन चीजों की कमी पाई जाती है।
- वयस्कों के अधिकतर स्वप्न में उनकी इच्छाओं की तुष्टि होते पाई गई है जबकि बच्चों के अधिकतर स्वप्न में आंशका के संवेग की प्रधानता होती है।

स्वप्न के स्रोत एवं सामग्री-

स्वप्न के मुख्यतः तीन स्रोत है -

1) विगत अनुभव
2) शैशवकालीन अनुभूतियों
3) दैहिक स्रोत

अनेक अध्ययनों के द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि स्वप्न में विगत दिनों के अनुभवों का संकेत मिलता है साथ ही बचपन की बहुत सी घटनाओं की याद चेतना में नहीं होती हैं और ये घटनाए या अनुभूतियों स्वप्न के माध्यम से व्यक्त होती है। स्वप्न निर्माण पर शरीर की आकस्मिक स्थिति निद्रावस्था एवं पाचन शक्ति का प्रभाव पड़ता है ये दैहिक स्रोत शरीर में ही उत्पन्न होने वाले उद्दीपक तथा व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था से उत्पन्न होते है।

6.12 स्वप्न के सिद्धान्त

दार्शनिकों शरीरशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्न की व्याख्या के कुछ सिद्धान्तों का वर्णन किया है। इन सिद्धान्तों को मुख्यतः तीन भागों में बांटा गया है।

1) **अलौकिक सिद्धान्त-** यह सिद्धान्त सैकडों वर्षो से चले आ रहे विश्वास के रूप में स्वप्न का वर्णन करता है। रोम , ग्रीक के पुराने दार्शनिकों एवं मध्य युग के धार्मिक विद्वानों का विश्वास था कि स्वप्न एक अलौकिक घटना है जो देवी देवताओं के प्रभाव से होती है। यदि देवी देवता खुश होते है तो व्यक्ति मधुर एवं आनन्दायक स्वप्न देखता है परन्तु यदि देवी देवता नाराज होते है तो व्यक्ति भयंकर या घबराहट पैदा करने वाले स्वप्न देखता है। प्राचीन विद्वानों का मानना था कि स्वप्न में व्यक्ति की आत्मा व्यक्ति के शरीर से अलग होकर विचारण करती है और वह जो कुछ भी देखती या सुनती है वही व्यक्ति को स्वप्न में दिखाई देता है।

परन्तु आज के युग में अलौकित सिद्धान्त की मान्यता बिल्कुल समाप्त हो गयी है। जबकि आज भी कुछ ग्रामीण क्षेत्रों एवं जनजातियों के लोगो में स्वप्न की व्याख्या इसी सिद्धान्त के प्रारूप के अनुकूल की जाती है।

2) **स्वप्न का शारीरिक सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न शारीरिक उत्तेजनाआं की एक मानसिंक अभिव्यक्ति है। नीद के समय वाहय उत्तेजनाओं के कारण शरीर के भीतर कुछ आन्तरिक परिवर्तन होते है। और स्वप्न इन्ही परिवर्तनों की एक अभिव्यक्ति है। एक और महान दार्शनिक अरस्तु थॉमस हार्ब्स तथा गेलेन आदि के अनुसार नींद की अवस्था में व्यक्ति की चेतना काफी निष्क्रिय हो जाती है और व्यक्ति को बाहरी जैसे गर्मी हवा ठंड आदि उददीपको का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। परन्तु नींद की अवयस्था में इस तरह के उत्तेजनाओं का प्रभाव व्यक्ति के विभिन्न अंगों पर पड़ता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति के अंगों में स्नायु प्रवाह उत्पन्न होते है जो संवेदी न्यूरोन द्वारा मस्तिष्क में पहुंचे स्नायु प्रवाह भ्रमात्मक प्रव्यक्षण होता है। यही भ्रमात्मक प्रत्यक्षण हमारे स्वप्न का आधार बनते है। जैसे निद्रावस्था में यदि व्यक्ति का हाथ या पैर या कोई अंग बिस्तर से नीचे लटक जाता है। तो प्रायः उस व्यक्ति को यही महसूस होता है कि उसका शरीर किसी ऊंची जगह से नीचे की ओर लुढक जा रहा है।

तो दूसरी ओर प्रयत्न और भूल सिंद्धान्त के अनुसार नीद की अवस्था में बाहरी एवं आन्तरिक उत्तेजनाओं का प्रभाव हमारे शरीर के अंगों पर पड़ता है जिसका सही-सही अर्थ समझने का प्रयास तंत्रिका प्रणाली द्वारा किया जाता है। क्योंकि नींद की अवस्था में तंत्रिका प्रणाली की शक्ति सुषुप्त होती है। और इसी कारण निद्रावस्था मे उच्च्व केन्द्रो की शक्ति कमजोर पड़ जाने के कारण शारीरिक उत्तजनाओं का अर्थ सही ढंग से समझने में असफल रहता है। सार्जेण्ट ने शरीरिक आधार की पुष्टि के लिए एक प्रयोग किया जिसमें प्रयोज्य को उस समय इत्र सुंघया गया। जब वह सो

रहा था नींद टूटने पर उस प्रयोज्य ने स्वप्न का वर्णन इस तरह किया कि वह अपनी पत्नी के साथ दुकान से इत्र खरीदने गया हुआ था। परन्तु पैसा कम पड़ जाने के कारण वह ऐसा करने में समर्थ न हो सका और लौटकर घर आ गया। इसी तरह कॉण्ट ने बतलाया कि यदि व्यक्ति आराम में ज्यादा लेता है तो उसकी पाचन क्रिया में गडबडी हो जाती है तथा हृदय व नाडी की गति तीव्र हो जाती है और ऐसी स्थिति में व्यक्ति प्रायः चिन्ता का स्वप्न अधिक देखता है।

अतः इस सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न का आधार शारीरिक होता है। उददीपको द्वारा व्यक्ति के शरीर के भीतर कुछ परिवर्तन होते है जिनका अनुभव मस्तिष्क को होता है। फलस्वरूप व्यक्ति को इस उददीपकों का यथार्थ ज्ञान होता है।

3) **मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त-** मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त द्वारा स्वप्न की व्याख्या व्यक्ति की चेतन एवं अचेतन की अनुभूतियों के रूप में की गई। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे फ्रायड एडलर युंग तथा कार्ल अब्राहम ने स्वप्न के अध्ययनों में विशेष रूचि दिखलाई । इन लोगो ने अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों के आधार पर बतलाया कि स्वप्न सार्थक होते है तथा उनका खास उद्देश्य होता है। न कि निर्थक व उद्देश्यहीन होता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न में व्यक्ति की उन सभी इच्छाओ की पूर्ति होती है जो अनैतिक, कामुक एवं असामाजिक होने के कारण भी दमित कर दी गयी थी। फ्रायडने अपने इस सिद्धान्त में स्वप्न के विषय को काफी महत्वपूर्ण बताया। ये विषय दो तरह के होते है-व्यक्त विषय, अव्यक्त विषय। स्वप्न में व्यक्त विषय से तात्पर्य उन विषयों घटनाओं या तथ्यों से होता है जिसे वह स्वप्न में देखता है तथा नींद टूटने पर उनका वर्णन करता है और स्वप्न के अव्यक्त विषय से तात्पर्य स्वप्न में देखी गयी घटनाओं एवं तथ्यों के पीछे छिपो अर्थ से होता है जिसका पता हमे स्वप्न विश्लेषण के बाद होता है। जब तक स्वप्न विश्लेषण करके व्यक्त विषय के पीछे छिपे हुए अर्थ को या अव्ययक्त विषय का पता नहीं लगा लिया जाता है स्वप्न में देखी गई घटनाओं एवं विषयों को समझना सम्भव नहीं है। फ्रायड ने एक युवती स्वप्न का विश्लेषण करते हुए कहा कि एक युवती अकसर स्वप्न देखा करती थी वह राजा रानी के साथ घूम रही है। यह व्यक्त विषय है जिसका महिला के जीवन इतिहास के संदर्भ में विश्लेषण करने पर फ्रायड ने बताया कि वह अपने माँ बाप के साथ घूमना चाहती थी लेकिन उसके माँ बाप कोई न कोई बहाना बताकर उसे ले जाने से इंकार कर देते थे। अतः उसकी यह इच्छा धीरे - धीरे अचेतन मन में दमित हो गयी है और इस दमित इच्छा पूर्ति युवती स्वप्न में राजा रानी के साथ घूमकर कर रही थी।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक युग ने अपने स्वप्न विश्लेषण सिद्धान्त में इस बात पर विशेष बल दिया कि स्वप्न द्वारा भविष्य की घटनाओं का भी संकेत मिलता है। युग के अनुसार स्वप्न भूत पिचास के बारे में बतलाता है तथा साथ ही साथ भविष्य के बारे में भी पहले बतलाता हैं। अन्य मानसिक घटनाओं के सामना स्वप्नका भी एक कारण तथा एक उद्देश्य होता है। युग ने अपने एक स्वप्न का विश्लेषण

किया, और बतलाया कि एक मृत सिपाही की पॉकेट से उन्हें एक डायरी मिली। उस डायरी में मृत सैनिक ने अपने तीन दिन पहले देखे गये स्वप्न का वर्णन किया। वह अपने तीन मित्रों के साथ एक विशाल ऊचें पहाड़ पर चढ रहा है। उसके अन्य मित्र उससे आगे न बड़ने का बार -बार आग्रह कर रहे थे परन्तु वह अपने सभी मित्रों की बात अनसुनी करते हुये आगे बढता चला जाता है। अचानक उसका पैर फिसलता है उसका मस्तिष्क फटता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। इसी घबराहट में उसकी नीदं टूट जाती है। स्पष्ट है कि सैनिक के साथ वही घटना घटी जिसे उसने तीन दिन पहले स्वप्न में देखा था। अतः स्पष्ट है कि स्वप्न द्वारा भविष्य की घटनाओं का संकेत मिलता है।

एडलर ने अपने स्वप्न के सिद्धान्त में फ्रायड द्वारा प्रस्तावित दमित कामुक इच्छाओं के महत्व को अस्वीकार किया परन्तु मानसिक संघर्ष के महत्व को स्वीकार किया। एडलर के अनुसार स्वप्न का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन की वर्तमान घटनाओं से होता है, इन घटनाओं का समाधान स्वप्नहष्ट्रा अपने स्वप्न में करता है, स्वप्न का वर्णन करते हुए बतलाया कि एक व्यक्ति अपने को बॉस से अधिक योग्य समझता था। एक रात उसने एक अच्छे होटल में ठहराया और वह बॉस की हर तरह से सेवा को समर्पित था। बॉस ने उससे प्रसन्न होकर उसे पदोन्नति दे दी । परन्तु इसके लिए वह एक शर्त भी रखता है कि वह सामने पहाड़ से एक दूर्लभ फूल लाकर उसके कोट में लगा दे। वह बॉस की बात को पूरा करने के लिए पहाड़ पर चढता है ओर उसका पैर फिसल जाता है वह नीचे गिर जाता है ओर अचानक चीख के साथ उसकी नींद खुल जाती है। उक्त उदाहरण की व्याख्या करते हुये एडलर ने बताया कि स्वप्न में श्रेष्टता प्रवृत्तियों को तृप्त करने की कोशिश की जाती है साथ ही स्वप्न का सम्बन्ध वर्तमान घटनाओं से अधिक होता है।

स्वप्न विश्लेषण के सम्बन्ध में फ्रायड युंग एवं एडलर की व्याख्या- स्वप्न विश्लेषण की व्याख्या के सम्बन्घ में सभी मनोवैज्ञानिकों ने इसे व्यक्ति के दैनिक जीवन की अतृत्त इच्छाओं की पूर्ति बताया। फ्रायड ने स्वप्न में अतृप्त कामुक इच्छाओं की संतुष्टि होते माना है युंग ने स्वप्न में जीने की इच्छा जैसे मौलिक इच्छाओं की तृप्ति होते माना और एडलर ने इसे स्वप्न में श्रेष्ठता प्रवृत्तियों को करते पाया है। इस तरह स्वप्न के तीनो सिद्धान्तों में किसी न किसी तरह की इच्छापूर्ति पर विशेष बल दिया गया है।

स्वप्न के व्यक्ति विषय में बदल देने की क्रिया को स्वप्न विश्लेषण कहते है। स्वप्न विश्लेषण के समबन्ध में फ्रायड एडलर एवं युंग ने एक स्वप्न की व्याख्या भिन्न - भिन्न ढंग से की -

डदाहरण - एक युवक ने एक स्वप्न देखा कि मैं अपनी माँ एवं बहन के साथ सीडियों पर चढ रहा था सीड़ी चढते-चढते हम लोग ऊचे स्थान पर पहुचे। तब मुझे पता चला कि मेरी बहन को बच्चा होने वाला है।

फ्रायड की व्याख्या- फ्रायड ने इस स्वप्न का विश्लेषण इस ढंग से किया कि इस स्वप्न के माध्यम से युवक ने अपनी बीन के प्रति दमित फामुक इच्छा की संतुष्टि की। अत्याधिक अनैतिक होने के कारण युवक की यह इच्छा अचेतन में दमित हो गयही और दमित इच्छा प्रतीक के रूप में अभिव्यक्ति एवं संतुष्ट हुई।

युग की व्यख्या-युग की व्याखा के अनुसार युक अपनी उन्नति का इच्छुक था उसकी यह इच्छा पूरी न होने से वह अचेतन में दमित हो गयी थी और उसकी दमित इच्छा की संतुष्टि स्वप्न के माध्यम से हुई। यहाँ सीढी़ चढ़ना भविष्य में उन्नति का प्रतीक है माँ तथा बहन सहयोगी एवं सच्चे प्रेम के प्रतीक है बच्चा पैदा होना युवक के भावी जीवन के सुखद पक्ष का प्रतीक है युग के अनुसार यह स्वप्न कामुकता से परे है और इसका सम्बन्ध अतीन वर्तमान एवं भविष्य है।

एडलर की व्याख्या- एडलर अनुसार इस स्वप्न के माधम से युवक ने अपनी वर्तमान समस्या का समाधान किया है। युवक मुलतः हीन भावना से पीड़ित व श्रेष्ठता पाने के लिए प्रयत्नशील था। इसलिए वह मानसिक द्वन्द का शिकार हो गया और इस द्वन्द का समाधान उसने स्वप्न के माध्यम से किया इनके अनुसार सीढी़ चढना कठिनाई पर विजय पाने का प्रतीक है माँ एवं बहन आत्मनिर्भरता का प्रीतक है और बच्चा उसकी सफलता का प्रतीक है।

एक ही स्वप्न की व्याख्या फ्रायड युग तथा एडलर ने अपने ढंग से की है। इसमें से किस व्याखा को सही माना जाये और किस गलत। यूँ तो तीनों मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के दैनिक जीवन की अतृप्त इच्छाओं की संतुष्टि या पूर्ति होते माना है फ्रायड ने स्वप्न से अनृप्र कामुक इच्छाओं की संतुष्टियों पूर्ति होते माना है वही युग ने स्वप्न में जीने की इच्छा जैसी मौलिक इच्छाओं की तृप्ति ताना एवं एडलर ने व्यक्ति स्वप्न में श्रेष्टता प्रवृतियों की पूर्ति बतलाया। लेकिन इन तीनों मनोवैज्ञानिकों ने अपनी व्याख्या में किसी न किसी की इच्छापूर्ति पर विशेष बल दिया।

6.13 सारांश

नींद की आवश्यकता प्रत्येक मुनष्य को ही नहीं होता है, बल्कि जीव जन्तु को भी इसकी आवश्यकता होती हैं। नींद की आवश्यकता में व्यक्ति प्रायः अचेतन अवस्था में होता है इस अवस्था में व्यक्ति दुनिया के प्रति कम अनुक्रियाशील होता है और व्यक्ति के केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में भी परिवर्त आ जाता है। प्रायः स्वप्न सच होते भी देख गये हैं। कभी कभी ये हमें आने वाली घटनाओं के बार में पहले ही संकेत दे जाते हैं। व्यक्ति चाहे जाग्रतावस्था में हो या निद्रावस्था में। उसमें मानसिक क्रिया किसी न किसी रूप में चलती रहती है और नींद की अवस्था में होने वाजी क्रिया स्वप्न कहलाती है। स्वप्न में चलती रहती है और नींद की अवस्था में होने वाली क्रिया स्वप्न कहलाती है। स्वप्न में माध्यम से व्यक्ति की अचेतन इच्छाओं की सन्तुष्टि होती व्यक्ति की दमित इच्छाएं जब अचेतन में इकट्ठा होती रहती है और नींद की अवस्था में ये दमित इच्छायें जब अचेतन में इकट्ठा

होती रहती है और नींद की अवस्था में ये दमित इच्छायें स्वप्न के रूप में प्रकट होकर अपनी सन्तुष्टि करती है।

6.14 शब्दावली

- **विभ्रमिक:** उत्तेजना न होने पर भी उसका अनुभव करना।
- **दैहित:** शारीरिक
- **दमित**: दबी हुई
- **प्रतिरोध:** अवरोध
- **स्मृति लोप:** सीखी गयी चीजों का किसी कारण से पहचान न कर पाना।
- **प्रेषण:** अवलोकन
- **नेत्र गोलक:** आँख की पुतली
- **विकार:** रोग
- **सुप्तावस्था:** अव्यक्त या सोई हुई

6.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

➢ सत्य/असत्य बताइये।

1) नींद की असवस्था में व्यक्ति चेतन अवस्था में होता है।
2) निद्रा के चार प्रकार होते हैं।
3) मस्तिष्क में होने वाले बैद्युतीय परिवर्तन जिसे इलैक्ट्रोएनसिफैलो ग्राम द्वारा मस्तिष्क तरंगों के रूप में रिकार्ड किया जाता है।
4) तीव्र आँख गतिक नींद में व्यक्ति की गहरी नींद आती है।
5) स्वप्न सरल और जटिल दो प्रकार के होते हैं।
6) स्वप्न सरल और जटिल दो प्रकार के होते हैं।
7) शारीरिक सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न शारीरिक उत्तेजनाओं की एक अभिव्यक्ति है।

उत्तर: 1) असत्य 2) असत्य 3)सत्य

4)असत्य 5)सत्य 6)असत्य 7)सत्य

6.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, प्रकाशन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।

- डॉ0 मोहम्मद सुलेमान, डॉ0 मो0 तौबाब असामान्य मनोविज्ञान, प्रकाशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- डॉ0 आर0 के0 सिंह आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान , अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशान , आगरा।

6.17 निबन्धात्मक प्रश्न

- अति लघु उत्तरीय प्रश्न-
  1. मनुष्य अपनी जिन्दगी का लभग कितना समय नींद में बिताता है?
  2. अल्फा तंरगें कब बनती है?
  3. तीव्र आँख गतिक नींद पर सबसे पहले किसने कार्य किया?
  4. स्वप्न के समय व्यक्ति किस अवस्था में होता है?
  5. ई0ईजी का पूरा नाम क्या है?
  6. मस्तिष्क तरंगों का मापन किसके द्वारा किया जाता है?
  7. स्वप्न कितने प्रकार के होते है?
  8. स्वप्न के मुख्य तीन स्रोत एवं सामग्री क्या है?
- लघु उत्तरीय प्रश्न-
  9. नींद की मुख्य अवस्थाएँ क्या है?
  10. नींद न आने पर व्यक्ति को कौन-कौन सी बीमारियाँ हो जाती है?
  11. व्यक्ति के लिए नींद क्यों आवश्यक है?
  12. स्वप्न विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?
  13. स्वप्न के दौरान शारीरिक गतिविधियों में होने वाले परिवर्तन क्या है?
  14. दैहिक सहसम्बद्धता से स्वप्न का क्या सम्बन्ध है?
  15. स्वप्न का हमारे आयु एवं यौन पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-
  16. निद्रा के स्वरूप एवं प्रकारों का वर्णन कीजिये?
  17. स्वप्न विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? स्वप्न के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन कीजिए?

इकाई–7 दैनिक जीवन की मनोविकृतियाँ

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 दैनिक जीवन की मनोविकृतियों का अर्थ
7.4 दैनिक जीवन की कुछ महत्वपूर्ण विकृतियाँ
7.4.1 नामों का भूलना
7.4.2 बोलने की भूलें
7.4.3 लिखने की भूलें
7.4.4 छपाई की भूलें
7.4.5 पहचानने की भूल
7.4.6 वस्तुओं को इधर-उधर रखना
7.4.7 अनजाने में की गई क्रियाएं
7.4.8 सांकेतिक क्रियाएं
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

व्यक्ति का व्यवहार उसके अचेतन मन से काफी प्रभावित व निर्देशित होता है। हमारे दैनिक जीवन में प्रायः कुछ ऐसे व्यवहार घटित होते हैं जिनकी जानकारी व्यक्ति को नहीं होती और उस ओर ध्यान दिलाने पर उसे आश्चर्य होता है। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे व्यवहार को दैनिक जीवन की भूलों या विकृतियों के रूप में प्रस्तुत किया है जो निरर्थक न होकर, सार्थक होते हैं।

पिछली इकाइयों में आपने असामान्यता के विभिन्न प्रकारों तथा सामान्य और असामान्य व्यवहार के बीच अन्तर के बारे में जाना तथा विभिन्न दृष्टिकोणों के परिप्रेक्ष्य में असामान्यता की व्याख्या का अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हमारे दैनिक जीवन में घटित होने वाली विभिन्न प्रकार की विकृतियों का अध्ययन करेंगे जो कहीं-न-कहीं हमारे अचेतन मन के अस्तित्व को प्रमाणित करने में सहायक होती हैं।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

- दैनिक जीवन की मनोविकृतियों का अर्थ समझ सकें।
- दैनिक जीवन की विभिन्न मनोविकृतियों को रेखांकित कर सकें।
- रोजमर्रा की जिन्दगी में घटित भूलों का उदाहरण प्रस्तुत कर सकें तथा
- विभिन्न प्रकार की दैनिक भूलों की विस्तृत व्याख्या करने में सक्षम हो सकें।

7.3 दैनिक जीवन की मनोविकृतियों का अर्थ

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना फ्रायड द्वारा अचेतन मन की खोज है। फ्रायड ने अचेतन को मन का वैसा भाग बताया जिसमें अवस्थित विचारों, अनुभवों आदि को पुनः चेतना में नहीं लाया जा सकता। वे या तो स्वतः दैनिक क्रिया-कलापों में प्रकट होते हैं या सम्मोहन, मनोविश्लेषण या अन्य प्रायोगिक तरीकों द्वारा उन्हें जाना जाता है। अचेतन में छिपे विषयों या इच्छाओं को व्यक्ति अपनी इच्छानुसार चेतना में नहीं ला सकता। फ्रायड ने अचेतन के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा कि अचेतन में व्यक्ति के संवेग, विविध प्रकार के अनुभव, व्यक्ति की अतृप्त इच्छाएं, उसके विचार आदि का भंडारण रहता है जिनका व्यक्ति के जीवन के साथ निकट का सम्बन्ध होता है। परन्तु, सामान्यतः व्यक्ति को इसकी जानकारी लेश मात्र भी नहीं होती। इनका स्वरूप अव्यक्त होता है। परन्तु ये अव्यक्त विषय हमेशा विभाजन रेखा को पार करके चेतन मन में आने के लिए सक्रिय रहते हैं। अचेतन मन के अव्यक्त विषय की इसी प्रवृत्ति के कारण विभिन्न प्रकार की दैनिक भूलें होती हैं। ये भूलें अचेतन के अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं।

दरअसल, भूलें करना या गलतियों का होना मानव जाति की एक सार्वभौमिक विशेषता है। कुछ भूलें अज्ञानता वश होती हैं तो कुछ की जानकारी व्यक्ति को होती है। अज्ञानतावश होने वाली भूलों के अन्तर्गत बोलने की भूलें, लिखने की भूलें, चीजों को इधर-उधर रखने की भूलें, वादों का भूलना, स्थान या नाम भूलना आदि। दैनिक जीवन की सामान्य भूलें आती हैं। इन भूलों के कारण अचेतन होते हैं। अर्थात् इन त्रुटियों या भूलों की चेतना व्यक्ति को नहीं होती। चूँकि दैनिक जीवन की ये भूलें या गलतियाँ अचेतन के प्रभाव से होती हैं, इसीलिए व्यक्ति इन भूलों के प्रति अज्ञान रहता है तथा अनायास या बिना ध्यान के होने वाली गलती कहकर संतुष्ट हो जाता है।

सामान्यतः इन भूलों को निरूद्धेश्य असावधानी, थकान, रक्त संचालन की गड़बड़ी, शारीरिक अस्वस्थता, अथवा मात्र संयोग का प्रतिफल माना जाता है। परन्तु प्रायः यह देखा जाता है कि इन कारणों के नहीं रहने पर भी इस तरह की भूलें हुआ करती हैं।

फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'साइकोपैथोलॉजी ऑफ एवरीडे लाइफ' (1914) में इन सामान्य भूलों के बारे में विस्तार से वर्णन किया है तथा इन भूलों को उद्देश्यपूर्ण बतलाया है। फ्रायड के अनुसार, दैनिक जीवन की ये भूलें वस्तुतः मनोविकृतियाँ हैं। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं तथा इन भूलों के कारण व्यक्ति के अचेतन में दमित विरोधी विचार, आक्रामक प्रवृत्तियाँ, काम भावनायँ एवं अतृप्त इच्छाएँ होती हैं। फ्रायड का मत है कि व्यक्ति के सामान्य जीवन में होने वाली इन साधारण गलतियों द्वारा अचेतन में दमित विचारों या अतृप्त इच्छाओं की चेतन अभिव्यक्ति होती है। अतः दैनिक जीवन की सामान्य भूलों द्वारा अचेतन की दमित इच्छओं को जाना जा सकता है। साथ ही, व्यक्ति की इन भूलों के माध्यम से मानसिक संघर्षो का समाधान सहज ढंग से हो जाता है, क्योंकि इन साधारण गलतियों की उत्पत्ति अहं की रक्षा युक्तियों द्वारा होती है। इसीलिए फ्रायड ने दैनिक जीवन की सामान्य भूलों को मितव्ययी या लाभकारी माना है क्योंकि मानसिक संघर्षो के समाधान का यह सहज माध्यम या आसान तरीका होता है। अस्तु, दैनिक जीवन की मनोविकृतियों के निश्चित कारण और विशेष महत्व होते हैं तथा उनमें मितव्ययी, लाभकारी होने का गुण पाया जाता है।

7.4 दैनिक जीवन की कुछ महत्वपूर्ण विकृतियाँ

अचेतन के अस्तित्व को प्रमाणित करने हेतु फ्रायड ने कुछ महत्वपूर्ण विकृतियों का उल्लेख किया जो हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में देखने को मिलती हैं। ऐसी विकृतियाँ या भूलें निम्नलिखित हैं-

1. नामों का भूलना
2. बोलने की भूलें
3. लिखने की भूलें
4. छपाई की भूलें
5. पहचानने की भूलें
6. वस्तुओं को इधर-उधर रखना
7. अनजाने में की गई क्रियाऐं
8. सांकेतिक क्रियाऐं

7.4.1 नामों का भूलना -

नामों का भूलना मानव समाज में एक सामान्य घटना है। अपने दैनिक जीवन में कभी-कभी हम अपने पूर्ण परिचित व्यक्तियों, स्थानों अथवा किसी महत्वपूर्ण तिथियों को अचेतन रूप से भूल जाते हैं। इस तरह की भूलने की घटनाएँ अस्थायी एवं स्थायी दोनों तरह की होती हैं तथा व्यक्ति के दैनिक जीवन की सामान्य घटनाएँ होती हैं। जैसे कोई व्यक्ति किसी के नाम को अच्छी तरह जानता है परन्तु कुछ समय के लिए उसे वह नाम याद नहीं आता, हालाँकि वह उसे देखकर पहचान लेता है, इसी तरह, कोई व्यक्ति किसी काम को करना चाहता है, पर भूल जाता है, लेकिन बाद में उसे वह याद आ जाता है। इस प्रकार के भूलने की क्रिया अस्थायी अर्थात् थोड़े समय के लिए ही होती है। भूलने की कुछ क्रियाएँ स्थायी भी होती हैं, जैसे कोई चीज कहीं रख देना और फिर उसे ढूँढ न सकना, किसी पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम को भूल जाना इत्यादि।

साधारणतः इस प्रकार के भूलने की क्रिया का कोई स्पष्ट कारण हमें पता नहीं चलता तथा हमें आश्चर्य होता है। कभी-कभी ऐसी भूलों को हम निरर्थक और मामूली घटना मानकर ध्यान नहीं देते। परन्तु फ्रायड ने इन भूलों को किसी महत्वपूर्ण बातों का सांकेतिक लक्षण माना है। उनके अनुसार व्यक्ति 'सही' या 'गलत' जो कुछ भी करता है वह कारण-प्रभाव के नियमों से बंधा हुआ होता है। अतः परिचित नामों को भूलने के पीछे भी कोई-न-कोई कारण जरूर होता है। अर्थात् बिना किसी कारण के व्यक्ति कुछ नहीं करता। फ्रायड ने इस सम्बन्ध में यह बतलाया है कि इस तरह की भूलों के कारण अचेतन में दमित दुःखद या अप्रिय अनुभव अथवा आक्रामक एवं कामुक इच्छाएँ होती हैं। इन दमित इच्छाओं के फलस्वरूप उत्पन्न मानसिक संघर्षों से मुक्ति पाने हेतु अचेतन रूप से हम इन्हें भूल जाना चाहते हैं, इसलिए अज्ञानतावश हम अपने परिचित व्यक्तियों, स्थानों अथवा वस्तुओं के नामों क्षणिक अथवा स्थायी रूप से भूल जाते हैं। क्षणिक रूप से भूलने के कारण, प्रायः अर्द्धचेतन स्तर पर रहते हैं, इसीलिए जिस समय हम कुछ याद करना चाहते हैं, उस समय वह बात याद नहीं आती, लेकिन, थोड़ा प्रयास करने पर अथवा कुछ समय बाद वे बातें चेतना में आ जाती हैं, और तब वे बातें याद हो जाती हैं। लेकिन, स्थायी रूप से भूलने या कुछ अधिक समय तक नहीं होने के कारण अचेतन में रहते हैं। इसलिए ये बातें जल्दी ही याद नहीं होते।

चूँकि नामों को भूलने की क्रिया अर्द्धचेतन या अचेतन कारणों से होती हैं, इसलिए व्यक्ति को इनका कोई स्पष्ट कारण नहीं मालूम पड़ता है। वस्तुतः इसमें 'अहं' की रक्षायुक्ति, दमन का मुख्य हाथ रहता है। अतः भूलने की इस सामान्य घटना द्वारा अचेतन में दमित इच्छाएँ प्रकट होती हैं।

फ्रायड ने अपनी पुस्तक में एक घटना का जिक्र किया है। 'क' नाम के किसी युवक का एक महिला से प्रेम हो गया। लेकिन यह प्रेम एक तरफा था। अर्थात उस युवती ने 'क' नाम के युवक के प्रति कोई प्रेम न दिखाई और कुछ दिनों के बाद उसकी शादी किसी 'ख' नाम के युवक के साथ हो गयी। 'क' नाम का युवक 'ख' नाम के युवक को पहले से जानता था और दोनों एक साथ व्यापार

करते थे। लेकिन अपनी प्रेमिका की 'ख' नाम के युवक से विवाह के बाद 'क', 'ख' के नाम को भूल गया था और दूसरों से पूछा करता था कि वह कौन है।

इस प्रकार वह 'क' नाम का व्यक्ति अपने प्रतिद्धन्दी 'ख' के बारे में अपने परिचय को भूल जाना चाहता था। ऐसा करने से वह युवती अभी भी उसकी संभावित पत्नी के रूप में प्रतीत होती है और उसके साथ विवाह-सूत्र में बँधने की उसकी अचेतन में दमित इच्छा की संतुष्टि होती है।

ऐसी भूलों में सही नाम की जगह गलत नाम याद आने, किसी उद्देश्य, किसी कार्य को करने का निश्चय या संकल्प इत्यादि को भूल जाने की भी गणना होती है। सामान्य जीवन के अनेक अवसरों पर हम इस प्रकार की गलतियों के शिकार होते हैं। किसी व्यक्ति द्वारा अपनी प्रेमिका का किसी दूसरे से विवाह हो जाने के बाद उसके सही उपाधि नाम को भूल जाना और उसकी जगह विवाह से पहले के उपाधिनाम का ही बार-बार याद होना गलत नाम याद होने का उदाहरण है। यहाँ भी व्यक्ति अचेतन रूप से उस युवती को अपनी संभावित पत्नी के रूप में देखना चाहता है, इसीलिए सही नाम की जगह गलत नाम ही उसकी चेतना में बार-बार आता है। इसी तरह हम उन व्यक्तियों या स्थानों के नामों को भी भूल जाना चाहते हैं जिनके साथ दुःखद या अप्रिय अनुभव सम्बन्धित होते हैं। इसके अतिरिक्त हम उन नामों को भी भूलते हैं जिनके साथ आक्रामक और कामुक इच्छाएं या घृणा के भाव जुटे होते हैं। लेखक को एक ऐसे युवक से भेंट हुई जो अपनी सौतेली माँ का नाम भूल गया था। उससे कुछ देर की बात-चीत के बाद पता चला कि उसकी सौतेली माँ बहुत ही क्रूर स्वभाव की थी और उसे कई बार जहर देकर मार डालने का प्रयास भी कर चुकी थी। इससे उस युवक के मन में सौतेली माँ के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो गया था। जो अचेतन में दमित हो गया था। इस प्रकार सौतेली माँ के नाम को भूल जाने से उसके अचेतन में दमित घृणा के भाव का संकेत मिलता हैं। फ्रायड ने फ्रैंक नाम के एक व्यक्ति का उदाहरण दिया है। वह फ्रान्स का रहने वाला था। एक बार वह भारतवर्ष आया था और एक तालाब के निकट अपने प्रिय पालतू कुत्ता के साथ ढेला मारकर खेल रहा था। इस क्रम में कुत्ता तालाब में गिर गया लेकिन तब भी फ्रैंक ढेला फेंक- फेंक कर कुत्ता के साथ खेलता रहा। अन्ततः वह कुत्ता तालाब में गिरकर मर गया। इस दुःखद घटना का फ्रैंक के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप वह अपने शहर के एक सुप्रसिद्ध बाजार का नाम, जिसका नाम पौंड था, भूल गया। उसे अपनी इस भूल का ज्ञान उस समय हुआ जब उसके एक दोस्त ने कुछ जरूरत की चीजों को खरीदने हेतु उपर्युक्त बाजार के बारे में पूछा। फ्रैंक उस बाजार से अच्छी तरह परिचित था, फिर भी, जब उसे उस जगह का नाम याद नहीं हुआ तो उसे इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। यहाँ उसे पौंड नाम के जगह का नाम भूल जाने का कारण तालाब जिसे अंग्रेजी में पौंड कहते हैं, के साथ सम्बन्धित उपर्युक्त दुःखद या अप्रिय घटना थी जिसके फलस्वरूप वह शब्द अचेतन में दमित हो गया था।

हम अपने दैनिक जीवन में इसी तरह की अनेक बातों को भूलते रहते हैं, जैसे पत्र डाकखाने में डालना भूलना, किसी से ली गई वस्तु को लौटाना भूलना, किसी की चीज को सुरक्षित रखकर ढूँढ नहीं सकना, अपने वायदों को भूल जाना आदि बातों के पीछे अचेतन में दमित अतृप्त इच्छाएँ काम करती हैं।

इस तरह, उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि नामों को भूलने के पीछे व्यक्ति का कोई-न-कोई उद्देश्य निहित रहता है जो उसकी अतृप्त आक्रामक एवं कामुक इच्छाएँ, दुःखद या अप्रिय घटनाओं के अनुभव, घृणा के भाव इत्यादि का संकेत करते हैं। व्यक्ति इन अप्रिय एवं दुःखद घटनाओं के कारण उत्पन्न मानसिक संघर्षो के तनाव से मुक्ति पाने हेतु इन्हें अचेतन में दमित करता है।

अस्तु, किसी महत्वपूर्ण विषय, स्थान, तिथि, वस्तु इत्यादि के नामों का भूलना दैनिक जीवन की मनोविकृतियाँ हैं।

7.4.2 बोलने की भूलें -

बोलने की भूल से तात्पर्य है कि हम बोलना कुछ चाहें और बोलें और कुछ। दैनिक जीवन में बोलने में प्रायः ऐसी भी भूलें हो जाया करती हैं। कभी-कभी बोलने में हम ऐसी बातें बोल जाते हैं जिसके लिए हम चेतन रूप से तैयार नहीं रहते। ऐसी गलतियों पर हमें स्वयं आश्चर्य होता है। किन्तु हमारे दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों की ये सामान्य घटनाएं होती हैं। इस सम्बन्ध में मेरिंगर और मेयर ने बतलाया है कि बोलने की भूलें प्रायः शब्दों की ध्वनियों में समानता के कारण होती है। लेकिन फ्रायड ने इस तरह की गलतियों को भी अचेतन से प्रभावित माना है। फ्रायड के अनुसार इस तरह की गलतियाँ भी व्यक्ति के अचेतन मन में दमित इच्छाओं को व्यक्त करती हैं। इस सम्बन्ध में ब्राउन ने अपने एक मित्र का उदाहरण दिया है। ब्राउन के एक मित्र को अपने ऊपर काफी गर्व था। वह अपने को अन्य मित्रों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ समझता था तथा दूसरों को उतना महत्व नहीं देता था। एक बार उसे वैज्ञानिकों की एक सभा में अपने एक मित्र के लेख पर बधाई देनी थी। सामान्य रूप से उसे कहना था- ''क्या मैं इस महान् लेख पर अपना साधारण विचार प्रकट कर सकता हूँ?'' इसी तरह फ्रायड ने एक युवा चिकित्सक ने एक बार किसी सभी मैं डॉ0 विर्कोव के प्रति सम्मान प्रकट करने के क्रम में अपने नाम की जगह अपने को डॉ0 विर्कोव कहकर संबोधित किया। जब उपस्थित लोगों ने उससे यह जानना चाहा कि क्या उसका भी नाम विर्कोव है, तो तुरन्त ही उसे अपनी गलती का अनुभव हुआ। फ्रायड ने इस गलती की व्याख्या करते हुए कहा कि वस्तुतः वह युवा चिकित्सक अपने को डॉ0 विर्कोव समक्ष सिद्ध करना चाहता था और उसकी यही इच्छा बोलने की त्रुटि कारण थी। वह युवा चिकित्सक चूँकि अपने को डॉ0 विर्कोव के समकक्ष समझता था, इसीलिए वह स्वयं को अचेतन रूप से डॉ0 विर्कोव कहकर संबोधित किया था। इस सिलसिले में फ्रायड ने अपने एक आलोचक का भी दृष्टान्त दिया है। उनका एक आलोचक उन्हें हमेशा नीचा दिखाने की इच्छा रखता

था जिसके फलस्वरूप वह जब कभी भी फ्रायड के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता था प्रायः वह अपना ही नाम बोलता था। जैसे कभी वह कहता 'जैसा कि आप सभी जानते हैं, ब्रियुअर और हमने इस तथ्य पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है' जबकि वह कहना चाहता था कि जैसा कि आप सभी जानते हैं, ब्रियुअर और फ्रायड ने इस तथ्य पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है'। इस तरह अचेतन में फ्रायड को नीचा दिखाने की दमित इच्छा या मनोवृत्ति के कारण आलोचक के बोलने में त्रुटि हुई।

ऊपर दिए गए उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि विभिन्न नामों के उच्चारण करने में ध्वनियों की समानता नहीं रहने पर भी बोलने की भूलें होती हैं। अतः मेरिंगर ने ऐसी गलतियों के जो करण बतलाये हैं वे सही नहीं हैं। वस्तुतः ये भूलें भी अचेतन रूप से दमित अतृप्त इच्छाओं, घृणा या द्वेष की भावना अथवा अप्रिय अनुभवों के सांकितिक प्रतीक हैं। हमारे दैनिक जीवन में भी इस तरह की गलतियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। एक व्यक्ति पड़ोस के एक घर में मृत्यु का समाचार सुनकर परिवार वालों को सहानुभूति प्रकट करने गया और कहा- ''इनकी मृत्यु से मुझे बहुत खुशी है'' जबकि वह कहना चाहता था- ''इनकी मृत्यु से मैं बहुत दुखी हूँ।'' इसी प्रकार एक युवक 'रीता' नाम की एक सहपाठिनी से मिलने गया। उसने उस लड़की की माँ से कहा- मैं 'रति' से मिलना चाहता हूँ। वस्तुतः वह युवक 'रीता' से प्रेम करता था तथा 'काम-इच्छा' की पूर्ति करना चाहता था। उसकी यह इच्छा 'रीता' की जगह 'रति' शब्द का उच्चारण द्वारा प्रकट हुई। एक बार एक 'नेता' को किसी सभी का उद्घाटन करने हेतु आमंत्रित किया गया। उक्त नेता सभी की कार्यवाही प्रारम्भ करने की घोषणा करने हेतु जब उठे तो उन्होंने कहा-'सज्जनों, मैं घोषणा करता हूँ कि 'कोरम' पूरा है और अब मैं सभी की कार्यवाही बंद करता हूँ।'' नेताजी को बोलना था- ''सज्जनों मैं घोषणा करता हूँ कि 'कोरम' पूरा है, और अब मैं सभी की कार्यवाही प्रारम्भ करता हूँ।'' नेताजी के भाषण की यह गलती वास्तव मेंइसलिए हुई कि वे इस सभा को नहीं होने देना चाहते थे। उनकी दृष्टि में इस सभी का कोई औचित्य नहीं था और न इस सभी से कोई सार्थक उद्देश्य ही पूरा हो सकता था। अतः उन्होंने इस सभी की कार्यवाही प्रारम्भ करने के बजाए बंद करने की घोषणा की।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दैनिक जीवन में बोलने की गलतियाँ अचेतन की इच्छाओं के संकेत होते हैं और वे विकृत मानसिकता के लक्षणों के रूप में प्रकट होते हैं।

7.4.3 लिखने की भूलें -

बोलने की गलती की तरह 'लिखने की गलती' भी हमारे सामान्य दैनिक जीवन की आम बात है। इस तरह की गलतियों से भी व्यक्ति के मनोविकारों का पता चलता है। प्रायः यह देखा जाता है कि हम लिखना कुछ चाहते हैं और लिख कुछ देते हैं। वस्तुतः इस प्रकार की गलती भी हमारे अचेतन में दमित अतृप्त इच्छाओं के प्रतीक या संकेत होते हैं। ऐसी गलतियों में किसी महत्वपूर्ण शब्द का छूअ जाना, अधिक शब्द लिख देना या सही शब्द के बदले कोई अन्य शब्द लिखना, बाद के शब्दों को पहले लिखना आदि गलतियों की भी गणना की जाती है। साधारणतः इन गलतियों का

कारण भाषा ज्ञान का अभाव या लिखते समय ध्यान का बँटना आदि समझा जाता है। लेकिन फ्रायड ने इस तरह की कुछ गलतियों का विश्लेषण करके यह सिद्ध किया है कि ये गलतियाँ अचेतन की प्रवृत्तियों के कारण होती हैं। ब्राउन ने अपनी पुस्तक में अपने एक मित्र का उदाहरण दिया है। उसके मित्र को इंग्लैंड जाने की इच्छा थी, परन्तु कुछ कारणवश उसे शिकागो जाना आवश्यक हो गया। उसने शिकागो के अपने पूर्व परिचित मित्र को अपने आने की सूचना देने हेतु पत्र लिखा कि वह शीघ्र ही उससे मिलने पहुँच रहा है। पत्र को लिफाफा में डालकर उसने पता लिखने में एक भूल कर दी। उसने पता इस प्रकार लिखा- स्पष्ट है कि इंग्लैंड जाने की उसकी इच्छा शिकागो में रहने वाले मित्र को भेजे जाने वाले लिफाफे पर गलत पता लिखने की भूल में प्रकट हुई है।

इसी तरह, एक नर्स को किसी युवा डॉक्टर से प्रेम हो गया। उसने डॉक्टर को एक पत्र लिखा जिसमें डॉक्टर की जगह 'डियर'' शब्द का प्रयोग किया। एक बार डॉ0 कार्ल मेनिंगर अपने पेशा के कार्य से एक व्यक्ति से मिलने गये। परन्तु उस व्यक्ति ने इनके प्रति कोई विशेष रूचि नहीं दिखलाई, मात्र सामान्य आतिथ्य ही किया। मेनिंगर ने वापस आने के बाद उस व्यक्ति को अपना धन्यवाद पत्र लिखा और जब इसको दुबारा पड़ा तो देखा कि उन्होंने एक भयंकर गलती कर दी हैं। उन्होंने अपने पत्र में लिखा था- मैं आपको धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ क्योंकि हमारे सम्मान में आपने कोई शिष्टता नहीं दिखलाई'। लेकिन वे लिखना चाहते थे- 'मैं आपको धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ क्योंकि हमारे सम्मान में आपने काफी शिष्टता दिखलाई'।

यहाँ स्पष्ट है कि डॉ0 मेनिंगर उस व्यक्ति के उदासीन शिष्टाचार के प्रति आभार प्रकट करने की इच्छा नहीं रखते थे, इसीलिए अचेतन रूप से उन्होंने ''काफी शिष्टता'' की जगह कोई शिष्टता नहीं लिख दिया था।

अनिता और रंजना नाम की दो सहेलियाँ थीं। अनिता का विवाह उसके एक सहपाठी के साथ हुई थी। रंजना को इस बात की जानकारी थी। संयोग से जिस युवक के साथ अनिता का विवाह हुआ था, रंजना उससे प्रेम करती थी, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। अनिता विवाह के कुछ दिनों बाद रंजना ने अनिता को एक पत्र लिखा परन्तु उस पत्र में उसके पति के बारे में कोई जिक्र नहीं किया। साथ ही, उसने अनिता को विवाह से पूर्व के संबोधन का ही प्रयोग किया। उसने 'सौभाग्यवती अनिता' की जगह 'सुश्री अनिता कुमारी' लिखा था। यहाँ रंजना द्वारा अनिता के पति के बारे में कुछ नहीं लिखने और अनिता को 'कुमारी' जिसकी अभिव्यक्ति इस सामान्य भूल द्वारा हुई थी।

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि लिखने की भूलें व्यक्ति के अचेतन में दमित मनोविकारों के संकेत होते हैं।

7.4.4 छपाई की भूलें -

छपाई की भूलों की शिकायत बहुधा देखी जाती है। इस तरह की भूलें पुस्तकों, समाचार पत्रों एवं अन्य विज्ञापनों के पर्चो इत्यादि में प्रायः मिलती रहती हैं। अनेक बार इस तरह की गलतियों का सुधार भी देखने को मिलता है। लेकिन इस सुधार में भी गलती हो जाती है। इस तरह की गलतियों के लिए प्रूफरीडर लेखक, कम्पोजिटर, सम्पादक इत्यादि सभी जिम्मेदार होते हैं। इसीलिए किन्हीं एक के मनोविकार के आधार पर इन भूलों के कारणों की व्याख्या नहीं की जा सकती। लेकिन, इतना जरूर है कि ऐसी गलतियों द्वारा भी अचेतन में दमित प्रेम और घृणा के अतृप्त भावों या विचारों के संकेत मिलते हैं। एक बार 'सोसल डेमोक्रेटिक' अखबार में किसी उत्सव का समाचार छपा। इस समाचार में ये शब्द छपे थे-

''उपस्थित व्यक्तियों में हिज हाइनेस क्लाउन प्रिंस भी थे।'' क्लाउन का अर्थ अंग्रेजी में 'विदूषक' होता है। अगले दिन इस गलती को सुधार कर छापा गया- इस वाक्य को इस तरह पढ़ें- 'दि क्रो प्रिन्स' भी उपस्थित थे। यहाँ फिर एक गलती हो गई- 'क्राउन प्रिंस की जगह 'क्रो प्रिंस' (कौआ राज कुमार) छप गया। इस दुहरायी गयी गलती से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेस के प्रायः सभी सम्बन्धित कर्मचारी उस 'क्राउन पिंस' से घृणा करते थे। इसीलिए बार-बार अपमान जनक संबोधनों को प्रेस के किसी कर्मचारी द्वारा सुधारा न जा सका।

इसी तरह एक युद्ध संवाददाता किसी प्रसिद्ध सेनापति से मिला। उस सेनापति की कमजोरियाँ बहुत ही प्रसिद्ध थीं। उससे मिलने के बाद उसके बारे में एक विवरण 'बैटल-स्केयर्ड वेटरन' छप गया। अगले दिन क्षमा याचना के साथ गलती का सुधार किया गया और यह छपा 'बैटल स्केयर्ड वेंटरन' की जगह 'बौटल स्कार्ड वेटरन'। यहाँ 'स्केयर्ड' को सुधार कर 'स्कार्ड' ठीक कर दिया गया लेकिन 'बैटल की जगह 'बौटल' छप गया। यहाँ भी छपने की गलती दुहरायी गयी। ऐसी गलतियों को हम 'प्रेस की भूल' अर्थात् छापने वालों की असावधानी कहते हैं। परन्तु वस्तुतः इन गलतियों द्वारा व्यक्ति के अचेतन में दमित इच्छाओं के संकेत मिलते हैं।

अतः, छपाई की भूलों में प्रायः उलटा समाचार या अप्रिय सम्बोधन की गलती होती है। इन गलतियों की व्याख्या भी मनोविकृति के रूप में दी जा सकती है जैसा कि ऊपर के उदाहरणों के संदर्भ में दी गई है।

7.4.5 पहचानने की भूल -

हमारे दैनिक जीवन की अनेक गलतियों में किसी व्यक्ति, स्थान या वस्तु, की सही पहचान करने में होने वाली गलतियाँ भी शामिल हैं। अनेक अवसरों पर हम किसी अपरिचित व्यक्ति को परिचित मित्र समझ बैठते हैं। ऐसी गलती प्रायः सबों से हुआ करती है। साधारणतः ऐसी गलतियों का कोई स्पष्ट कारण नहीं दीखता। लेकिन, फ्रायड ने इन गलतियों के पीछे भी व्यक्ति की अचेतन

इच्छाओं का हाथ बतलाया है। 'पहचानने की भूलें मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के कारण होती है।' जब कोई व्यक्ति किसी प्रिय वस्तु या अपने प्रेम पात्र को देखना चाहता है, तो वह अपरिचित को अपना प्रेमपात्र समझ लेता है। इस प्रकार की भूलों से प्रेमपात्र से मिलने की इच्छा पूर्ण होती है।

पहचानने की भूल एक और तरह की होती है। कभी-कभी किसी वस्तु या व्यक्ति के उपस्थित रहने पर भी हम उसे नहीं देख पाते। ऐसा इसलिए होता है कि हम उसे नहीं देखना चाहते। उसके प्रति अचेतन में घृणा या आक्रामक भाव दमित होते हैं। जैसे किसी ऑफिस के एक कर्मचारी को अपने अधिकारी के पास कोई जरूरी फाइल उपस्थित करनी थी। उस फाइल में रखे गये कागजों में एक जरूरी कागज नहीं मिल रहा था। वह कर्मचारी भयभीत हो गया। इधर बार-बार अधिकारी की ओर से उक्त फाइल की माँग हो रही थी। अन्ततः वह भयभीत कर्मचारी फाइल के साथ उस अधिकारी के पास गया। वहाँ पहले से ही कई लोग उपस्थित थे। कर्मचारी ने उपस्थित लोगों में से एक से अधिकारी के बारे में पूछा-'साहब कहीं गये हैं क्या'? इस पर अधिकारी चकित हुआ। शीघ्र ही उस कर्मचारी को अपनी भूल का एहसास हुआ और उसने क्षमा याचना की। स्पष्ट है कि फाइल में जरूरी कागजात नहीं रहने के कारण वह अपने अधिकारी से मिलना नहीं चाहता था, इसीलिए उपस्थित अधिकारी को पहचानने में उस कर्मचारी ने भूल की थी।

इसी तरह, सड़क पर जाते हुए किसी अपरिचित को अपना परिचित मित्र समझना, अपनी बगल से किसी परिचित मित्र को गुजरते हुए नहीं देख सकना, समाचार पत्रों में किसी समाचार के रहते हुए भी उसे नहीं देख पाना इत्यादि गलतियों के पीछे अचेतन में दमित इच्छाएँ सक्रिय रहती हैं।

7.4.6 वस्तुओं को इधर-उधर रखना -

बहुधा हम वस्तुओं को इधर-उधर रख देते हैं, और समय पर जब उन्हें ढूँढते हैं तो वह चीज नहीं मिलती। यह भी हमारे दैनिक जीवन की आमतौर से होने वाली भूल है। जिसकी तह में अचेतन की दमित अतृप्त इच्छाएं होती हैं। फ्रायड ने इस सम्बन्ध में यह बतलाया है कि वस्तुओं को बे-जगह रख देने से यह संकेत मिलता है कि व्यक्ति में उस वस्तु को कुछ समय या सदा के लिए हटा देने की प्रवृत्ति थी। फ्रायड ने इसका एक उदाहरण दिया है-एक नौजवान को अपनी पत्नी से मनमुटाव था। नौजवान पत्नी को बिलकुल प्रेमहीन समझता था। हालाँकि, वह उसके कतिपय श्रेष्ठ गुणों की कद्र करता था फिर भी, दोनों बिना प्रेम के साथ रहते थे। एक दिन उसकी पत्नी बाजार से लौटते समय अपने पति की पसन्द की एक पुस्तक खरीद कर लाई। पति ने यह अनुभव किया कि उसकी पत्नी ने थोड़ा सा उसका ध्यान रखा है, इसके लिए उसने पत्नी को धन्यवाद दिया और पुस्तक को पढ़ने का वचन देकर इसे अपनी पुस्तकों की आलमारी में रख दिया। उसके बाद वह पुस्तक कभी उसके हाथ न आयी। महीनों गुजर गये और अनेक बार उस पुस्तक को ढूँढने की कोशिशें की लेकिन सब बेकार गई। लगभग 6 महीने बाद उसकी पत्नी अपनी सास की सेवा करने घर चली गई। उसकी सास बहुत गंभीर रूप से बीमार थी, अतः उस नौजवान की पत्नी को अपने अच्छे गुणों को दिखाने का एक

सुन्दर अवसर मिला था। एक दिन शाम को जब वह नौजवान अपनी पत्नी के प्रति उत्साह और कृतज्ञता से भरा हुआ घर आया और अपनी मेज के पास पहुँच कर योंही (बिना किसी निश्चित प्रयोजन के) मेज का दराज खोला तो अचानक उसकी खोई हुई वह पुस्तक दीख पड़ी। इसी पुस्तक को वह खोज-खोजकर इसके पहले कई बार निराश हो चुका था। यहाँ वह नवयुवक अपनी पत्नी के प्रति निषेधात्मक मनोवृत्ति रखता था। इसलिए पत्नी द्वारा उसकी पसंद की पुस्तक को देने पर अनजाने में उसने ऐसी जगह रख दी थी जिसे महीनों वह नहीं ढूंढ सका। लेकिन जब उसकी पत्नी अपनी सास यानी युवक की माँ की सेवा करने चली गयी तो उसके पति को पत्नी के श्रेष्ठ गुणों एवं कर्तव्यपरायणता का बोध हुआ और उसकी मनोवृत्ति धनात्मक रूप में बदल गई। फलतः उसे वह पुस्तक अपने आप मिल गई। इस प्रकार अचेतन की मनोवृत्तियों के कारण व्यक्ति चीजों को कहीं भी रख देता है।

मनोवैज्ञानिक 'जोन्स' ने भी अपना एक उदाहरण दिया है। 'जोन्स' जब कभी खाँसी से परेशान होते थे, वह अपनी 'स्मोकिंग पाइप' को ऐसी जगह रख देते थे कि खोजने पर वह नहीं मिलती थी। लेकिन जैसे ही खाँसी कम होती थी, वह 'पाइप' शीघ्र ही मिल जाती थी। इसका कारण यह था कि खाँसी का प्रकोप बढ़ने पर 'जोन्स' को सिगरेट 'नहीं पीने की इच्छा' होती थी। इसीलिए वे 'पाइप' को अचेतन रूप से बे जगह रख देते थे और जब खाँसी कम होती थी तो सिगरेट पीने की इच्छा पुनः जागृत होती थी और तब वह बिना प्रयास के ही मिल जाती थी।

इसी प्रकार चाबियों का गुच्छा भूल जाना, कोई महत्वपूर्ण कागज इधर-उधर रख देना, रूमाल खो देना इत्यादि दैनिक जीवन की सामान्य भूलें भी हमारे मनोविकारों की संकेतक होती है जिनका सम्बन्ध अचेतन की प्रवृत्तियों के साथ रहता है।

7.4.7 अनजाने में की गई क्रियाएं -

अनेक अवसरों पर हम चेतन रूप से जो करना चाहते हैं, उसके बदले अचेतन रूप से कोई दूसरी क्रिया कर डालने की गलतियाँ कर बैठते हैं। जैसे-किसी को 10 रूपये देना चाहते हैं और भूल से 100 रूपये का नोट दे देते हैं। कोई वस्तु किसी 'क' नाम के व्यक्ति को देने का विचार करते हैं लेकिन उसे 'ख' नाम के व्यक्ति को दे देते हैं। साधारणतः इन गलतियों का ज्ञान होने पर हमें इनका कोई प्रयोजन अथवा स्पष्ट अर्थ मालूम नहीं पड़ता। परन्तु कई बार ऐसा देखा गया है कि इस प्रकार की गलतियों का विश्लेषण करने पर व्यक्ति के 'मन' की प्रवृत्तियों के संकेत मिलते हैं। 'जोन्स' ने इसके उदाहरण में अपनी एक आप बीती घटना का उल्लेख किया है। 'जोन्स' ने एक बार सिगरेट का एक नया डब्बा खरीदा। पहले वाले डब्बा में भी कुछ सिगरेट बचे थे। लेकिन, वे नया सिगरेट पीना चाहते थे, फिर भी, चूँकि पहला वाला सिगरेट व्यर्थ हो जाता, इसलिए पुराना डब्बा का सिगरेट पीने का निश्चय कर वे पुस्तक पढ़ने लगे। पुस्तक पढ़ने में तल्लीन रहने के कारण उनका यह निश्चय दमित हो गया और उन्होंने भूल से नये डब्बा का सिगरेट पी लिया। स्पष्ट है कि 'जोन्स' चूंकि नया सिगरेट

पीना चाहते थे, परन्तु 'मितव्ययिता' का विचार करते हुए पुराना सिगरेट का निश्चय कर वे पुस्तक में तल्लीन हो गये। इससे उनका निश्चय दमित हो गया और उन्होंने अचेतन रूप से नया सिगरेट ही पी लिया।

मनोवैज्ञानिक 'ब्रिल' ने भी एक उदाहरण देकर ये बतलाया कि कभी-कभी हमारी इन गलतियों के खतरनाक परिणाम भी हो सकते हैं और इनके पीछे अचेतन की भूमिका प्रधान रहती है। एक डाक्टर से इसी तरह की खतरनाक भूल हुई। उस डाक्टर के मन में अपने चाचा के प्रति द्वेष भावना थी। एक बार जब उसका चाचा बीमार हुआ तो उस डाक्टर ने भूल से 'डिजिटालिस' नाम की दवा के बदले 'हायोसिन' दे दी जिससे उसके बीमार चाचा की मृत्यु हो गई।

हम अपने दैनिक जीवन में ऐसी अनेक गलतियाँ करते रहते है। जैसे हम अपने किसी मित्र के यहां जाते हैं और अपना छाता, चश्मा, रूमाल, कलम आदि अनजाने में छोड़कर चले आते हैं। इन गलतियों के पीछे उन वस्तुओं को नहीं रखने की इच्छा अथवा अपने मित्र को उन वस्तुओं को देने की इच्छा सक्रिय रहती है जो अचेतन रूप से हमें ऐसी भूलों के लिए प्रेरित करती हैं। ऐसी गलतियाँ संयोगवश नहीं होती। इसी तरह अनजाने में किसी की चीज को उठाकर चल देने या किसी चीज को भुला देने की सामान्य भूलों द्वारा हमारे अचेतन में दमित विचारों या भावनाओं के संकेत मिलते हैं।

7.4.8 सांकेतिक क्रियाएं -

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपने सामान्य दैनिक-जीवन में कुछ ऐसी क्रियाएँ या हरकतें करता है जो प्रत्यक्ष रूप में निरर्थक प्रतीत होती हैं। इन क्रियाओं को करने वाला भी इन्हें निरर्थक और संयोग ही मानता है। परन्तु 'फ्रायड' ने इन क्रियाओं को भी सार्थक बतलाया है। 'फ्रायड' के अनुसार ये क्रियाएँ सार्थक होती हैं क्योंकि इनसे मानसिक संघर्ष या अचेतन में दमित इच्छाओं का पता चलता है। उदाहरण के लिए बैठे-बैठे पैर हिलाने, दांत से नाखून चबाने, चाबी के गुच्छा को नचाने, अँगूठी को बार-बार अन्दर-बाहर करने, लेक्चर देते समय किसी तकिया कलाम शब्द को बार-बार दुहराने आदि क्रियाएँ अचेतन के संघर्षो और मनोभावों के संकेत होते हैं। एक बार फ्रायड को चौराहे पर खड़ी एक महिला से भेंट हुई। यह खड़े-खड़े किसी दूकान की ओर टकटकी लगाये देख रही थी और दाहिने हाथ की अंगुली में पहनी गई अँगूठी को बार-बार आगे-पीछे कर रही थी। 'फ्रायड' ने जब कारण जानना चाहा तो वह कोई कारण न बता सकी और बोली-'बस यों ही। हमें तो इसका पता ही नहीं चला। मैं तो यहां अपने पति की प्रतीक्षा में खड़ी हूँ। वे सामने वाली दूकान में कुछ खरीद रहे हैं।' किन्तु 'फ्रायड' उस महिला के इस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने उस महिला से अपना परिचय बढ़ाया। कुछ दिनों में दोनों में मित्रता स्थापित हो गई। इसके बाद उस महिला का मनोविश्लेषण किया गया। तब यह पता चला-वह महिला कुछ वैयक्तिक कारणों से अपने पति से घृणा करने लगी थी। इसलिए वह अपने पति को तलाक देना चाहती थी। परन्तु, सामाजिक और नैतिक रूप से ऐसा करना उचित नहीं था। इसलिए वह तलाक देने में अपने को असमर्थ पा रही थी। इसलिए पति से चौराहे पर

बिछुड़ कर चिन्ता की स्थिति में खड़ा रहना चार वैकल्पिक रास्तों के संकेत हैं जहाँ वह महिला अपने पति को छोड़कर किधर जाये-इस दुविधा में सोच रही है। अँगुली की अँगूठी को बार-बार आगे की ओर घिसकाकर निकालने की क्रिया द्वारा पति का परित्याग करने और पुनः उसे अन्दर कर पहनने की क्रिया द्वारा नैतिक एवं सामाजिक बंधनों के कारण पति को परित्याग नहीं करने के विचारों के संकेत हैं। अतः यहां महिला के अचेतन मन में व्याप्त इन्हीं संघर्षो की अभिव्यक्ति चौराहे पर खड़ी होकर अंगूठी को आगे-पीछे करने की क्रिया द्वारा हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी सामान्य जीवन की विभिन्न गलतियाँ या भूलें निरर्थक और बिना प्रयोजन के नहीं होतीं। इन भूलों द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन की अतृप्त इच्छाओं, विचारों, या मनोविकारों की सांकेतिक अभिव्यक्ति होती है। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसी भूलें महत्वपूर्ण और सार्थक होती हैं। खासकर मानसिक संघर्षो की अभिव्यक्ति का यह एक सहज या आसान तरीका होता है। इसलिए मानसिक रोगियों के अचेतन विषय और मानसिक संघर्ष का विश्लेषण कर उनके मानसिक रोगों के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने में भी सहायक हैं।

दैनिक जीवन में घटित सामान्य भूलों के बारे में जो मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या दी गई है, वह साधारणतः बेंतुकी और अनर्गल मालूम पड़ती है। कुछ लोगों का कहना है कि 'फ्रायड' के विचार सार्वजनीन नहीं हैं। इस तरह की गलतियों की व्याख्या किसी व्यक्ति विशेष के लिए सही हो सकती है, लेकिन वही व्याख्या दूसरों के साथ लागू नहीं होती। इसलिए यह वैज्ञानिक नहीं है।

परन्तु, यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो यह बात बिल्कुल सत्य मालूम पड़ती है कि दैनिक जीवन के सामान्य क्रिया-कलापों में हम अनेक गलतियाँ करते रहते हैं। इतना ही नहीं, जिस गलती को सुधारने की कोशिश जितना अधिक करते हैं, वह गलती उतनी ही अधिक होती है, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली इन गलतियों का सम्बन्ध निश्चित रूप में व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में अनुभवों के साथ जुड़े होते हैं। मानसिक रोगियों के मनोविश्लेषण करने पर भी इन तथ्यों के पक्ष में प्रमाण मिले हैं। अतः इन गलतियों के मनोवैज्ञानिक महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

7.5 सारांश

फ्रायड ने अचेतन के अस्तित्व के पक्ष में व्यक्ति के दैनिक जीवन में होने वाली भूलों या विकृतियों को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया।

फ्रायड का मत है कि व्यक्ति के सामान्य जीवन में होने वाली इन साधारण गलतियों द्वारा अचेतन में दमित विचारों या अतृप्त इच्छाओं की चेतन अभिव्यक्ति होती है।

दैनिक जीवन की कुछ प्रमुख विकृतियाँ निम्नलिखित हैं-

नामों का भूलना, बोलने की भूलें, लिखने की भूलें, छपाई की भूलें, पहचानने की भूल, वस्तुओं को इधर-उधर रखने की भूल, अनजाने में की गई क्रियाएं, सांकेतिक क्रियाएं वगैरह।

7.6 शब्दावली

- **अचेतन:** मन का वह भाग जिसमें अनुभव किए हुए ऐसे विषय या सामग्रियाँ होती हैं जिन्हें व्यक्ति इच्छानुसार याद नहीं कर पाता है।

7.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अचेतन की खोज किसने की?
2. ''साइकोपैथोलॉजी ऑफ एवरीडे लाइफ'' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

उत्तर: 1. फ्रायड 2. फ्रायड

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- असामान्य मनोविज्ञान-नगीना प्रसाद एवं मुहम्मद सुलैमान,
- असामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन
- मनोविकृति एवं उपचार- जी.डी. रस्तोगी

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दैनिक जीवन की कुछ भूलों का उदाहरण देते हुए अचेतन की भूमिका पर प्रकाश डालें।
2. ''दैनिक जीवन की छोटी-मोटी गलतियाँ वस्तुतः अनायास या संयोगवश नहीं होतीं, अपितु वे उद्देश्यपूर्ण होती हैं।'' विवेचना करें।
3. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-
   i. नामों का भूलना
   ii. को इधर-उधर रखने की भूल
   iii. लिखने की भूलें

ईकाई–8 मनोरचनाओं की परिभाषा व स्वरूप

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मनोरचनाओं की परिभाषा एवं स्वरूप
8.4 मनोरचनाओं के महत्वपूर्ण कार्य
8.5 मनोरचनाओं के विभिन्न रूप
8.6 प्रमुख मनोरचनाएँ
8.7 गौण मनोरचनाएँ
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

यह मनोव्याधि विज्ञान एवं मनोरचनाओं से सम्बन्धित प्रथम इकाई है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह सामान्य हो या असामान्य, सभी को जीवन में किसी न किसी प्रकार के मानसिक तनाव या संघर्ष का सामना तो करना ही पड़ता है। मानसिक संघर्ष से तात्पर्य एक ऐसी स्थिति से है जो परस्पर दो या दो से अधिक विरोधी या एक दूसरे से असंगत प्रवृत्तियाँ एक दूसरे की सन्तुष्टि में बाधा डालती है जिससे एक तरह का मानसिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

मनसिक संघर्ष की स्थितियों से निबटने के लिए व्यक्ति जाने-अनजाने में अनेक प्रकार की मनोरचनाओं या रक्षायुक्तियों का उपयोग करता है, जिससे मानसिक संघर्ष समाप्त हो सकें।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप मनोरचनाओं से सम्बिन्धित सभी पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें-

- मनोरचनाओं की परिभाषा

- मनोरचनाओं का स्वरूप
- मनोरचनाओं के महत्वपूर्ण कार्य
- मनोरचनाओं के विभिनन रूप
- प्रमुख व गौण मनोरचनाएं

8.3 मनोरचनाओं की परिभाषा एवं स्वरूप

सभी मानव प्राणियों को अपने जीवनकाल में निरन्तर अनेक प्रकार की सामान्य व असामान्य परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसी विफलता व अन्तर्द्धन्द्ध के उत्पन्न होने से व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है, इस चिन्तायुक्त तनावपूर्ण स्थिति का जब व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से न तो सामना कर पाता है और न ही समाधान तब वह विभिनन प्रकार के अप्रत्यक्ष सुरक्षात्मक ढंग अपनाता है। मनोरचनाए अहं की रक्षा हेतू अचेतन रूप से किये गये सुरक्षात्मक प्रयास है। यह सुरक्षात्मक प्रयास व्यक्ति को बाह्य व आन्तरिक भय दोनों से सुरक्षा प्रदान करते है व तात्कालिक राहत पहुँचाते है। जैसा कि सिमण्ड (Symond) का विचार है-

"Mechanisms are not only defense against anxiety but also indicate methods by which the impulses giving rise to anxiety are redirected."

प्रो-ब्राउन ने "मानसिक मनोरचनाओं को चेतन तथा अचेतन प्रतिक्रिया माना है जो व्यक्ति के अन्तर्द्धन्द्ध को या तो कम कर देता है अथवा समाप्त कर देता है।''

उपरोक्त तथ्यों से यह तो स्पष्ट है कि मनोरचनाओं की प्रयुक्ति से व्यक्ति आत्म सन्तुष्ट हो जाता है। व्यक्ति के तनाव व प्रतिबल भी हल्के हो जाते है। किसी परिस्थिति विशेष से उत्पन्न तनावों से वह मुक्त हो जाता है क्योंकि जब व्यक्ति अन्तर्द्धन्द्ध व कुण्ठाओं से ग्रसित होता है तो व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है, व्यक्ति का अहं असुरक्षित होकर आश्रय ढूढंने लगता है और तब प्रारम्भ होती है मनोरचनाओं रूपी सुरक्षात्मक प्रवृत्ति जो व्यक्ति के अहं को विघटित होने से बचा लेती है, यही मनोरचनाएँ व्यक्ति को इन चिन्ताओं से मुक्ति दिलाती है।

पेज(Page)) के अनुसार- "Mental Mechanism are good solutions to conflicts, frustration and inferiority………… Mental Mechanising have some protective, alleviating or escape value."

मनोरचनाएं असफलता से राहत पहुँचाती है, आन्तरिक सन्तुलन बनाये रखती है। यह व्यक्ति के अन्तर्द्धन्द्ध, निराशाओं तथा हीनता की भावनाओं से बचने का एक अच्छा समाधान है। इसमें सुरक्षात्मक पहलू भी है और पलायन भी। लगभग हर सामान्य कहे जाने वाले व्यक्ति के द्वारा मानसिक रूप से मनोरचनाओं का प्रयोग किया जाता है।

कोलमैन (Coleman, 1976) का विचार है कि “मनोरचनाएं वे प्रक्रियाए है जिनसे व्यक्ति के अन्दर (स्वंय के लिए) उपयुक्तता तथा योग्यता की भावना बनी रहती है।”

8.4 मनोरचनाओं के महत्वपूर्ण कार्य

सामान्य व्यक्ति के जीवन में समायोजन की दृष्टि से रक्षायुक्तियों का विशेष योगदान रहता है। इस सम्बन्ध में इसके महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित होते हैः

- रक्षायुक्तियों से व्यक्ति की समायोजन सम्बन्धी आवश्यकता की सरलतापूर्वक सन्तुष्टि होती है।
- इनसे व्यक्ति में कुष्ठाजनित तनाव, निराशा व असफलता की प्रबलता में विशेष रूप से कमी आती है।
- इनके व्यक्ति के विघटन की प्रक्रिया की कारगर रूप से रोकथाम होती है।
- इनसे व्यक्ति में दुश्चिन्ता प्रर्याप्त मात्रा में कम होती है।
- इनसे एक प्रकार से व्यक्ति के आत्म-सम्मान की रक्षा होती है।
- इनसे व्यक्ति में कुष्ठाओं के प्रति सहनशीलता की शक्ति में वृद्धि होती है।
- इनसे व्यक्तित्व की एकता व्यावहारिकतः अखण्डित अथवा समाकलित रहती है, तथा इनके कारण व्यक्तित्व की स्थाई संरचना के विद्याटित होने की आषंका प्रायः नहीं रहती।
- इनसे व्यक्ति के आत्म-सम्प्रत्यय (Self Concept) पर भी प्रायः प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ने पाता।
- इनके प्रभाव के कारण अधिकाशतः व्यक्तित्व के समायोजन तथा विकास की प्रक्रिया विशेष सीमाओं के अन्तर्गत सहजरूप ही सम्पन्न होती रहती है।
- इनकी समायोजी प्रक्रिया अप्रत्यक्षतः तथा अचेतन रूप से निर्धारित होती है, अतः व्यक्ति के लिए ऐसी क्रियायें एक प्रकार से प्रयास रहित रूप से स्वतः ही सम्पन्न होती रहती है।
- यह व्यक्ति के अहं की रक्षा करती है।
- व्यक्ति के समायोजन को तात्कालिक रूप से सरल बना देती है।

8.5 मनोरचनाओं के विभिन्न रूप

अलग-अलग व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उसी प्रकार से वह अचेतन अथवा अर्द्धचेतन स्तर पर भिन्न-भिन्न सुरक्षात्मक उपायों का प्रयोग करके समायोजन का प्रयास करते है। इसकी विषेशता यह है कि एक ही व्यक्ति विभिन्न मनोरचनाओं का प्रयोग कर सकता है। ब्राउन ने मानसिक रचनाओं को दो प्रमुख भागों में बाँटा है-

(अ) प्रमुख मनोरचनाएं (Major Mental Mechanism)

(ब) गौण मनोरचनाएं (Minor Mental Mechanism)

(अ) प्रमुख मनोरचनाएं :- यह वह मनोरचनाएं है जो स्वयं ही प्रमुख रूप से एक विषेश ढंग से व्यक्ति का अन्तर्द्धन्द्ध कम करती है।

(ख) गौण मनोरचनाएं :- गौण मनोरचनाओं का प्रयोग प्रमुख मनोरचनाओं के सहायक के रूप से प्रयुक्त होता है। यह स्वतन्त्र रूप से व्यक्ति के तनावों व अन्तर्द्धन्द्धों को कम करने की क्षमता नहीं रखती है।

प्रमुख व गौण मनोरचनाएँ निम्न होती है-

प्रमुख मनोरचनाएँ	गौण मनोरचनाएँ
दमन	आत्मीकरण
शमन	प्रक्षेपण
अन्तर्बाधा	अन्तःक्षेपण
प्रतिगमन	स्थानान्तरण
रूपान्तर	विस्थापन
उद्धतिकरण	क्षतिपूर्ति
युक्तिकरण	प्रत्याहार
प्रतिक्रिया निर्माण	कल्पना तरंग

उपरोक्त प्रमुख व गौण मनोरचनाओं का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से है।

8.6 प्रमुख मनोरचनाएँ

1. **दमन (Repression)-** जब व्यक्ति अन्तर्द्धन्द्ध की स्थिति में होता है तो वह अंश जो ईगो (अहं) व सुपरईगो (पराअहं) को सहनीय नहीं होता है, उसे वह अचेतन में धकेल देता है, यही प्रक्रिया दमन है। उदाहरण के लिये व्यक्ति में अनेक प्रकार के ऐसे आवेग व इच्छाएं होती है जिन्हें वह चेतन स्तर पर सामाजिक रूप से व्यक्त नहीं कर पाता है क्योंकि उसे यह डर होता है कि अभिव्यक्ति उसकी सामाजिक छवि एवं प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाएगी जो उसे असहनीय होगा। अतः वह इन्हे अचेतन में धकेल देता है।

पेज के अनुसार, "ऐसे विचारो या आवेगो का जो कष्टदायी व अनैतिक है, चेतन से ऐच्छिक रूप से बाहर कर देना ही दमन है।"

कोलमैन के अनुसार, "पीड़ादायक व भयावह विचारो व इच्छाओं को अपनी चेतना से अनजाने निकाल देने वाली सुरक्षात्मक प्रक्रिया ही दमन है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि हमारे दिन-प्रतिदिन की कोई भी घटना विशय-सामग्री का रूप लेकर दमित होकर हमारे अचेतन मन में जाकर निष्क्रिय नहीं होती बल्कि सक्रिय रहती है। दमित इच्छाएं बार-बार चेतन में आकर इच्छाओं की सन्तुस्टि करना चाहती है किन्तु अहम् तथा परमअहम् के प्रतिबन्धन होने के कारण दमित इच्छाओं का चेतन में आना बहुत कठिन हो जाता है।

पेज ने 'दमन' व 'शमन' को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है- जैसे किसी विद्यार्थी की अपनी लापरवाही से कोई दुर्घटना हो जाती है और वह उसके लिये उत्तरदायी ठहराया जाता है। वह बार-बार उस दुर्घटना की स्मृति से विचलित हो जाता है अतः वह जान-बूझकर इस दुर्घटना की कष्टकारी स्मृति से स्वंय को हटाने के लिये दूसरी बातों पर ध्यान देने का प्रयत्न करता है ताकि घटना को वह भूल जाए तो वह शमन की प्रक्रिया में है। इसके विपरति इस दुर्घटना की स्मृति स्वयं ही समाप्त हो जाती है जिससे यह विद्यार्थी चेतन स्तर पर इस घटना को याद करने में असमर्थ रहता है यही दमन प्रक्रिया है।

2. **शमन (Suppression)-** शमन के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी इच्छा से जानबूझकर किसी अप्रिय घटना या विचार को चेतन से हटा देता है जबकि दमन की प्रक्रिया में दुःखद व असामाजिक इच्छाओं का दमन कर दिया जाता है।

शमन की प्रक्रिया में किसी दुःखद घटना, विवाद, झगड़े या दुर्घटना को व्यक्ति जानते हुए अपनी चेतना से हटाता है। शमन की कुछ मुख्य परिभाषाए इस प्रकार है-

पेज के अनुसार- "चेतन से जानबूझकर कष्टदायक आवेगों एवं स्मृतियों को निष्काषित करना शमन कहलाता है।"

कोलमैन के अनुसार- "शमन व दमन में अन्तर यह है कि व्यक्ति चेतन स्तर पर अपने विचारो को मस्तिष्क से बाहर कर देता है और दूसरी बातों के बारे में सोचने लगता है यह मानसिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं होता है क्योंकि इसमें व्यक्ति जो कुछ भी करता है उसके प्रति उसे ज्ञान होता है।

पेज (Page)) ने शमन को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। जैसे किसी विद्यार्थी की अपनी लापरवाही से कोई दुर्घटना हो जाती है और वह उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है, वह बार-बार उस दुर्घटना की स्मृति से विचलित हो जाता है अतः वह जानबूझकर इस दुर्घटना की कष्टकारी स्मृति

से स्वंय को हटाने के लिये दूसरी बातो पर ध्यान देने का प्रयत्न करता है ताकि घटना को वह भूल जाए तो यह शमन की प्रक्रिया कहलाएगी।

3. **अन्तर्बाधा (Inhibition)-** अन्तर्बाधा या अवरोधन में अमान्य सामाजिक कार्यो को नहीं किया जाता है, किन्तु यह क्रिया चेतन स्तर पर होती है। अवरोधन वह सुरक्षात्मक उपाय है जिसमें एक भावना या इच्छा दूसरी भावना या इच्छा के उपस्थित होने के कारण विस्मृत हो जाती है। इस प्रकार अवरोधन के द्वारा दुःखद अप्रिय व अनैतिक इच्छाओं को भूलाया जा सकता है। इस रक्षात्मक उपाय द्वारा अन्तर्द्धन्द्ध को काफी हद तक हटाया जा सकता है।

ब्राउन (Brown) का विचार है कि "अवरोधक चेतन द्धन्द्ध के समाधान की प्रमुख रक्षा युक्ति है। परावर्तन, प्रतिगमन, उद्धातीकरण, प्रतिक्रिया व युक्तिकाण अचेतन के अन्तर्द्धन्द्ध के समाधान की प्रमुख रक्षा युक्तियाँ है।"

4. **प्रतिगमन (Regression)-** प्रतिगमन का तात्पर्य पीछे की और लौटने से है इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक अवस्था की (बाल्यावस्था) की ओर व्यक्तित्व का प्रतिगमन पाया जाता है।

Brown- "Regression is flight to childhood".

मार्गन व फिटर- "प्रतिगमन सर्वदा बाल्यावस्था की ओर लौटना है जिसमें बच्चों की कल्पनाओं, भावनाओं, लालसाओं या व्यवहार नवीनीकरण का प्रतिनिधित्व पाया जाता है, यह षैषव अवस्था के अनुकूल होते है।

प्रतिगमन वह अचेतन प्रयास माना गया है जिसमें व्यक्ति वास्तविकता से पलायन करता है। प्रायः नये बच्चे के आगमन पर माता-पिता का ध्यान उस ओर अधिक लग जाने पर बड़ा बच्चा अपने व्यवहार में प्रतिगमन दिखाने लगता है जैसे छोटे बच्चे की तरह मचलना, रोना, चलना व जिद करना इत्यादि।

प्रतिगमन अहं द्वारा विफलता तथा अन्तर्द्धन्द्धो से बचाव का प्रयास है। प्रतिगमन सुरक्षा की कमी से रक्षा करने का प्रयास है। प्रतिगमन को अपनाकर व्यक्ति अपनी उपयुक्ता की भावना व आत्म-सम्मान को बचाने में प्रयासरत रहता है।

5. **रूपान्तर (Conversion)-** इस मनोरचना के अन्तर्गत अवदमित अन्तर्द्धन्द्ध की अभिव्यक्ति विभिन्न शारीरिक लक्षणों के रूप में होती है। विभिन्न शारीरिक रोगो के लक्षण गत्यात्मक (Motor) शारीरिक या ज्ञानेन्द्रिय जन्य (Sensory) आदि किसी भी प्रकार के हो सकते है। इसके अन्तर्गत दमित ऊर्जा शारीरिक रोगों के क्रियात्मक लक्षणों में परिवर्तित होती है।

इस मनोरचना का मुख्य आधार यह है कि इसमें व्यक्ति के अन्दर के संघर्ष एवं द्धन्द्धों का व्यक्ति के महत्व द्वारा दमन करने का प्रयास किया जाता है किन्तु यह दमन असफल होता है, यही दमित इच्छा परिवर्तित होकर शारीरिक रोगो के लक्षणों के रूप में सामने आ जाती है। इन शारीरिक लक्षणों का आधार मात्र मनोवैज्ञानिक होता है।

मार्गन एवं किंग (1968) ने रूपान्तरण का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसमें एक स्त्री के दोनों पैरों में पक्षाघात हो गया था। जिसमें उस स्त्री के दोनों पैर कड़े हो गये थे, इसका कोई शारीरिक कारण नहीं पाया गया। महिला का मानसिक विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि उसका पति अत्यन्त कामुक था तथा सम्भोग की असामान्य प्रवृति के कारण महिला उससे शारीरिक सम्पर्क करने से घबराने लगी थी। उसके पहले से कई सन्ताने थी। प्रसव पीड़ा की चिन्ता तथा पति से विरोध न कर पाने के साहस के कारण उसके कमर की निचले हिस्से में पक्षाघात हो गया।

प्रो0 ब्राउन के अनुसार- ''रूपान्तर एक ऐसी सरचंना है जिसके अन्तर्गत दमित मूल प्रवृतियाँ परिवर्तित हो जाती है।''

इस प्रकार रूपान्तर मनोरचना में मानसिक संघर्ष का सामाधान शारीरिक रोगों के लक्षण के रूप में होता है। यह रूपान्तर अचेतन में दमित इच्छाओं के निश्कासन का एक माध्यम है। शारीरिक रोगो की उत्पति से व्यक्ति को दबावपूर्ण दुःखद स्थिति से छुटकारा मिल जाता है तथा सामाजिक व पारिवारिक सहानुभूति भी मिल जाती है।

6. **उदात्तीकरण (Sublimation)-** मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार, व्यक्ति की कामजनित विफलता प्रायः क्रियात्मक, कलात्मक, साहित्यिक व वैज्ञानिक कार्यो में परिणित हो जाती है।

बहुत-सी इच्छांए व आवश्यकताए ऐसी होती है जिनकी अभिव्यक्ति हम सामाजिक बन्धन तथा मार्यादाओं के कारण नहीं कर पाते है। उदात्तीकरण अथवा उन्नयन द्वारा इन अमान्य इच्छाओं की पूर्ति समाज से मान्यता प्राप्त रचनात्मक क्रियाओं द्वारा की जाती हैं।

प्रो0 ब्राउन के अनुसार- ''उदातीकरण का तात्पर्य मूल प्रवृतियों का प्रतिस्थापन सामाजिक रूप से स्वीकृत लक्ष्य के समाधान के रूप में है।''

फिशर के अनुसार- ''काम शक्ति की प्रवृत्तियों या प्रेरकों का नैतिक, सांस्कृतिक तथा समाजिक विषयों की ओर पुनः निर्देशन की क्रिया ही उन्नयन या उदात्तीकरण है।''

उदात्तीकरण की प्रक्रिया को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है- कवि तुलसीदास को अपनी पत्नी रत्नावली में इतनी आसक्ति थी कि वह उसके पीछे-पीछे अपनी ससुराल पहुँच गये। रत्नावली की फटकार ने उनमें तीव्र कुण्ठा उत्पन्न की।

"अस्थि चरममय देह मम, ता में ऐसी प्रीति। जो होती रघुनाथ मँह, होती न तो भव भीति।।" इसी कुण्ठा के उदात्तीकरण से 'रामचरितमानस' जैसे महाकाव्य की रचना केवल ढाई वर्षों में सम्भव हो सकी।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि उदात्तीकरण प्रक्रिया में जो कुंठित-काम ऊर्जा है, वह ऊर्जा आंशिक रूप से किसी प्रतिस्थापित क्रियाओं में परिवर्तित होकर एक ऐसी दिशा में लग जाती है या प्रयुक्त हो जाती है जो समाज द्वारा मान्य हो।

7. **युक्तिकरण (Rationalzation)-** व्यक्ति द्वारा अपने कुसमायोजित अंसगत व्यवहार को दोष पूर्ण तर्को द्वारा उचित ठहराना ही युक्तिकरण है। पेज का विचार है कि "व्यक्ति के कुछ कार्य न तो सामाजिक रूप से प्रशंसनीय होते है और न ही सामाजिक दृष्टि से अच्छे माने जाते है। इन कार्यो को यथोचित ठहराने के कारण व्यक्ति उनके कुछ कारण प्रस्तुत करता है जिससे उसके वह कार्य तर्कसंगत, न्यायसंगत तथा सामाजिक दृष्टि से प्रशंस नीय बन सकें।"

पेज ने इस प्रक्रिया को 'Window dressing of motives and action' भी कहा है। इस परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि-

- व्यक्ति अपने दोष पूर्ण असंगत व्यवहार को उचित ठहराने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत करता है।
- इन तर्को का कोई ठोस आधार नहीं होता है।
- व्यक्ति अपने कुतर्को द्वारा अपने अनुचित कार्यो को भी उचित ठहराना चाहता है।
- युग्तिकरण प्रायः 'Self decieving' अर्थात स्वयं को घोखा देने वाली प्रक्रिया है।

युक्तिकरण प्रक्रिया को प्रस्तुत उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक अभ्यार्थीं को लोमड़ी की भाँति उस समय अंगूर खटटे नजर आने लगते है जब वह नौकरी प्राप्त करने से असफल रह जाता है। वह अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये उस नौकरी के अवगुणों को देखने लगता है जैसे- वेतन कम था, कार्य-समय अधिक था, पदोन्नति के अवसर कम थे, आदि।

युक्तिकरण मनोरचना के अन्तर्गत व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्यो को उचित ठहराने के लिये अवास्तविक तर्क तथा कारण प्रस्तुत करने लगता है। अपने हर अच्छे-बुरे कार्यो के लिये उसके समक्ष एक तर्क उपस्थित रहता है। वास्तविकता यह होती है कि वह अपनी अयोग्यता के लिये स्वंय को उत्तरदायी स्वीकर नहीं करना चाहता है। जैसे एक विद्यार्थी परीक्षा में फेल होने पर परीक्षक को दोष देता है, प्रश्न को कठिन बताता है, कोर्स से बाहर प्रश्नों को बताता है, किन्तु यह स्वीकार नहीं करना चाहता है कि स्वंय की अयोग्यता या लापरवाही व न पढ़ना उसकी असफलता का कारण है।

8. **प्रतिक्रिया-निर्माण (Reaction Formation)-** कुछ व्यक्ति अपनी इच्छाओं और भावनाओं के अनुरूप ही व्यवहार करते हैं जब कि कुछ व्यक्तियों के मन में कुछ होता है और व्यवहार में कुछ और, व्यक्ति अपनी अर्न्तनिहित इच्छा के विपरीत व्यवहार करता है। जिस व्यकितयों में स्वंय का अपनी अपराध भावना पर नियन्त्रण पाना सम्भव नहीं होता है वह नियम, धर्म में कुछ ज्यादा ही कठोर दिखायी पड़ते है।

कोलमैन के अनुसार ‘‘प्रतिक्रिया निर्माण कभी-कभीव्यक्ति अपनी भयावह चेतन अभिवृत्तियों एवं व्यवहार प्रतिरूपों को विकसित करता है।’’

ब्राउन के अनुसार ‘‘प्रतिक्रिया-निर्माण का तात्पर्य चेतन इच्छाओं के ठीक विपरीत व्यवहारों का विकास है।’’

प्रतिक्रिया निर्माण एक ऐसी मानसिक मनोरचना है जिसमें विरोधी गुणों को विकसित करके किसी ऐसी प्रवत्ति पर विजय पायी जाती है जो समाज द्वारा स्वीकृत न हो।

नित्य प्रति के जीवन में देखने को यह निरन्तर मिलता है कि बड़े-बड़े स्मगलर, चोर बजारी करने वाले अपराधी, कुछ समाज सेवा के कार्य करके अपनी वास्तविक छवि पर परदा डालने का प्रयत्न करते है।

8.7 गौण मनोरचनाएँ

1. **आत्मीकरण (Identification)-** आत्मीकरण में व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति जैसा बनना चाहता है। हमारे दैनिक जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जैसे- एक लड़का अपने पिता की तरह तथा एक लड़की अपनी माँ की तरह बनना चाहती है। एक कालेज छात्रा हेमामालिनी बनना चाहती हैं, इत्यादि। आत्मीकरण में व्यक्ति दूसरो के गुणों को स्वंय में रख लेता है।

ब्राउन के अनुसार- ‘‘आत्मीकरण वह मनोरचना है जिसमें व्यक्ति अपने अहम् या व्यक्तित्व को दूसरों के व्यक्तित्व के अनुरूप बताने का प्रयास करता है या दूसरों के व्यक्तित्व को अपना व्यक्तित्व समझने लगता है।’’

मैक्डानलड के अनुसार- ‘‘आत्मीकरण में जो तादात्मय स्थापित करता है, वह एक प्रकार का एक व्यक्ति या वस्तु का दूसरे के साथ सम्मिलन है। जिससे बाद में वह वेसे सोचता और व्यवहार करता है।’’

इंग्लिश एवं इंग्लिश ने आत्मीकरण के तीन अर्थ बताये है जो एक-दूसरे के पूरक हैः

- स्वयं को किसी दूसरे व्यक्ति अथवा समूह के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध करना।

- किसी व्यक्ति के उद्देश्यों और मूल्यों को अपना मान लेना।
- अपने उद्देश्यों और मूल्यों को किसी दूसरे व्यक्ति के साथ संविलीन कर देना।

2. **प्रक्षेपण (Projection)-** कोलमैन (Coleman) के अनुसार- प्रक्षेपण ऐसा अहं-प्रतिरक्षा क्रियातन्त्र है जिसके द्वारा हम अनजाने तौर पर (क) अपनी न्यूनतमताओं, त्रुटियों और कुकृत्यों का दोष दूसरो पर थोप देते है, (ख) अपने अस्वीकार्य आवेगों, विचारों और इच्छाओं को दूसरों पर आरोपित कर देते है।

पेज के शब्दों में, "अपनी प्रवृतियों एवं गुणों को दूसरों पर आपेक्षित करना व देखना प्रक्षेपण कहलाता है।"

वारेन के अनुसार, "यह वह प्रवृत्ति है, जिसमें व्यक्ति बाह्य जगत में अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का आरोपण करता है।"

प्रक्षेपण को एक प्रकार की सुरक्षात्मक प्रक्रिया माना जाता है जिसके अनुसार अहम् बाह् जगत में अपनी अचेतन इच्छाओं को लाता है। फ्रायड के अनुसार प्रक्षेपण के माध्यम से व्यक्ति अपराध भावना से छुटकारा प्राप्त करता है।

प्रक्षेपण को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है- एक स्त्री की यह षिकायत थी कि वह अमुक व्यक्ति मुझे बुरी दृष्टि से देखता है व मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है लेकिन जब उस व्यक्ति से पूछा गया तो वास्तव में वह उस स्त्री को जानता भी नहीं था। फिर जब उसे मनोवैज्ञानिक ढंग से जानकारी ली गई तो यह ज्ञात हुआ कि वह स्त्री अचेतन रूप से उस व्यक्ति-विषेश से प्यार करती थी तथा संभोग की इच्छा रखती थी। इस प्रकार प्रक्षेपण के माध्यम से व्यक्ति अपनी असामाजिक एवं आवांछित इच्छाओ, विचारों, आवेगों आदि को अन्य व्यक्तियों या पदार्थो पर आरोपित करता है।

3. **अन्तःक्षेपण (Introjection)-** अन्तःक्षेपण प्रक्षेपण की प्रतिकूल मनोरचना है। इसमें आरोपण करने के स्थान पर व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व-गुणों को अपने व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण समझने लगता है। प्रक्षेपण में एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के अनुरूप होना चाहता है। लेकिन अन्तःक्षेपण में दूसरे व्यक्ति को अपना ही एक अंग मानता है।

मिलर के शब्दों में "अन्तःक्षेपण वह प्रवृति है जिसमें व्यक्ति अपने वातावरण के गुणों को अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित करता है।" इसमें व्यक्ति अपनी अनेक दुःखद अनुभूतियों से बचाव करता है। अन्तःक्षेपण के अनेक उदाहरण हमें दैनिक जीवन में मिलते है, जैसे- एक छात्र का यह समझना की मैं राजेष खन्ना हूँ। इसी प्रकार बच्चा कभी-कभी यह समझता है कि मैं ही पिता हूँ।

4. **स्थानान्तरण (Transference)-** अपने मानसिक संघर्ष से बचने के लिए प्रायः हम स्थानान्तरण का उपयोग करते है ब्राउन के अनुसार "स्थानान्तरण वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रेम की भावना का एक व्यक्ति विषेश या वस्तु-विषेश से हटकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु पर चला जाता है।"

एक व्यक्ति अपना गुस्सा अपनी स्त्री पर प्रकट करने के स्थान पर अपने सहायक पर करता है तो यह एक प्रकार का स्थानान्तरण हुआ। क्योंकि यहाँ एक भावना का एक व्यक्ति विषेश से हटकर अन्य व्यक्ति पर चला गया। फ्रायड ने स्थानान्तरण को मनोविश्लेषण का एक महत्वपूर्ण अंग माना है। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति एक लड़की के प्रेम में असफल हो जाने के बाद कुत्ते से ही प्रेम करने लगा, अर्थात उसका प्रेमभाव प्रेमिका से हटकर कुत्ते पर चला गया।

5. **विस्थापन (Displacement)-** विस्थापन में व्यक्ति की किसी प्रेरण या संवेग को मौलिक रूप में हटाकर किसी ऐसे लक्ष्य की ओर प्रेरित कर दिया जाता है जिससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। पेज के शब्दों में "विस्थापन वह मनोरचना है जिसके द्वारा एक संवेग, जो कि मौलिक रूप से किसी वस्तु या विचार से सम्बन्धित होता है तथा अन्य विचार या वस्तु पर स्थानान्तरित हो जाता है।"

सामान्यतया विस्थापन सभी लोगों के जीवन में किसी न किसी रूप में अवश्यक दिखाई पड़ता है। अचेतन मन प्रायः विस्थापन मनोरचना के प्रयोग के माध्यम से दमित एवं कुठित इच्छाओं को प्रकट करता है। विस्थापन में हमारी मानसिकशक्तिधारा एक विशय वस्तु से हटकर दूसरी विशय वस्तु पर चली जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप अनावश्यक विशयवस्तु आवश्यक तथा आवश्यक विशय वस्तु अनावश्यक प्रतीत होने लगती है।

उदाहरण- माँ के पीटे जाने के बाद बालक का अपने छोटे भाई या दोस्त की पीटना, खिलौने तोड़ना आदि विस्थापन के उदाहरण है। बांझ औरत का दूसरे बच्चों से प्यार करना, किसी क्लर्क का अपने दफतर में अपमानित होने के बाद पत्नी या बच्चों पर गुस्सा दिखाना। यह क्रिया चेतन अवचेतन के रूप में होती है।

6. **क्षतिपूर्ति (Compensation)-** क्षतिपूर्ति के माध्यम से व्यक्ति अपनी हीनता व अनुपयुक्तता की भावना से रक्षा करता है। यह एक प्रकार की समायोजनात्मक प्रवृत्ति है जिसके माध्यम से व्यक्ति उन इच्छाओं व भावनाओं को, जिनसे कि उनमें विफलता, आकुलता या हीनता उत्पन्न होती है, उन्हें अन्य सन्तोषजनक स्थिति के साथ चेतन या अचेतन रूप से पूर्ति करता है।

किस्कर (Kisker) का विचार है कि "हीनता और अपर्याप्तता की भावनाओं से सम्बन्धित दुष्चिन्ता पर लोगों द्वारा काबु पाने की सामान्य विधियों में से एक विधि क्षतिपूर्ति है। कभी-कभी

व्यक्ति किसी ऐसी शारीरिक हीनता की क्षतिपूर्ति करता है जो वास्तविक होती है, किन्तु बहुधा यह क्षतिपूर्ति ऐसी मानसिक हीनता के प्रति होती है जो केवल कल्पना की उपज होती है।"

क्षतिपूर्ति तीन प्रकार की हो सकती हैः

(क) प्रत्ययन क्षतिपूर्तिः- इसके अन्तर्गत व्यक्ति जिस क्षेत्र में न्यूनतमतम अथवा निर्बलता का अनुभव करता है, उसी क्षेत्र में अपने अथक व निरन्तर प्रयासों द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करने का प्रयास करता है। यदि कोई छात्र यह अनुभव करें कि उसकी पढ़ाई का स्तर कक्षा में बहुत नीचा है तो वह दिन प्रतिदिन मेहनत करके स्तर ऊँचा करने में जुट जाता है।

(ख) अप्रत्यक्ष क्षतिपूर्तिः- कुछ कमियाँ ऐसी होती है जिनकी प्रत्यक्ष क्षतिपूर्ति सम्भव नहीं होती। ऐसी स्थिति में व्यक्ति किसी अन्य क्षेत्र में इतनी उन्नति कर लेता है कि उसकी कमी दब जाती है। जो छात्र परीक्षा में अच्छे अंक नहीं ला पाते वह कालेज की टीम का कप्तान या छात्र नेता बन जाता है।

(ग) अति क्षतिपूर्तिः- क्षतिपूर्ति प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष यह क्रियातन्त्र केवल एक सीमा तक ही लाभकारी सिद्ध होता है। यदि यह सीमा से बाहर हो जाए तो इसका परिणाम अतिक्षतिपूर्ति होता है। कक्षा में कोई एक छात्र ऐसा मिल ही जाता है जो बात-बात पर विदूशक की भाँति व्यवहार करता है ताकि कक्षा के अन्य छात्रों की आकर्षित कर सके। इसका कारण उसके मन में छिपी परिवारिक असुरक्षा और तिरस्कार की भावना से है जिनकी अति क्षतिपूर्ति के प्रयास में वह जोकर बन जाता है।

7. **प्रत्याहार (Withdrawl)-** जब व्यक्ति अपने पूर्व-अनुभव के आधार पर किसी स्थिति से असफलता या आलोचना का भय रहता है तो वह इस मनोरचना का सहारा लेता है। इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति लज्जालु, एकाकी व भीरू स्वभाव का हो जाता है। बर्नहम (Bernham) ने इस अवस्था को मिथ्या हीनबुद्धि कहा है। यह अवस्था मुख्यतः वयस्कों की अपेक्षा बालकों में देखी जाती है। इस प्रकार के व्यक्ति किसी कार्य में रूचि नहीं लेते क्योंकि इनकी बुद्धि बहुधा दुर्बल होती है। ऐसा व्यक्ति अक्सर कहता है कि "मैं नहीं जानता", "यह कठिन कार्य है।", "मैं नहीं कर सकता" इत्यादि। ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहन व प्रशिक्षण के माध्यम से ठीक भी किया जा सकता है।

8. **कल्पनातंरग (Fantasy)-** प्रायः सभी व्यक्ति जीवन की अनेक कमियों की पूर्ति कल्पना के माध्यम से करते है। कल्पना के माध्यम से व्यक्ति अपने संघर्षों एवं विफल्ताओं को कम करते है। इसका उपयुक्त उदाहरण दिवास्वप्न है। मानव किशोरावस्था में सदैव दिवास्वप्न ही देखता रहता है क्योंकि इस आयु में वह एक अत्यन्त तीव्र मानसिक उथल-पुथल से गुजरता है। कल्पना तंरग सामान्यता वास्तविक कार्य का स्थानापन्न बनकर केवल मनोरंजन आदि का रूप लेती है। ये अधिकतर हानिप्रद नहीं होती। व्यक्ति कल्पना-तरंग के माध्यम से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करता है।

कोलमैन के अनुसार- ''हम प्रायः न केवल बाहा और आन्तरिक दुःखद वास्तविकताओं से इनकार करते है बल्कि हम स्वैर कल्पना में मनचाहे संसार का निर्माण भी करते है। स्वैरकल्पना कुण्ठित इच्छाओं से उत्पन्न होती है और इच्छातृप्ति से सम्बन्धित मानसिक प्रतिमाओं पर आधारित होती है।''

पेज के विचार में- ''दिवास्वप्न हमारी इच्छाओं और कुण्ठाओं, आशाओं और निराशाओं की प्रतिविम्वित् करते है। हम सरलतापूर्वक स्पैर कल्पना में पहुँचकर वास्तविक जीवन की कठिनाई यों और असुःखद पहलुओं से बच जाते है, अपनी अपर्याप्तता की क्षतिपूर्ति कर लेते है अथवा किसी कुण्ठित या अप्राप्य महात्वाकांक्षा की अपनी कल्पना में पूरा कर लेते है।''

8.8 सारांश

जब व्यक्ति अपने जीवन में विफलताओं का सामना करता है तो मानसिक रूप से उसके व्यवहार में चिन्ता की अधिकता उसके अन्तर्मन में कुण्ठा और अनुपयुक्ता की भावना भर देती है। यह भी सत्य है कि व्यक्ति स्वयं को हारा हुआ नहीं समझना चाहता है, अपनी पराजय या असफलता को स्वीकार करने में उसके अंह को ठेस पहुँचती है अतः अपने अहं की रक्षा के लिए वह अर्द्धचेतन व अचेतन स्तर पर प्रयास करता है। अपनी अहं की रक्षा हेतु जो प्रयास व्यक्ति करता है उसे मनोरचनाएं कहते है। मनोरचनाओं के सम्बन्ध में सिमण्ड का विचार है ''यह मनोरचाएं व्यक्ति की अभियोजनात्मक प्रतिक्रियाओं का एक हिस्सा है इन्हें किसी गतिहीन संरचना के रूप में स्वीकार न करके एक ऐसी शक्ति संरचना के रूप में स्वीकार करना चाहिए जो गत्यात्मक हो तथा प्रेरणा शक्ति से भरपूर हो।''

अतः प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न मनोरचनाओं में मूलतः तीन प्रमुख विशेषताएं होती है-

1. ये व्यक्ति के अंह की रक्षा करती है।
2. ये सुरक्षात्मक प्रयास अचेतन या अर्द्धचेतन स्तर पर प्रयुक्त होते है।
3. जब किसी समस्या के प्रति व्यक्ति में अत्याधिक अन्तर्द्धन्द्ध उत्पन्न हो जाता है और व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा सामाजिक छवि को हानि पहुँचने का डर उत्पन्न हो जाता है तो यह सुरक्षात्मक प्रयास प्रयुक्त किये जाते है।

यह सुरक्षात्मक प्रयास व्यक्ति दमन, शमन युक्तिकरण, क्षतिपूर्ति आत्मीकरण, विस्थापन, प्रतिगमन व उदातीकरण, प्रतिक्रिया निर्माण आदि के माध्यम से करता है।

8.9 शब्दावली

- **दुष्चिन्ता:** चिन्ता मनःस्नायुविकृति में उन आन्तरिक व्यक्तिगत अप्रवेशयोग्य कठिनाई यों की प्रक्रिया है जिनका ज्ञान व्यक्तियों को नहीं होता है।
- **मनोरचना (Mental Mechanism):** मनोरचनाएँ वे प्रक्रियाएं है जिनसे व्यक्ति के अन्दर (स्वंय के लिए) उपयुक्तता तथा योग्यता की भावना बनी रहती है।
- **चेतन:** चेतन से तात्पर्य मन के वैसे योग से होता है जिसमें वे सभी अनुभवों एवं संवेदनाएँ होती है जिनका सम्बन्ध वर्तमान से होता है।
- **उदात्तीकरण:** उदात्तीकरण का अर्थ सामाजिक रूप से अनुमोदित ऐसे लक्ष्यों को स्वीकार करना है जो उस अन्तर्नोद का स्थान ले सके जिसकी अभिव्यक्ति का सामान्य मार्ग अथवा लक्ष्य अवरूद्ध हो चुका है।
- **अचेतन:** अचेतन का शाब्दिक अर्थ है जो चेतन या चेतना से परे हो। हमारे कुछ अनुभव इस प्रकार के होते हैं जो न हमारे चेतन में होते हैं और न ही अवचेतन में। ऐसे अनुभव अचेतन में होते है।
- **अवचेतन:** अवचेतन मन से तात्पर्य वैसे मन से होता है जो सचमुच में न तो पूर्णतः चेतन होता है और न ही पूर्णतः अचेतन ही होता है
- **इदम (ID):** इदम् व्यक्तित्व का जैविक तत्व या पक्ष है जिनमें उन प्रवृत्तियों का भरमार होता है जो जन्मजात होती है तथा जो असंगठित, कामुक, आक्रमकतापूर्ण तथा किसी नियम आदि को मानने वाली नहीं हाती है।
- **अहम् (Ego):** अहं मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध वास्तविकता से होता है तथा जिसका बचपन में इदम् की प्रवृत्यिों से ही जन्म होता हैं। अहं को व्यक्तित्व का निर्णय लेने वाला पक्ष माना गया है।
- **पराअहम् (Superego):** पराअहम् को व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष माना गया है जो व्यक्ति को यह बतलाता है कि कौन सा कार्य नैतिक है तथा कौन सा कार्य अनैतिक है। यह आदर्षवादी सिद्धान्त द्वारा निर्देशित एवं नियन्त्रित होता है।
- **दमन (Repression):** दमन एक ऐसी मनोरचना है जिसके द्वारा चिन्ता, तनाव व संघर्ष उत्पन्न करने वाली असामाजिक एवं अनैतिक इच्छाओं को चेतना से हटाकर व्यक्ति अचेतन में कर देता है।
- **क्षतिपूर्ति (Compensation):** क्षतिपूर्ति- प्रतिक्रियाऐं हीनता और अपर्याप्तता की ऐसी भावनाओं के प्रति सुरक्षात्मक उपाय है जो वास्तविक अथवा काल्पनिक व्यक्तिगत दोशों अथवा दुर्बलताओं के अलावा असम्भावी विफलताओं और प्रतिरोधो के कारण उत्पन्न होती है।

8.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) ब्राउन ने मनोरचना की कौन सी परिभाषा दी है।
2) मनोरचनाओं के महत्वपूर्ण कार्य कौन से है।

उत्तर: 1) ब्राउन के अनुसार- "मानसिक मनोरचनाएं चेतन तथा अचेतन की प्रतिक्रिया है जो व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्ध को या तो कम कर देती है अथवा समाप्त कर देती है।"

2) मनोरचनाओं के महत्वपूर्ण कार्य-

- रक्षायुक्तियों से व्यक्ति की समायोजन सम्बन्धी आवश्यकता की सरलतापूर्वक सन्तुष्टि होती है।
- इनसे व्यक्ति में कुष्ठाजनित तनाव, निराशा व असफलता की प्रबलता में विशेष रूप से कमी आती है।
- इनके व्यक्ति के विघटन की प्रक्रिया की कारगर रूप से रोकथाम होती है।
- इनसे व्यक्ति में दुश्चिन्ता प्रर्याप्त मात्रा में कम होती है।
- इनसे एक प्रकार से व्यक्ति के आत्म-सम्मान की रक्षा होती है।
- इनसे व्यक्ति में कुष्ठाओं के प्रति सहनशीलता की शक्ति में वृद्धि होती है।

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (2001, 2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- एच0के0 कपिल (2001), अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः भार्गव बुक हाउस कचहरी घाट आगरा
- डॉ0 लाभ सिंह, डॉ0 गोविन्द तिवारी- असामान्य मनोविज्ञान (2001) असामान्य मनोविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
- मखीजा एवं मखीजा (1980, 2009) अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल हास्पीटल रोड, आगरा
- Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology and Modern life (Taraporevala)
- Davison, GC & Neal J.M. (1986) Abnormal Psychology: An experimental clinical Approach, John Wiley & Sons, Newyork.

- Miller, M.C. : Psychoanalysis and Its Derivatives.
- Mac Donal, Ladell: Tessus, P.20
- Page- Abnormal Psychology, P.46.
- Symonds- The dynamics of Human Adjustment

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोरचनाओं से आप क्या समझते है, मनोरचनाओं के महत्वपूर्ण कार्य को स्पष्ट किजिए।
2. मनोरचनायों के विभिन्न रूपों का वर्णन किजिए।
3. युक्तिकरण मनोरचना क्या है।
4. दमन, अन्तबाध, प्रतिगमन, रूपान्तरण मनोरचनाओं का उदाहरण सहित स्पष्ट किजिए।
5. प्रक्षेपण, विस्थापन, प्रत्याहार, कल्पना तरंग मनोरचनाओं का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किजिए।

ईकाई–9 मनोरचनाओं की विशेषताएँ, अन्तर्द्धन्द्ध के प्रकार व निदान

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मनोरचनाओं की विशेषताएँ

9.4 अन्तर्द्वन्द्ध

9.5 अन्तर्द्वन्द्ध के प्रकार

9.5.1 स्त्रोतों के आधार पर वर्गीकरण

9.5.2 मुख्य रूप से चेतन स्तरीय

9.5.3 मुख्य रूप से अचेतन स्तरीय

9.6 अन्तर्द्वन्द्ध के निदान

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

यह मनोव्याधि विज्ञान एवं मनोरचनाओं से संबन्धित दूसरी इकाई है इससे पूर्व आप द्वितीय इकाई के अध्ययन के उपरान्त जान गये होगें की मनोरचनाएं क्या है और व्यक्ति कौन सी मनोरचना का प्रयोग कब और किन स्थितियों में करता है। जीवन अन्तर्द्वन्द्धों की श्रृंखला से मिलकर बना है। संघर्ष के कारण ही व्यक्तित्व का विकास होता है, उसमें गतिशीलता आती है। यही कारण है कि आज प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में अन्तर्द्वन्द्ध का शिकार है।

जब दो या दो से अधिक (परस्पर विरोधी प्रकृति की) इच्छाएँ या आवश्यकताएँ व्यक्ति में उत्पन्न हो, तथा एक की पूर्ति दूसरी की पूर्ति में बाधा डाले तो ऐसी अवस्था को अन्तर्द्वन्द्ध कहते है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप मानसिक अन्तर्द्वन्द्ध से सम्बन्धित सभी पक्षों को जान पायेगें कि इसकी उत्पत्ति कब और कैसी होती है तथा इस अन्तर्द्वन्द्ध का निदान कैसे किया जा सकता है।

9.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई को पड़ने के उपरान्त आप जान सकेगे-

- मनोरचनाओं की विशेषताएँ क्या होती है।
- अन्तर्द्धन्द्ध का क्या अर्थ होता है।
- अन्तर्द्धन्द्ध के विभिन्न प्रकार क्या है।
- अन्तर्द्धन्द्ध का निदान किस प्रकार किया जाता है।

9.3 मनोरचनाओं की विशेषताएँ

"मनोरचनाए वे बाधाएं है जो अचेतन समाज विरोधी प्रवृत्यिों को चेतना में जाने से रोकती है।"

पेज ने सुरक्षात्मक उपायों को "Mental Mechnism are good solutions to conflicts, frustration and inferiority............ Mental Mechanism have some protective, alleviating or escape value."

मनोरचनाये व्यक्ति के अन्तर्द्धन्द्ध, निराशाओं तथा हीनता की भावनाओं से बचने का एक अच्छा समाधान है, इसमें सुरक्षात्मक पहलू भी है और पलायन भी। लगभग हर सामान्य कहे जाने वाले व्यक्ति के द्वारा मानसिक रूप से मनोरचनाओं का प्रयोग किया जाता है।

"These balancing devices are desirable in Moderation and are frequently utilized by normal individuals" Page

उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं होना चाहता कि उसकी असफलता का कारण उसकी स्वयं की अयोग्यता है बल्कि वह अपनी कथित असफलताओं का कारण किसी व्यक्ति, परिस्थिति या घटना को मानकर स्वयं को अपराध भाव से मुक्त कर लेता है। लेकिन वास्तविकता यह नहीं होती है। अगूंर खटटे है (Grapes are sour) कथानक इसी पर आधारित है।

विशेषताएँ:

विवेचनाओं के आधार पर मनोरचनाओं में निम्न विशेषताएँ निहित रहती है-

- मनोरचनाए व्यक्ति को चिन्ता से मुक्त करती है।
- यह व्यक्ति के अंह की रक्षा करती है।
- यह व्यक्ति की उपयुक्ता तथा योग्यता की भावना को उसके अन्दर बनाये रखती है।
- यह व्यक्ति की समग्रता (Intigrity) की रक्षा करने में सहायक होती है।

- मनोरचनाये एक प्रकार की मानसिक क्रियाविधि है। इसका उपयोग अचेतन अथवा अर्द्धचेतन स्तर पर होता है।
- सुरक्षात्मक उपायो द्वारा व्यक्ति को अपने अन्तनिर्हित तनावों, अन्तर्द्धन्द्धों तथा संघर्षो को कम करने में सहायता मिलती है।
- व्यक्ति के समायोजन को तात्कालिक रूप से सरल बना देती है।
- मनोरचनाएं बचतपूर्ण होती है, इससे अन्तर्द्धन्द्ध पर व्यय होने वाली शक्ति में बचत होती है।
- व्यक्ति मनोरचनाओं के प्रयोग के प्रति जागरूक नहीं होता है।
- मनोरचनाओं के अत्यधिक प्रयोग से व्यक्ति का वास्ताविकता से सम्पर्क टूट सा जाता है तथा व्यक्ति कुसमायोजित भी हो जाता है।

9.4 अन्तर्द्धन्द्ध

जब दो या दो से अधिक इच्छाएं या आवश्यकता ये व्यक्ति में उत्पन्न हो, तथा एक की पूर्ति दूसरे की पूर्ति में बाधा डाले तो ऐसी अवस्था को अन्तर्द्धन्द्ध कहते है। अन्तर्द्धन्द्ध, का इंग्लिश अनुवाद conflict है तथा conflict शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के conflictus शब्द से हुई है जिसका अर्थ है, एक साथ टकराना। इस प्रकार, विस्तृत रूप से अन्तर्द्धन्द्ध का अर्थ ऐसी स्थिति से है, जिसमें दो आवेगों अथवा अभिप्रेरकों का एक समय पर ही पारस्परिक रूप से टकराव व संघर्ष होता है। लेजारस के शब्दों में, " अन्तर्द्धन्द्ध उस समय उत्पन्न होता है जबकि एक व्यक्ति को दो असंगत अथवा पारस्पारिक रूप से विरोधी आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रायः एक ही समय पर पूरा करना होता है, अथवा जब विवष होकर एक आवश्यकता की पूर्ति करने पर दूसरी आवश्यकता की पूर्ति कर पाना असम्भव हो जाता है।"

Brown-"Conflict is a situation in which two wishes are so incompatible that the fulfilment of one would preclude the fulfilment of the other."

बोरिग, लैगफील्ड एवं वेल्ड के अनुसार "अन्तर्द्धन्द्ध एक ऐसी अवस्था है, जिसमें दो या दो से अधिक विरोधी प्रेरणाएं उत्पन्न हो जाती है जिनकी एक साथ तृप्ति करना सम्भव नहीं है।"

उपरोक्त विवरण से मुख्यतः अन्तर्द्धन्द्ध के सम्बन्ध में निम्न बातें स्पष्ट होती है-

- अन्तर्द्धन्द्ध एक तनावपूर्ण स्थिति है।
- अन्तर्द्धन्द्ध का जन्म तब होता है जबकि दो या दो से अधिक इच्छाएं एक साथ ही उत्पन्न हो।
- ये इच्छाएं परस्पर एक-दूसरे की विरोधी होती है। विरोधात्मक प्रवृति होने के कारण दोनों इच्छाओं की तृप्ति एक साथ सम्भव नहीं है।

9.5 अन्तर्द्धन्द्ध के प्रकार

अन्तर्द्धन्द्धों को उनके स्रातों व चेतन तथा अचेतन रूपों के आधार पर अग्रलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

स्त्रोतों के आधार पर वर्गीकरण।

- आन्तरिक आवश्यकताओं तथा बाहा प्रतिरोधो में अन्तर्द्धन्द्ध
- दो बाह्य आग्रहों के परस्पर विरोध में अन्तर्द्धन्द्ध
- दो अन्तरिक आवश्यकताओं के परस्पर विरोध से अन्तर्द्धन्द्ध

मुख्य रूप से चेतन स्तरीय (Conscious) अन्तर्द्धन्द्ध

- उपागम-उपागम अन्तर्द्धन्द्ध
- परिहार-परिहार अन्तर्द्धन्द्ध
- उपागम-परिहार अन्तर्द्धन्द्ध
- दोहरा उपागम-परिहार अन्तर्द्धन्द्ध

मुख्य रूप से अचेतन स्तरीय (Unconscious) अन्तर्द्धन्द्ध

- इदम् तथा अहम् के अन्तर्द्धन्द्ध
- अहम् तथा पराहम् के अन्तर्द्धन्द्ध
- इदम् तथा पराहम् के अन्तर्द्धन्द्ध
- अन्तर्द्धन्द्ध के विभिन्न रूपों का विस्तृत वर्णन निम्नवृत हैं।

9.5.1 स्त्रोतों के आधार पर वर्गीकरण-

आन्तरिक आवश्यकताओं तथा वाह्य टकराव से उत्पन्न अन्तर्हन्द्र (Conflicts between Internal Needs and External Presses):-

व्यक्ति अपनी विभिन्न जैविक आवश्यकताओं व आवेगों की पूर्ति अपने बाहा पर्यावरण के अन्तर्गत ही करता है, परन्तु वाहा पर्यावरण के इस सम्बन्ध में अनेक प्रतिरोध अधिकांशतः भौतिक अवरोधों, सामाजिक परम्पराओं तथा सांस्कृतिक मूल्यों के रूप में होते है। और वे व्यक्ति के आवेगों की पूति तथा सन्तुष्टि नग्न रूप में व्यक्त करने की अनुमति नहीं देते। उदाहरणायार्थ परिवार में जब बड़ा बालक किसी दूसरे बालक से खिलौना छीन लेता है, तब छोटे बालक को कभी-कभी एकदम क्रोध आ जाता है, और वह बालक से अपना खिलौना न मिलने पर उसको मारने व गाली देने

लगता है। परन्तु तुरन्त ही माता-पिता व परिवार के अन्य व्यक्ति उसके ऐसे असभ्य व्यवहार अथवा क्रोध के आवेगों को नग्नरूप में व्यक्त करने से मना करते है। इस प्रकार यहां बालक के लिये बाहा प्रतिराधों के कारण आन्तरिक आवेगों की पूर्ति न होने पर अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है।

i) दो बाह्य आग्रहों के परस्पर विरोध से अन्तर्द्वन्द्वः-

समाज कभी-कभी व्यक्ति के सम्मुख परस्पर रूप से विरोधी भूमिकाए प्रस्तुत करता है, तथा उनके परिपालन करने के लिए भारी आग्रह करता है। उदाहरणार्थ, समाज के नैतिक व धार्मिक उपदेश व्यक्ति के संसार के अन्य समस्त व्यक्तियों को एक ही ईश्वर की सन्तान होने के नाते उनके प्रति एक ओर समानता का व्यवहार करने की अपेक्षा रखते है तथा दूसरी ओर, ठीक इसके विपरीत, उसे अपने राष्ट्र, अपने धर्म, समाज व समूह को ही सर्वश्रेष्ठ मानने का भी आग्रह करता है। परस्पर रूप से ऐसी समाजिक भूमिकाओं से व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

ii) दो आन्तरिक आवश्यकताओं के परस्पर विरोध से अन्तर्द्वन्द्वः-

एक व्यक्ति कभी-कभी परस्पर रूप से विरोधी अपनी ही आन्तरिक आवष्कताओं के अन्तर्द्वन्द्व के जाल में फंस जाता है उदाहरणार्थ, जब एक विद्यार्थी परीक्षा में भी उच्च श्रेणी के अंक प्राप्त करना चाहता है, व साथ ही साथ खेलकूद में भी अपनी प्रबल रूचि रखना चाहता है। ऐसी स्थिति में एक सामान्य विद्यार्थी के लिये ऐसी दो परस्पर रूप से विरोधी आवश्यकताओं से तीव्र अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है।

9.5.2 मुख्य रूप से चेतन स्तरीय-

i) उपागम-उपागम अन्तर्द्वन्द्व (Approach-Approach conflict):

ऐसे अन्तर्द्वन्द्वों को आकर्षण-आकर्षण अन्तर्द्वन्द्व भी कह सकते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यक्ति की दुविधा यह रहती है कि वह दो समान लक्ष्यों में से किस एक को स्वीकार करे और किसको अस्वीकार करे। क्योंकि स्थिति ऐसी है कि वह उन दोनों में से एक को ही स्वीकार कर सकता है, तथा एक के स्वीकार करने पर यहाँ दूसरे लक्ष्य की प्राप्ति स्वयं ही समाप्त हो जाती है। जैसे जब एक नवयुवती के सम्मुख विवाह के लिये दो ऐसे उत्तम प्रस्ताव विचाराधीन होते हैं जो कि सब दृष्टियों से एकदम आकर्षक होते हैं, तब उसकी मानसिक उलझन यह होती है कि वह किसे स्वीकार करे तथा किसे अस्वीकार करे। उसकी वास्तविक मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की ऐसी स्थिति को निम्न आरेख द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

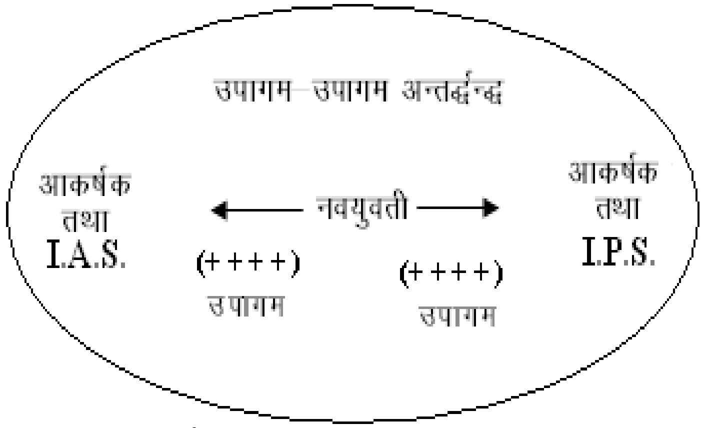

ii) **परिहार-परिहार अन्तर्द्वन्द्व (Avoidance–Avoidance conflict):**

कभी-कभी व्यक्ति ऐसी भयावह उलझन अथवा अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में फंस जाता है, जबकि वह दो समान रूप संकटो में एक साथ ही घिर जाता है। उदाहरणार्थ जब एक बीमार बालक से उसकी माँ कड़वी गोली लेने या फिर उसके स्थान पर इन्जेक्षन लेने के लिये पूछती है, तब बालक स्वभाविकतः इन दोनों कष्टकारक स्थितियों में से किसी एक को भी स्वीकार नहीं करना चाहता, परन्तु साथ ही साथ उसका संकट यह भी है कि वह इस स्थिति से बच भी नहीं सकता।

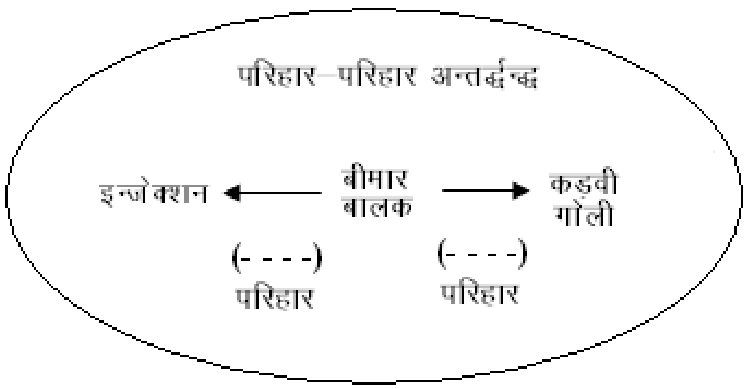

iii) **उपागम-परिहार अन्तर्द्वन्द्व (Approach-Avoidance Conflict):**

ये व्यक्ति के सम्मुख ऐसी स्थिति होती है, जिसमें दो विरोधी तत्व एक साथ सम्मिलित होकर उसके व्यवहार में द्वन्द्व उत्पन्न कर देते हैं। जैसे प्रेम की आरम्भिक स्थिति में प्रेमी अधिक खुलकर प्रेमिका से बातें करने में दुविधा में पड़ जाता है, उससे धनिष्ठ बातें करने को उसका मन खूब करता है, परन्तु एक सीमा से अधिक बढ़ जाने के भय से वह तुरन्त अपने आपको संयमित कर लेता है। यहाँ प्रेमिका से मिलना भी (उपागम)चाहता है, परन्तु कहीं अधिक बढ़ने पर वह डांट न लगा दे, इस डर से वह उससे मिलने से डरता भी है (परिहार)|

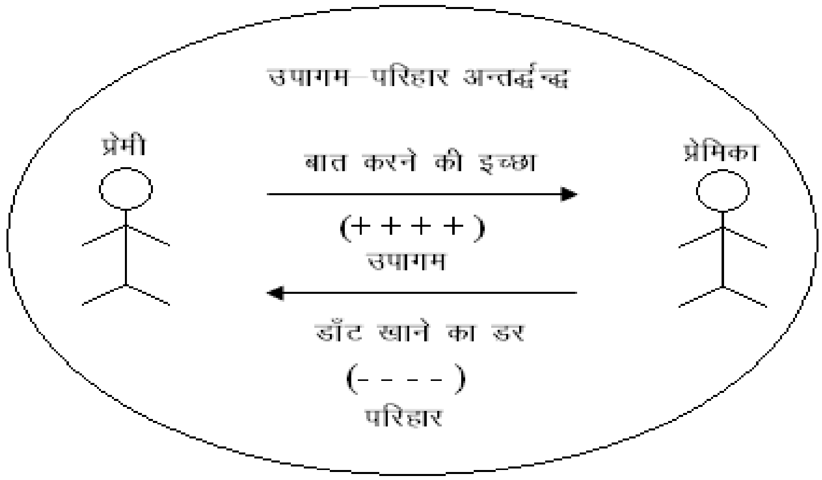

iv) **द्वि-स्तरीय उपागम- परिहार अन्तर्द्धन्द्ध (Double Approach-Avoidance Conflict):**

ऐसे अन्तर्द्धन्द्ध की स्थिति में व्यक्ति ऐसी दो दुविधाओं में एक साथ पड़ जाता है कि उसे कुछ भी निश्चित रूप से करने में सन्तुष्टि के साथ-साथ असन्तुष्टि भी अपरिहार्य रूप से मिलती है। जब एक नव युवती के पास दो ऐसे युवको के सम्बन्ध में प्रस्ताव आते हैं जिनमें एक युवक मनपसन्द परन्तु निर्धन होता है तथा दूसरा युवक करोड़पति परन्तु कुरूप होता है। नवयुवती के ऐसे अन्तर्द्धन्द्ध को निम्नलिखित आरेख के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है।

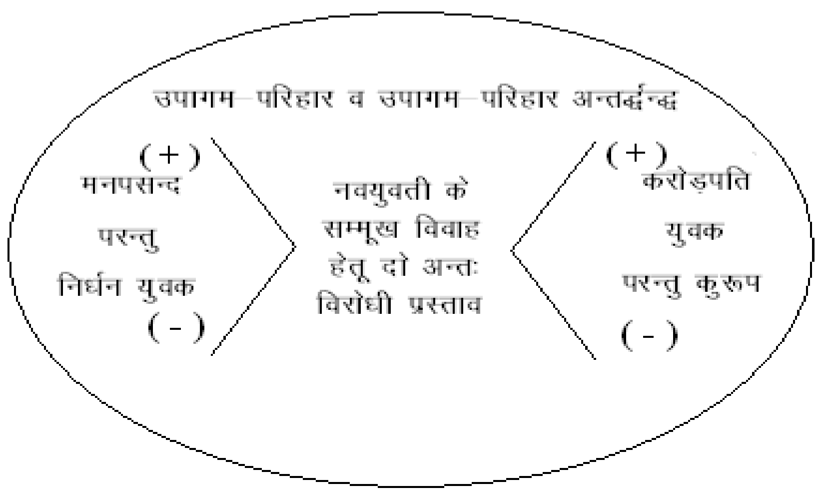

9.5.3 मुख्य रूप से अचेतन स्तरीय-

i) इदम तथा अहम् के अन्तर्द्धन्द्ध (Conflict Between ID and Ego):- इदम् के आवेग अभिन्न रूप से सुःख सिद्धान्त द्वारा संचालित होते रहते हैं, जबकि अहम् का सम्बन्ध

जीवन की कठोर वास्तविकताओं से रहता है। अतः इदम् के आवेगों तथा अहम् के प्रतिरोधों मे टकराव से अन्तर्द्धन्द्ध उत्पन्न होना सहज रूप ही समझा जा सकता है।

ii) अहम् तथा पराहम् के अन्तर्द्धन्द्ध:- अहम् का सम्बन्ध एक ओर इदम् की आनन्द भोगी इच्छाओं तथा दूसरी ओर पराहम् के धार्मिक व नैतिक मानदण्डों से जुड़ा रहता है। अहम् इन दोनों विपरीत व विरोधी व्यवहारों के समन्वय तथा तालमेल कभी कभी इदम की वासनापूर्ण इच्छाओं को भी दुस्साहित कर जाता है। इससे पराहम् व्यक्ति के अहम् को कचोटने लगता है। इससे ही व्यक्ति में अपराध-भावना, पाप-धारणा व प्रायश्चित की कटु वेदना होने लगती है।

iii) इदम् तथा पराहम् के अन्तर्द्धन्द्ध:- इदम् के वासनापूर्ण क्षणिक आवेगों तथा पराहम् के कठोर नैतिक आदर्शों में संघर्ष सहज रूप ही बोधगम्य है। सामान्यतः व्यक्ति का सुसंगठित अहम् इन दोनों परस्पर विरोधी आग्रहों के समन्वय व तालमेल बिठाने में सफल रहता है। परन्तु फिर भी व्यक्ति के व्यावहारिक व मानसिक जीवन के ऐसे अन्तर्द्धन्द्ध का प्रक्रम नित्य चलता ही रहता है।

9.6 अन्तर्द्धन्द्ध के निदान

वह व्यक्ति जो अन्तर्द्धन्द्ध परिस्थितियों के मध्य होता है सदैव यह अनुभव करता है कि उसके सम्मुख एक असमान परिस्थिति उत्पन हो गई है। समस्थिति के सामान्य सिद्धान्त के आधार पर वह या तो इस परिस्थिति से पूर्व स्थित अवस्था में पहुँचना चाहता है या नवीन प्रकार के समायोजन करना चाहता है। इस स्थिति पर पहुँचने के लिये प्राणी अपने समस्त स्रोतों को इस कार्य के लिये उपयोग करता है।

अन्तर्द्धन्द्ध समायोजन को विस्तृत रूप से दो वर्गो के वर्गीकृत करना सम्भव है। प्रथम वर्ग में वे प्रविधियाँ आ जाती हैं जिनका विकास प्राणी मुख्यतः उद्दीपक को संशोधित करने के आधार पर करता है। अगर कम किसी वस्तु को अन्य दृष्टिकोणों से देखें तो शायद अन्तर्द्धन्द्ध समाप्त हो जाये। अन्य शब्दों में प्रथम प्रकार के अन्तर्द्धन्द्ध समायोजन में व्यक्ति मौलिक अन्तर्द्धन्द्ध परिस्थिति को पुनः निश्चयात्मक दृष्टिकोण से व्याख्या करके उद्दीपक में संशोधित करता है-

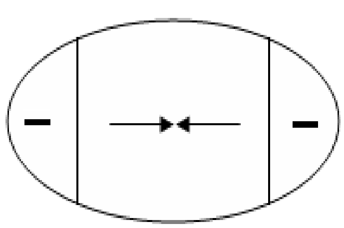

Original Conflict Situation
(मौलिक अन्तर्द्धन्द परिस्थिति)

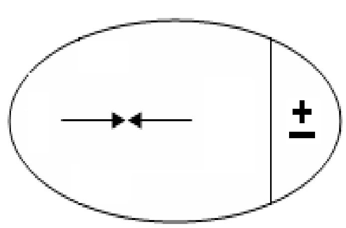

Conflict Solution
(अन्तर्द्धन्द्ध समाधान)

दूसरे प्रकार के अन्तर्द्धन्द्ध समायोजन की प्रतिक्रिया में संशोधन किया जाता है। निम्न चित्र को देखने से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि अगर एक प्रकार की क्रिया (ए) जिसे सरलता के साथ शुरू किया जा सकता है। परन्तु उसे पीड़ा या दण्ड का अनुभव व्यक्ति को प्राप्त होता है तो व्यक्ति अन्य प्रकार की क्रिया (बी) के माध्यम से इस अन्तर्द्धन्द्ध की तीव्रता को कम या दूर कर सकता है।

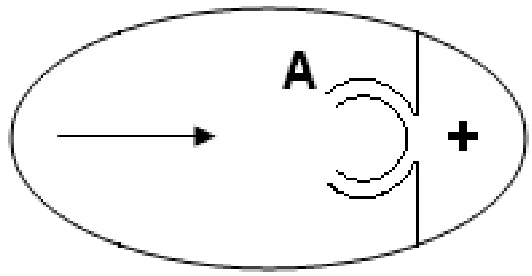

9.7 सारांश

मनोरचनाओं द्वारा व्यक्ति अपने अन्तर्निहित तनावों, अन्तर्द्धन्द्धों तथा संघर्षों को कम करता है। मनोरचनायें व्यक्ति के अंह की रक्षा करती हैं व चिन्ता से मुक्त कराती हैं। मनोरचनाओं द्वारा व्यक्ति के समायोजन को तात्कालिक रूप से सहज बनाया जा सकता है।

संक्षेप में अन्तर्द्धन्द्ध की स्थिति व्यक्ति के लिये एक अति गम्भीर दुविधा की स्थिति होती है। इसमें उसके लिए प्रायः कोई एक निर्णय लेना अति कठोर व कष्टकारक होता है। व्यक्ति की उलझन यहां यह होती है कि उसके लिए किसी भी एक स्पष्ट दिशा में जाना सम्भव नहीं लगता क्योंकि इससे या तो उसके एक अभीष्ट की पूर्ति नहीं होने पाती, या फिर, इससे उसका एक अन्य गन्तव्य (लक्ष्य) असन्तुष्ट ही रह जाता है। अन्तर्द्धन्द्ध का स्वरूप कभी-कभी इससे भी अधिक गम्भीर व विशम हो जाता है। ऐसी स्थिति उस समय देखने में आती है, जब व्यक्ति के विरोधी अभिप्रेरकों में अचेतन स्तर पर टकराव होता है। वस्तुतः एक व्यक्ति के विभिन्न अन्तर्द्धन्द्धों का स्वरूप कभी-कभी जटिल होता है। अन्तर्द्धन्द्धों के विभिन्न रूप होते हैं जिनका निदान समायोजन प्रक्रियाओं द्वारा किया जा सकता है।

9.8 शब्दावली

- **द्विस्तरीय उपागम-परिहार अन्तर्द्धन्द्ध (Double Approach-Avoidance conflict):** इस अन्तर्द्धन्द्ध की स्थिति में व्यक्ति के सामने दो लक्ष्य होते हैं और प्रत्येक लक्ष्य में घनात्मक और ऋणात्मक दोनों शक्तियाँ होती हैं।
- **मूल प्रवृत्ति (Basic Instinct):** मूल प्रवृत्ति एक प्रकार की जन्मजात मनोशक्ति है। फ्रायड ने दो मूल प्रवृत्तियाँ बताई (1) जीवन मूल प्रवृत्ति(Life Instinct) और (2) Death Instinct

व्यक्ति की रचनात्मक क्रियाओं के मूल में जीवन मूल प्रवृत्ति है तथा विध्वंसात्मक क्रियाओं में मृत्यु मूल प्रवृत्ति है।

- **अन्तर्द्धन्द्ध (Conflict):** अन्तर्द्धन्द्ध वह अवस्था है जो दो इच्छाएं इतनी विरोधी होती हैं कि एक दूसरे की तृप्ति में बाधा उत्पन्न करती हैं।
- **उपागम-उपागम अन्तर्द्धन्द्ध (Approach-Approach conflict):** व्यक्ति दो ऐसे विकल्पों के बीच पहुँच जाता है जिनमें एक सी धनात्मक शक्ति होती है। व्यक्ति को दोनों ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं जिसके कारण से अन्तर्द्धन्द्ध उत्पन्न हो जाता है।
- **परिहार-परिहार अन्तर्द्धन्द्ध (Avoidance-Avoidance Conflict):** इस तरह की अन्तर्द्धन्द्ध की स्थिति में दोंनों विकल्पों में ऋणात्मक कर्षण शक्ति होती है जिसमें व्यक्ति को एक विकल्प को अवश्य चुनना पड़ता है जिसके कारण से अन्तर्द्धन्द्ध उत्पन्न हो जाता है।
- **उपागम-परिहार अन्तर्द्धन्द्ध (Approach-Avoidance Conflict):** इस प्रकार के अन्तर्द्धन्द्ध की स्थिति में व्यक्ति के समक्ष एक ही लक्ष्य होता है जिसमें धनात्मक और ऋणात्मक दोंनों ही कर्षण शक्तियाँ विधमान होती हैं।

9.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) मनोरचनाओं की मुख्य विशेषताएँ क्या है।
2) अन्तर्द्धन्द्ध की परिभाषा लिखिये।
3) अन्तर्द्धन्द्ध के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण कितने चरणो में किया जा सकता है।

उत्तर: 1) विशेषताएँ: विवेचनाओं के आधार पर मनोरचनाओं में निम्न विशेषताएँ निहित रहती है-

- मनोरचनाए व्यक्ति को चिन्ता से मुक्त करती है।
- यह व्यक्ति के अंह की रक्षा करती है।
- यह व्यक्ति की उपयुक्ता तथा योग्यता की भावना को उसके अन्दर बनाये रखती है।
- यह व्यक्ति की समग्रता (Intigrity) की रक्षा करने में सहायक होती है।
- मनोरचनाये एक प्रकार की मानसिक क्रियाविधि है। इसका उपयोग अचेतन अथवा अर्द्धचेतन स्तर पर होता है।
- सुरक्षात्मक उपायो द्वारा व्यक्ति को अपने अन्तनिर्हित तनावों, अन्तर्द्धन्द्धों तथा संघर्षों को कम करने में सहायता मिलती है।
- व्यक्ति के समायोजन को तात्कालिक रूप से सरल बना देती है।
- मनोरचनाएं बचतपूर्ण होती है, इससे अन्तर्द्धन्द्ध पर व्यय होने वाली शक्ति में बचत होती है।
- व्यक्ति मनोरचनाओं के प्रयोग के प्रति जागरूक नहीं होता है।

- मनोरचनाओं के अत्यधिक प्रयोग से व्यक्ति का वास्ताविकता से सम्पर्क टूट सा जाता है तथा व्यक्ति कुसमायोजित भी हो जाता है।

2) परिभाषा:- बोरिंग, लैगफील्ड एवं वेल्ड के अनुसार, "अन्तर्द्वन्द्ध एक अवस्था है, जिसमें दो या दो से अधिक विरोधी प्रेरणाएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनकी एक साथ तृप्ति करना सम्भव नहीं है।"

3) तीन चरणों में:-

i. स्रोतों के आधार पर
ii. चेतन स्तरीय आधार पर
iii. अचेतन स्तरीय आधर पर

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (2001, 2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- एच0के0 कपिल (2001), अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः भार्गव बुक हाउस कचहरी घाट आगरा
- डॉ0 लाभ सिंह, डॉ0 गोविन्द तिवारी- असामान्य मनोविज्ञान (2001) असामान्य मनोविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
- मखीजा एवं मखीजा (1980, 2009) अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल हास्पीटल रोड, आगरा
- Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology and Modern life (Taraporevala)
- Davison, GC & Neal J.M. (1986) Abnormal Psychology: An experimental clinical Approach, John Wiley & Sons, Newyork.
- Miller, M.C. : Psychoanalysis and Its Derivatives.
- Mac Donal, Ladell: Tessus, P.20
- Page- Abnormal Psychology, P.46.
- Symonds- The dynamics of Human Adjustment

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोरचनाओं की मुख्य विषेशताओं का विस्तृत वर्णन किजिए।
2. अन्तर्द्वन्द्ध के स्परूप को स्पष्ट करते हुए वर्गीकृत किजिए।
3. चेतन स्तरीय अन्तर्द्वन्द्ध के प्रकारों का वर्णन किजिए।
4. अन्तर्द्वन्द्ध का निदान किस प्रकार किया जा सकता है।

इकाई-10 मानसिक बीमारी का स्वरुप, मनोस्नायु विकृति एव स्नायु विकृति में अंतर

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मानसिक बीमारी का स्वरुप
10.4 मनोस्नायु विकृति एव स्नायु विकृति में अंतर
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

यदि मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक बीमारी के क्षेत्र में किये गए शोधों पर ध्यान दे तो यह स्पष्ट होगा कि इस क्षेत्र में 1970 के दशक तक मानसिक स्वास्थ्य तथा मानसिक बीमारी का एक विशेष मॉडल जिसे सतत् मॉडल कहा गया, का प्रभाव काफी बना रहा। इस मॉडल में मानसिक स्वास्थ्य तथा मानसिक बीमारी को एक ही सांतव्य के दो विपरीत धुन माना गया और अधिकतर लोग इन दोनो छोरो के बीच में होते समझे गये। मानसिक बीमारी से स्पष्टतः एक भिन्न श्रेणी नहीं समझा जाता था बल्कि स्वास्थ्य तथा बीमारी सामान्य असामान्य व्यवहारों के विभिन्न मात्राएँ होती हैं। स्वास्थ्य तथा बीमारी के बीच की सीमा रेखा सख्त न होकर तरल है और सामाजिक एवं पर्यावरणी प्रभावों से प्रभावित होते रहता है। यही कारण है कि मानसिक स्वास्थ्य तथा मानसिक बीमारी के बीच यह स्पष्ट सीमा-रेखा खींचना कठिन है और देखा गया है कि ऐसे व्यक्ति जिसमें कोई मानसिक बीमारी नहीं होती है, कभी-कभी उसमें मानसिक विषाद, काल्पनिक बीमारियों में चिंतित रहना, आवेगशील, बिना बात के ही क्रोधित हो जाना आदि लक्षण पाये जाते हैं। उसी तरह से ऐसे लोग जो निश्चित रूप से मानसिक रूप से रोगग्रस्त है, उनमें कभी-कभी ऐसी मानसिक दशा उत्पन्न हो जाती है जो मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की मनोदशा होती है और उसमें किसी प्रकार की कोई असमान्यता का लक्षण नहीं दिखलाई पड़ती है।

मनोविकृति एक संगीन असामान्यता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति का व्यक्तित्व अत्याधिक विघटित हो जाता है। रोगी को वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता| आत्मसंयम व सामाजिक सन्तुलन

का पूर्णतः अभाव रहता है तथा अक्सर कल्पनालोक में विचरण करता है। उसे अपने कार्यों की अच्छाई व बुराई के बारे में ज्ञान नहीं होता है। कानून के दृष्टिकोण से इन्हें पागल की संज्ञा दी जाती है। अन्य व्यक्तियों को इन रोगियों का व्यवहार देखने में विचित्र व बुरा लगता है इनमें विपर्यय व विभ्रम का बाहुल्य रहता है तथा इन्हें अपने सुधार या ठीक होने की कोई चिन्ता नहीं रहती है। चिकित्सक की सलाह को स्वीकार नहीं करते तथा आत्महत्या करने पर उतारू रहते है सामान्यतः मनःस्नायुकृति जीवनशैली का गलत अनुकूलन है जिसके चिन्ता व छुटकारा दो प्रमुख लक्षण होते हैं। इस प्रकार के रोगियों की जीवनशैली में दो प्रमुख प्रकृतियाँ पायी जाती है- 1) वास्तविकता का गलत मूल्यांकन तथा समस्याओं के समाधान के स्थान पर उससे बचने की पद्धति 2) अपने आप से हार जाने की प्रकृति से पीड़ित रहना।

इस इकाई के अन्तर्गत हम मानसिक बीमारी के स्वरूप तथा मनोस्नायु और मनोविकृति में अन्तर का अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद हम निम्नलिखित बिंदुओं पर चर्चा करने योग्य हो सकेंगे।

- मानसिक बीमारी के स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे।
- मानसिक बीमारी तथा मानसिक स्वास्थ्य में अन्तर कर सकेंगे।
- मनोस्नायुविकृति तथा मनोविकृति में विभिन्न दृष्टिकोण के आधार पर अन्तर स्पष्ट कर सकते है।

10.3 मानसिक बीमारी का स्वरुप

यदि नैदानिक मनोविज्ञान तथा असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट होगा कि मनौवैज्ञानिक की अभिरूचि मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन में एक विशेष आन्दोलन के फलस्वरूप हुई जिसके शीर्ष नेता डी.एल. डिक्स जो माशेसूटे में स्कूल शिक्षिका थी एवं क्लिफोर्ड डब्लू बिर्स थे। इन लोगों के प्रयास से मानसिक अस्पतालों में रखे गए रोगियों के साथ किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार में कमी आयी और मानवीय व्यवहारों में वृद्धि हुई एवं मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने की ओर लोगों का ध्यान गया।

अब यह प्रश्न उठता है कि मानसिक स्वास्थ्य से क्या तात्पर्य होता है? सामान्यतः यह समझा जाता है कि जब व्यक्ति किसी भी तरह की मानसिक बीमारी से मुक्त होता है, तो उसे मानसिक रूप से स्वस्थ समझा जाता है। और उसकी इस अवस्था को मानसिक स्वास्थ्य की संज्ञा दी जाती है। लेकिन कुछ चिकित्सकों का मत है कि मानसिक स्वास्थ्य को मानसिक बीमारी की अनुपस्थिति कहना बहुत ही उपयुक्त नहीं दिख पड़ता है क्योंकि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में भी

कभी-कभी मानसिक बीमारी के लक्षण जैसे आवेगशीलता सांवेगिक अस्थिरता अनिद्रा आदि के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इसलिए आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य को समायोजनशीलता की क्षमता को मुख्य कसौटी मानकर इसे परिभाषित किया है।

कार्ल मेनिंगर 1945 के अनुसार,"मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ मानव समायोजन है-वह एक संतुलित मनोदशा, सर्तक बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा एक खुश मिजाज बनाए रखने की क्षमता है।''

इन भाषाओं का विश्लेषण करने पर हमे मानसिक स्वास्थ्य के बारे मे निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य की मूल कसौटी अर्जित व्यवहार है। इस तरह का व्यवहार का स्वरूप कुछ ऐसा होता है जिससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है।

मानसिक स्वास्थ्य एक संतुलित मनोदशा की अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति अपने जिन्दगी के विभिन्न हालातों में सामाजिक रूप से सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार बनाए रखता है।

मानसिक रोग या बीमारी वातावरण के साथ किए गए कुसमायोजी व्यवहार को कहा जाता है। डेविड मैकनिफ 1999 के अनुसार मानसिक बीमारी एक तरह का विचलित व्यवहार होता है। जिसमें व्यक्ति की चिन्तन प्रतिक्रियायें, भाव एवं व्यवहार सामान्य प्रत्याशाओं एवं अनुभूतियों से भिन्न या अलग होता है और प्रभावित व्यक्ति या समाज इसे एक ऐसी समस्या के रूप में पहचान करता है जिसमें नैदानिक हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। डी.एस.एम. 1994 में मानसिक बीमारी को बहुत ही स्पष्ट एवं वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की गई है।

डी.एस.एम. 1994 के अनुसार मानसिक बीमारी को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

डी.एस.एम. में प्रत्येक विकृति को एक नैदानिक रूप से सार्थक व्यवहारपरक या मनोवैज्ञनिक संलक्षण या पैटर्न जो व्यक्ति में उत्पन्न होता है, के रूप में समझा गया है और यह वर्तमान तकलीफ या नियोग्ता से संबंधित होता है। चाहे उसका मौलिक कारण जो भी हो, इसे वर्तमान समय में व्यक्ति में व्यवहारपरक, मनोवैज्ञानिक या जैविक दुष्क्रिया की अभिव्यक्ति अवश्य माना जाता हो। न तो कोई विचलित व्यवहार (जैसे राजनीतिक, धार्मिक या लैंगिक) और न ही व्यक्ति तथा समाज के बीच होने वाला संघर्ष को मानसिक रोग माना जा सकता है अगर ऐसा विचलन या संघर्ष व्यक्ति में दुष्क्रिया का लक्षण न हो''

डेविड मैकनिक 1999 ने मानसिक बीमारी का इस ढंग से परिभाषित किया है,''मानसिक बीमारी एक तरह का विचलित व्यवहार है। इसकी उत्पत्ति तब होती है जब व्यक्ति का चिन्तन प्रक्रियाएँ, भाव एवं व्यवहार सामान्य प्रत्याशाओं या अनुभवों से विचलित होता है तथा प्रभावित व्यक्ति या समाज के अन्य लोग इसे एक ऐसी समस्या के रूप में परिभाषित करते हैं जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है'' यदि हम मानसिक बीमारी के उक्त परिभाषओं पर धयान दें तो यह स्पष्ट होगा की समन्यतः मानसिक बीमारी के दो पहलू होते हैं।

1) मानसिक बीमारी से उत्पन्न चिन्तन, भाव एवं व्यवहार व्यक्ति के लिए दुखदायी या विघटनकारी होता है।
2) समस्या व्यक्ति में किसी न किसी दुष्क्रिया से उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में, मन या उसके शरीर का कोई न कोई पहलू उस ढंग से काम नहीं कर रहा होता है जिस ढ़ंग से उसे कार्य करना चाहिए।

1980 वाले दशक में मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक बीमारी के इस सतत् मॉडल से हटकर दूसरे तरह के मॉडल पर लोगों का ध्यान अधिक गया है जिसे मानसिक बीमारी का पृथक या असतत् मॉडल कहा गया है। यह मॉडल इस बात का स्पष्टता से खंडन करता है कि मानसिक स्वास्थ्य तथा मानसिक बीमारी एक सातंत्य का निर्माण करते हैं बल्कि इसका मत है कि मानसिक स्वास्थ्य तथा मानसिक बीमारी एक दूसरे के विपरीत हैं जिससे एक द्विभाजक का निर्माण होता है जिसका परिणाम यह होता है। कि कोई व्यक्ति या तो स्वस्थ है या फिर बीमार है। इस मॉडल के अनुसार जो लोग मानसिक रूप से बीमार होते हैं, उन्हें लक्षणों के आधार पर विभिन्न रोग श्रेणियों में रखा जाता है। यह मॉडल जैवमेडिकल शोधों जिसमें मानसिक बीमारी के आंगिक एवं जैविक कारकों को अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है, पर किये गए शोधों पर आधृत है तथा जैसा कि मिकेल्स एवं मार्जुक 1993 तथा विलसन 1993 ने कहा है,''इस मॉडल के अनुसार मानसिक बीमारी का कारण अनुवांशिक, जैविक, जैवरासायनिक तथा तंत्रकीय होता है।''

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में मानसिक बीमारी तथा मानसिक स्वास्थ्य में अंतर निम्नांकित बिंदुओं पर मोटे तौर पर किया जा सकता है-

1) मानसिक बीमारी में सामान्यतः व्यक्ति में समायोजन संबद्ध समस्याएँ प्रधान होती हैं परन्तु मानसिक स्वास्थ्य में सामान्यतः व्यक्ति को समायोजन संबद्ध कठिनाई याँ या समस्याएँ न के बराबर होती हैं।
2) मानसिक बीमारी में उपचार एक अहम पहलु होता है। यदि उसका उपचार नहीं किया जाता है, तो उसकी उग्रता तीव्र होती जाती है। परंतु मानसिक स्वास्थ्य में उपचार जैसे पहलु की अहमियत नहीं होती है। भले ही उसे उन्नत बनाने के लिए कुछ सुधारात्मक उपाय की जरूरत पड़ती है।

3) अधिकतर मानसिक बीमारियों का एक स्पष्ट जैविक आधार होता है। इस तथ्य की पुष्टि अनेकों अध्ययनों से हो चुकी है। यही कारण है कि हम पाते हैं कि अगर किसी व्यक्ति में कोई मानसिक रोग हो गया है, तो फिर उसकी संतानों में भी संबद्ध मानसिक रोग उत्पन्न होने की संभावना तीव्र हो जाती है। जुड़वा बच्चों पर किये गये अनेकों अध्ययन में यह पाया गया है कि यदि ऐसे युग्मों के एक बच्चा में कोई मानसिक रोग होता है तो फिर दूसरे बच्चा में भी इस रोग के होने की संभावना तीव्र हो जाती है। मानसिक स्वास्थ्य का कोई इस तरह का जैविक आधार नहीं होता है। बल्कि इसके निर्धारण में अजैविक कारकों की ही भूमिका अधिक होती है।
4) मानसिक बीमारी तथा मानसिक स्वास्थ्य में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों तथा मनोचिकित्सकों का ध्यान मानसिक बीमारी के अध्ययन की ओर तुलनात्मक रूप से अधिक गया है, क्योंकि यह समाज के लिए और स्वंय व्यक्ति के लिए भी एक बड़ी चुनौती के समान है।
5) मानसिक बीमारी के अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता से काफी अधिक है।

स्पष्ट हुआ कि मानसिक बीमारी तथा मानसिक स्वास्थ्य में पारदर्शी अंतर है।

10.4 मनोस्नायु विकृति एव स्नायु विकृति में अंतर

मेयर ने मनः स्नायुविकृति को एक भाग से सम्बन्धित प्रतिक्रिया व मनोविकृति के समग्र रूप से व्याख्या प्रस्तुत की है क्योंकि एक से व्यक्तित्व का एक विशेष भाग ही प्रभावित होता है लेकिन मनोविकृति से तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता है। मनः स्नायुविकृति व मनोविकृति के अन्तर को हम विभिन्न दृष्टिकोण से समझा सकते है। इन दोनों में कोई विशेष समानता नहीं है तथा इनके प्रारम्भ एवं परिणामों में भी काफी अंतर है। नीचे हम विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर मनःस्नायुविकृति में अन्तर बतायेंगे-

1) कारणों के दृष्टिकोणों से- मनोस्नायुविकृति में ये तत्व अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। जिनका सम्बन्ध मुख्यतः मनोजन्य एवं अनुवांशिकता से होता है। इसमें स्नायुविद, दैहिक एवं रासायनिक तत्व प्रायः अमहत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन मनोविकृति में प्रमुख कारणों का सम्बन्ध मुख्यतः अनुवांशिकता, विशात्मक व स्नायुविक से होता है।
2) व्यवहार के दृष्टिकोण से- मनोस्नायुविकृति रोगी में भाषा व विचार के दृष्टिकोण से संगति पाई जाती है, क्योंकि उनका व्यवहार तार्किक होता है। लेकिन इसके विपरीत मनोविकृतियों के रोगियों की भाषा एवं विचार में असंगति, विचित्रता व अतार्किकता पायी जाती है। इन रोगियों में व्यामाहों, विभ्रम व मानसिक अस्थिरता अधिक होती है। जबकि मनःस्नायुविकृतियों में ऐसा नहीं पाया जाता है।

3) सामाजिक दृष्टिकोण से- समाजिकता दृष्टिकोण से मनःस्नायुविकृतियों के रोगियों के लक्षणों में समाज व वास्तविकता में एक समन्वय की झलक मिलती है, क्योंकि इनका व्यवहार करीब-करीब सामान्य लोगों से मिलता-जुलता है। लेकिन मनोविकृति के रोगियों में सामाजिक लक्षणों का अभाव रहता है। उसमें सामाजिक आदतें, समाज व वास्तविकता का सम्बन्ध, सामूहिकता आदि भावनाएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में, मनोविकृति के रोगियों का सामाजिक नियमों से न तो कोई सम्बन्ध ही रहता है और न ही ये समाज के नियमों का पालन ही करते हैं।
4) व्यक्तित्व के आधार पर- मनोस्नायुविकृति के रोगियों का व्यक्तित्व या तो सामान्य व्यक्ति से मिलता हुआ होता है या थोड़ा-सा भिन्न होता हैं। लेकिन मनोविकृति के रोगियों का व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तियों से काफी भिन्न होता है। उसका व्यवहार व प्रतिक्रियाएँ इतनी भिन्न होती हैं। कि वह सामान्य व्यक्ति से बिल्कुल अलग दिखाई पड़ता है।
5) व्यवस्था एवं चिकित्सा के दृष्टिकोण से- मनोस्नायुविकृति रोगी में इतनी समझ होती है कि वह अपना भला-बुरा समझता है तथा आत्म-व्यवस्था को बनाये रखता है। लेकिन मनोविकृति के रोगियों में आत्म-व्यवस्था का पूर्णतः अभाव पाया जाता है जिसके कारण वे आत्महत्या की प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होते हैं। चिकित्सा के दृष्टिकोणों से मनःस्नायुविकृति रोगियों का उपचार घर में सम्भव है, लेकिन मनोविकृति के रोगियों को या तो चिकित्सालय में भर्ती करा दिया जाता है या चिकित्सालय की भाति घर में प्रबन्ध कराना चाहिए।
6) उपचार एवं अवधि के दृष्टिकोण से- मनोस्नायुविक्रती के रोगियों की अन्तर्दृष्टि पूर्णतः या लगभग ठीक होती है। अतः इन्हे मनोवैज्ञानिक उपचार- जैसे-निर्देश, पुनर्षिक्षण आदि के माध्यम से ठीक किया जा सकता है लेकिन मनोविकृति के रोगियों के उपचार के लिए रासायनिक शरीर-विज्ञानात्मक विधियों का सहारा लेना पड़ता है। अवधि के दृष्टिकोण में मनोस्नुविकृति की दशा चिन्ताजनक नहीं होती तथा मृत्यु-संख्या साधारण होती है। इसके विपरीत मनोविकृति के लक्षण अपेक्षाकृत स्थायी व प्रतिदिन परिवर्तित होते रहते हैं। अधिकतर लक्षणों के परिणाम प्रतिकूल होते हैं तथा इस रोग में रोगियों की दशा बिगड़ जाना साधारण बात है। एवं मृत्यु-संख्या की अधिकता भी पायी जाती है।

मनः स्नायुविकृति व मनोविक्षिप्तता में अन्तर

	आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व की प्रकृति	उसके व्यवहार का सामाजिक रूप	प्रतिगमन श्रेणी	प्रेम-वस्तु के आधारभूत उत्तेजनाओं से सम्बन्ध	अन्तर्द्वन्द्व का रूप
मनः स्नायु विकृति	अहम् परम अहम् व इदम् और वास्तविकता में असामंजस्यपूर्ण संतुलन, अहम् का परम अहम् व इदम् से संघर्ष परन्तु वास्त विकता के साथ सम्बन्ध बना रहता है।	आंशिक रूप से स्वीकृत व्यवहार। गत्यात्मक व ज्ञानात्मक दोनों दृष्टि से व्यवहार विध्वंसात्मक लेकिन इदम् के आवेगों पर नियन्त्रण।	गुदा या लैंगिक अवस्था में प्रतिगमन	वस्तुविहीन या अधिकतम रूप से उभयवृति का होना।	उग्र या तीव्र लक्षण का निर्माण।
मनोवि क्षिप्तता	अहम् परम अहम् व इदम् तथा वास्तविकता में अधिकतम असांमस्य सन्तुलन। अहम् की शक्ति हास होने लगती है तथा इसका वास्तविकता के साथ सम्बन्ध नहीं होता।	सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहार। इदम् सम्बन्धी आवेगों को विकृत रूप से प्रकट होना।	प्रारम्भिक गुदा अवस्था में प्रतिगमन ।	वस्तुविहीन या अधिकतम रूप से उभयवृत्ति होना।	उग्र व तीव्र लक्षणों का निर्माण।

1) मनःस्नायुविकृतियों के सामान्य लक्षण :-

i) चिन्ता एवं भयावह:- अनेक मनोवैज्ञानिकों ने चिन्ता को मनःस्नायुविकृति का प्रमुख लक्षण माना है। रोगी इसमें बिना कारण के ही भयात्मक स्थिति में विविरण करता है। जिसका स्वरूप वास्तविकता से बचाव करने का प्रयास होता है। मनःस्थिति में रोगियों को अधिकतर यह आशंका सताती है कि कहीं मेरे आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व व भय प्रकट न हो जायें। यही कारण है कि रोगी सदैव अनेक कारण भय, जैसे-दुर्घटनाग्रस्त होने, बीमार पड़ जाने व पागल हो जाने आदि से त्रस्त रहता है।

ii) अनुपयुक्ता एवं हीनता:-इन रोगियों का व्यक्ति अपरिपक्व व असन्तुलित हो जाता है। जिसके कारण रोगी अपने को साधारण से साधारण अवस्था में भी अनुपयुक्त समझने लगता है तथा अन्य लोगों की अपेक्षा अपने को हीन समझने लगता है। इस प्रकार से व्यक्तियों में प्रायः दो प्रकार की स्थिति पाई जाती है-

क) या तो वे पूर्ण रूप से दूसरे पर ही निर्भर रहते हैं,

ख) या प्रत्येक कार्य स्वतन्त्र रूप से करना चाहते हैं।

iii) अहं-केंन्द्रता:- प्रायः ये रोगी अपने ही विचारों, भावनाओं आदि में खोए रहने के कारण, जीवन के संघर्षों का सामना एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कठिनाई के साथ कर पाते हैं। दूसरे शब्दों में, ये रोगी मुख्यतः अपनी समस्याओं में उलझे रहते हैं तथा अन्य व्यक्तियों की समस्या से इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है।

iv) तनाव एवं अति-संवेदनशीलताः- क्योंकि ये रोगी आत्म-केन्द्रित होते हैं। छोटे-छोटे संघर्षों तथा चिन्ताओं से सुरक्षा करने के लिए व्यर्थ की चिन्ताओं में लीन रहते हैं, अतः ये व्यक्ति हमेशा एक तनावपूर्ण स्थिति में जीवन-यापन करते हैं। इसमें संवेगशीलता सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होती है तथा बात ही बात में इन्हें गुस्सा आ जाता है।

v) अन्तर्दृष्टि की कमी:- क्योंकि ये छोटे-छोटे संघर्षों का सामना उपयुक्त क्रियाओं से नहीं कर पाते। अतः इनमें मानसिक तनाव, संघर्ष, भय सामना उपयुक्त क्रियाओं से नहीं कर पाते। अतः इनमें मानसिक तनाव, संघर्ष, भय की स्थिति बनी रहती है, जिसके परिणामस्वरूप इनमें सूझ की कमी रहती है, आत्म-संयम, आत्म-निर्भरता आदि का अभाव दिखाई पड़ता है। व्यवहार में स्वाभाविक लोच का अभाव रहने के कारण वह अपने को अत्यन्त निराशाजनक स्थिति में पाता है।

vi) पारस्परिक सम्बन्ध व सामाजिकता की कमी:- रोगी आत्मकेन्द्रित व अनुपयुक्तता से घिरे होने के कारण अन्य व्यक्तियों एवं अनेक सामाजिक परम्पराओं व रीति-रिवाजों के प्रति उदासीन रहता है। क्योंकि उसमें या तो यह भावना रहती है कि स्वतन्त्र रूप से कार्य करे या पूर्ण रूप से दूसरों पर ही निर्भर रहे जिसके कारण अन्य व्यक्ति उससे शीघ्र ही ऊब जाते हैं तथा दूर रहने का प्रयास करते हैं।

vii) थकान और अन्य शारीरिक कष्टः- मानसिक तनाव, चिन्ता, संघर्ष, भय आदि के कारण इसकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति व्यर्थ में ही नष्ट होती रहती है। फलतः वह थकान तथा अन्य शारीरिक कष्ट आदि से पीड़ित रहते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों को पेट सम्बन्धी रोग, सिर-दर्द, शरीर में अस्पष्ट वेदना आदि कष्ट सताते हैं।

viii) अन्य मानसिक लक्षण:- इन रोगियों में उपयुक्त लक्षणों के अलावा अनेक अन्य मानसिक लक्षण, जैसे-परेशानी, असन्तुष्टि, ध्यान की एकाग्रता में कमी आदि भी पाए जाते हैं।

2) मनोविकृतियों के दो प्रमुख सामान्य लक्षण है :-

i) व्यामोह

ii) विभ्रम

i) **व्यामोह:-** व्यामोह झूठे विश्वास होते हैं जिन्हें व्यक्ति सत्य मानता है तथा इसकी असत्यता सिद्ध करने के सभी तर्कों को वह स्वीकार नहीं करता। यद्यपि व्यामोह सामाजिक समायोजन में गम्भीर रूप से बाधक होते हैं। फिर भी व्यक्ति इनसे मुक्त नहीं हो पाता है। इसके निम्न प्रमुख रूप हैं-

1. महानता का व्यामोह
2. दण्डात्मक या उत्पीड़न व्यामोह
3. सन्दर्भ व्यामोह
4. प्रभाव व्यामोह
5. रोगभ्रम व्यामोह
6. पाप व अपराध व्यामोह
7. मिथ्यात्मक व्यामोह

ii) **विभ्रम:-** विभ्रमावस्था में बिना बाह्य स्नायुविक उद्दीपक के रोगी को अनेक प्रकार का प्रत्यक्षीकरण होता है। यह वह स्थिति है जिससे मिथ्या ज्ञान होता है। विभ्रम सभी ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित होता है लेकिन मुख्यतः श्रवण से सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रिय में विभ्रम सभी अधिक होते हैं। रोगी को कभी-कभी अद्रश्य, स्थान या विशिष्ट व्यक्तियों से संदेश या आवाजें सुनाई पड़ती हैं। आवाज के आने तथा दिशा में भी अन्तर पाया जाता है, उसे कभी खिड़की में से आवाज आती हुई प्रतीत होती है तो कभी चारों ओर से आती सुनाई पड़ती है। सुनने सम्बन्धी विभ्रमों के अतिरिक्त द्रश्य, गन्ध, स्वाद आदि से भी सम्बन्धित विभ्रम उत्पन्न होते हैं।

विचार, भाषा आदि में असंगतता:- मनोविकृति में व्यक्ति के विचार, भाषा आदि में संगति नहीं होती। वह अनोखी बातों को कहता है जिसका तार्किक दृष्टिकोण से कोई महत्व नहीं होता। उसका मानसिक जीवन पूर्णतः अस्त-व्यस्त हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है तथा व्यक्ति व्यामोह, विभ्रम आदि का शिकार हो जाता है।

सामूहिकता व सामाजिकता का अभाव:- रोगी के व्यक्तित्व का विघटन व मानसिक जीवन अस्त-व्यस्त होने के कारण उसमें सामाजिक नियमों, रीति-रिवाजों, सामाजिक व्यवहार आदि में असन्तुलन दिखाई पड़ता है। वह ऐसे कार्यों को करता है जो समाज के अनुकूल नहीं होते तथा उनका व्यवहार सामाजिक दृष्टिकोण से काफी चिन्तनीय होता है।

आत्म-भाव व आत्म-व्यवस्था का अभाव:- रोगी कुछ सोच नहीं पाता जिसके कारण वह आत्म-व्यवस्था बनाये रखने में पूर्णतः असमर्थ होता है। वह आत्माहत्या करने तक को तत्पर होता है।

मानसिक अस्पताल की आवश्यकता:- मनोविकृति सरल प्रकार की विकृति नहीं होती बल्कि एक जटिल विकृति है, इसलिए इस प्रकार के रोगियों को घर की अपेक्षा मानसिक चिकित्सालयों में भर्ती कराना चाहिए या घर को ही चिकित्सालय के समान बनाकर रोगी की देखभाल करनी चाहिए।

10.5 सारांश

मानसिक बीमारी एक तरह का विचलन जिसमें व्यक्ति की चिन्तन प्रक्रियाएँ भाव एवं व्यवहार सामान्य प्रत्याशाओं एवं अनुभूतियों से भिन्न होता है। डी.एस.एम. 1994 में मानसिक बीमारी को बहुत ही स्पष्ट एवं वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की गयी है।

मनोस्नायु विकृति से व्यक्तित्व का एक विशेष भाग ही प्रभावित होता है लेकिन मनोविकृति से संपूर्ण व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता है। इनमें विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर अन्तर होता है जैसे- कारणों के दृष्टिकोण से, व्यवहार के दृष्टिकोण से, सामाजिक दृष्टिकोण से, व्यक्तित्व के आधार पर, व्यवस्था एवं चिकित्सा के दृष्टिकोण से, उपचार एवं अवधि के दृष्टिकोण से।

10.6 शब्दावली

- **मानसिक स्वास्थ्य:** मानसिक स्वास्थ्य एक संतुलित मनोदशा की अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति अपने जिन्दगी के विभिन्न हालातों में सामाजिक रूप से सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार बनाए रखता है।
- **व्यामोह:** व्यामोह झूठे विश्वास होते हैं जिन्हें व्यक्ति सत्य मानता है तथा इसकी असत्यता सिद्ध करने के सभी तर्कों को वह स्वीकार नहीं करता।
- **विभ्रम:** विभ्रमावस्था में बिना बाह्य स्नायुविक उद्दीपक के रोगी को अनेक प्रकार का प्रत्यक्षीकरण होता है। यह वह स्थिति है जिससे मिथ्या ज्ञान होता है।

10.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) मानसिक बीमारी या मानसिक स्वास्थ में कौन सी दशा ज्यादा सोचनीय है।
2) मानसिक बीमारी या मानसिक स्वास्थ में किसका आधार जैविक है।
3) मनोस्नायु विकृति तथा मनोविकृति में से किसका उपचार आसान है।

4) मनोस्नायु विकृति तथा मनोविकृति में से किन रोगियों का व्यक्तित्व ज्यादा असमाजिक होता है।
5) मानोविकृति के दो प्रमुख सामान्य लक्षण कौन से है।

उत्तर: 1) मानसिक बीमारी 2) मानसिक बीमारी 3) मनोस्नायुविकृति

4) मनोविकृति 5) (i) व्यामोह (ii) विभ्रम

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान- डा0 अरूण कुमार सिंह
- असामान्य मनोविज्ञान- डा0 डी0एन0 श्रीवास्तव

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानसिक स्वास्य व मानसिक बीमारी में अन्तर स्पष्ट करें।
2. मानसिक बीमारी के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
3. मनोस्नायुविकृति के कारणों का वर्णन कीजिए।
4. टिप्पणी-
   i. मानसिक बीमारी
   ii. मनोविकृति
   iii. मनोस्नायु विकृति तथा मनोविकृति में अन्तर

इकाई-11 चिंता, हिस्टीरिया तथा फोबिया

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 चिंता का स्वरुप
11.4 फोबिया के स्वरूप
11.5 हिस्टीरिया का स्वरूप
11.6 चिंता क्षोभोन्माद के प्रकार
11.7 रूपान्तरित क्षोभोन्माद का स्वरूप
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

एक समय यह कहावत बहुत प्रचलित थी कि आज का युग चिंता का युग है, इस कहावत की प्रासंगिकता में पहले की अपेक्षा आज काफी वृद्धि हो गयी है, यह वास्तविकता है कि आज का युग चिंता का युग है। ऐसा लगता है कि हर आदमी किसी न किसी तरह की चिंता की चपेट में है।

सामान्यतः चिंता का आशय ऐसी मनः स्थिति से है जिसमें व्यक्ति आशंका, असुरक्षा एवं भय की भावना से परेशान रहता है। उसे लगता है उस पर विपत्ति आने वाली है, कोई संकट आ सकता है। इस प्रकार तनावग्रस्त हो जाता है।

चिन्ता विकृति का तात्पर्य व्यक्ति के व्यवहार का अवास्तविक हो जाना है, उसमें अतार्किक भय उत्पन्न हो जाता है या व्यक्ति यह अनुभव करने लगे कि उसमें अयोग्यता आ गयी है। उसको किसी विपत्ति या बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ सकता है। इससे उसका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है। इसे ही चिंता विकृति कहा जाता है। इस अध्याय में हम चिंता विकृति के स्वरूप, प्रकार लक्षण, कारण, उपाय फोबिया के प्रकार, लक्षण, उपाय, हिस्टीरिया के स्वरूप लक्षण, कारण व उपाय का अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद हम निम्न बिंदुओं पर चर्चा करने योग्य हो सकेंगे।

- चिंता के स्वरूप एवं प्रकार की व्याख्या कर सकेंगे।
- असामान्य व सामान्य चिंता के अंतर को समझा सकेंगे।
- चिंता मनस्ताप के लक्षण, कारण व उपचार पर चर्चा कर सकेंगे।
- फोबिया के स्वरूप एवं प्रकार पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- फोबिया के लक्षण, कारण व उपायों को समझाने में सक्षम होंगे।
- हिस्टीरिया के स्वरूप एवं प्रकार की चर्चा कर सकेंगे।
- क्षोभोन्माद के लक्षण, कारण व उपायों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- चिंता क्षोभोन्माद के प्रकार पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- चिंता क्षोभोन्माद के लक्षण, कारण व उपायों की व्याख्या कर सकेंगे।
- रूपान्तरित क्षोभोन्माद के स्वरूप को समझा सकेंगे।
- रूपानतरित क्षोभोन्माद के लक्षण, कारण व उपायों की व्याख्या कर सकेंगे।

11.3 चिंता का स्वरुप

असामान्य मनोविज्ञान में चिंता एवं उससे उत्पन्न मानसिक विकृतियों पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है। चिंता से तात्पर्य डर एवं आशंका के दुख से होता है। इस तरह की चिंता से कई प्रकार की मानसिक विकृतियों की उत्पत्ति होती है। जिसे पहले एक सामान्य नैदानिक श्रेणी अर्थात् स्नायुविकृति या मनोस्नायुविकृति में रखा गया बाद में फ्रायड तथा उसके सहयोगियों ने स्नायुविकृति का उपयोग चिंता से उत्पन्न मानसिक रोगों के लिए किया और आज भी इसका उपयोग करीब - करीब इसी अर्थ में आम रोगों के लिए किया जाता है। स्नायुविकृति में कई तरह की मानसिक विकृतियों को रखा गया। इस इकाई में केवल तीन स्नायुविकृतियों का अध्ययन किया जायेगा।

कोलमैन के अनुसार,''चिंता स्नायुविकृति की प्रमुख विशेषता व्यक्ति में स्वतंत्र दिशाहीन चिंता का होना जो न किसी विशेष पदार्थ या स्थिति से उत्पन्न होती है और न ही उसे उसके विशेष लक्ष्य या स्थिति का ही ज्ञान होता है।''

फिशर के अनुसार,''चिंता स्नायुविकृति में उन आन्तरिक व्यक्तिगत अप्रवेश योग्य कठिनाईयों की प्रक्रिया है जिनका ज्ञान व्यक्ति को नहीं होता है।''

रोसेन और ग्रेगरी के अनुसार,''चिंता मनस्ताप से पीड़ित व्यक्ति बेचैनी, आशंका तथा स्वतंत्र दिशाहीन चिंता का अनुभव करता है, जिसका स्त्रोत वह बता नहीं पाता है।''

चिंता मनस्ताप से पीड़ित व्यक्ति को अपनी चिंता के स्त्रोत का मूल कारण ज्ञात नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति से यदि उसकी चिंता के बारे में पूछा जाये तो वह अनेक तर्कहीन तथा असंगत कारण बताते हुए कहता है कि मेरी चिंता का कारण घाटे की आर्थिक स्थिति, मेरे बच्चे के भविष्य की अनिश्चित स्थिति, मेरे विरोधियों द्वारा उत्पन्न असुरक्षा की स्थिति आदि है। जब इन तर्कों को उसके सम्मुख विश्वासपूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर समझाने का प्रयास किया जाता है कि उसका यह तथ्य बोधगम्य नहीं है, उसकी शंकाओं का आधार काल्पनिक तथा निराधार है। तब वह अपनी चिंता के अन्य स्त्रोत खोजने लग जाता है जबकि वस्तुतः उसकी चिंता का मूल स्त्रोत अचेतन में शैशवकालीन जीवन की विस्मृत इच्छाओं के प्रबल अन्तर्द्वन्द तथा संघर्ष आदि हैं। अचेतन अन्तर्द्वन्द का मुख्य स्त्रोत उसकी कुण्ठाकारक मनोग्रन्थि में निहित है। इसका कारण उसकी चिंता का मूल स्त्रोत अचेतन ही है।

1) चिंता के प्रकार -

फ्रायड के अनुसार चिंता के मुख्य तीन प्रकार है-

i) **विषयपरक चिंता-** इस चिंता को सामान्य चिंता भी कहते हैं। इस चिंता का आधार संबंधित व्यक्ति का सामाजिक परिवेश है जब कभी व्यक्ति का अहं किसी बाहरी भयावह स्थिति का सामना करने में अपने को असमर्थ पाता है तब उसमें भय का संवेग उत्पन्न हो जाता है जो कि स्वभाविक है, जैसे- व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की क्षति, किसी निकटतम प्रिय की बीमारी, अचानक आर्थिक संकट आदि व्यक्ति में चिंता के लक्षण उत्पन्न करते हैं। अतः इन लक्षणों का स्पष्ट कारण बाह्य जगत की वास्तविक स्थितियाँ हैं। ऐसी चिंता के लक्षण अस्थायी होते हैं क्योंकि बाह्य जगत की वस्तुपरक व्याधि टल जाने पर संबंधित लक्षण भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं।

ii) **नैतिक चिंता-** नैतिक चिंता व्यक्ति में इदम की अनैतिक इच्छा की नग्न अभिव्यक्ति के प्रत्याशित व निश्चित कठोर दण्डो की आशंका से उत्पन्न होती है, जिससे व्यक्ति के अहं तथा पराहं को गहरा नैतिक आघात पहुँचाता है क्योंकि ऐसा व्यक्ति इदम के आवेग की अभिव्यक्ति के लिए प्रारम्भिक जीवन की कटु स्मृति की पुनरावृत्ति से अत्यधिक डरता है तथा बचना चाहता है क्योंकि व्यक्ति की ऐसी स्थिति आत्म-भर्त्सना, लज्जा तथा उसकी अन्तरात्मा के कचोटते रहने के भय के रूप में उसे निरन्तर सताती रहती है।

iii) **तंत्रिकातापी चिंता-** तंत्रिकातापी चिंता का स्त्रोत बाह्य जगत न होकर स्वयं व्यक्ति का अचेतन संघर्ष है। व्यक्ति दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति से अत्यन्त भयभीत रहता है। जब व्यक्ति दमित इच्छा के प्रबल वेग को रोकने में अपने को असमर्थ पाता है और साथ ही वास्तविक परिणामों

का सामना करने से घबराता है, तो इस स्थिति में वह व्यक्ति अचेतन से पीड़ित हो जाता है। तंत्रिकातापी चिंता को स्वतन्त्र दिशाहीन चिंता भी कहते हैं।

मानसिक चिकित्सालयों में तंत्रिकातापी चिंता से पीड़ित रोगियो की संख्या लगभग 30-40 प्रतिशत तक देखने में आती है। ऐसे रोगी प्रायः उच्च सामाजिक स्तर वाले होते हैं। इनमें से अधिकांश की बुद्धि लब्धि तथा आकांक्षा स्तर भी उच्च होता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि चिंता एक ऐसी मानसिक दशा है जिसमें-

1. व्यक्ति दुख की आशंका करता है।
2. उसमें बेचैनी उत्पन्न होती है।
3. इसका संबंध भय से हो सकता है।
4. व्यक्ति में असामान्य लक्षण प्रदर्शित हो सकते हैं।
5. व्यक्ति कुसमायोजन का शिकार हो सकता है।
6. उसे पसीना आ सकता है।
7. वह अत्यधिक सतर्कता प्रदर्शित कर सकता है।
8. निंद्रा व्यवधान, ध्यान में कमी तथा कंपकपी के लक्षण आते हैं।

डी0 एस0 एम0 IV में चिंता विकृति के निम्नांकित छः प्रमुख प्रकार बतलाये गये हैं-

1. दुर्भीति
2. भीशिका विकृति
3. सामान्यीकृत चिंता विकृति
4. मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति
5. उत्तर अघातीय तनाव विकृति
6. तीव्र तनाव विकृति

2) सामान्य व असामान्य चिंता में अन्तर -

जैसा कि हम जानते हैं कि सभी व्यक्ति किसी न किसी चिंता से ग्रस्त रहते हैं क्योंकि प्रत्येक वस्तु के सम्मुख संघर्ष व तनाव होते रहते हैं। यही कारण है कि व्यक्ति का चिंतित रहना एक स्वभाविक गुण है।

जैसे बच्चे की बीमारी का सुनकर माँ-बाप चिंतित हो जाते हैं लेकिन अगर डाक्टर विश्वास दिला दे कि उनका बच्चा एक विशेष दवाई से ठीक हो जाएगा तो उसकी चिंता दूर हो जाती है या

कम हो जाती है तो यह सामान्य चिंता है परन्तु बिना किसी बीमारी के चिंता उत्पन्न हो तो वह चिंता के अन्तर्गत आयेगी।

असामान्य चिंता का संबंध भविष्य से होता है, सामान्य चिंता वस्तुगत होती है जिसका संबंध वर्तमान से होता है।

3) **चिंता मनस्ताप के लक्षण-** चिंता मनस्ताप के रोगियों में मुख्यतः निम्नांकित शारीरिक लक्षण पाये जाते हैं-

शारीरिक लक्षण:

1. सामान्य- शरीर का वजन घट जाना
2. हृदय धमनी- दिल की धड़कन बढ़ जाना, नाड़ी की गति में स्पष्ट व्यतिक्रम रहना मूर्छा व सिर में भारीपन रहना।
3. स्वास्थ्य- हवा की कमी या घुटन का अनुभव।
4. त्वचीय- हथेली में पसीना आना या रात में अधिक पसीन आना।
5. आमाशय- भूख न लगना, मुंह सूखना, मिचली आना, बार-बार लघुशंका जाना, थकान, नींद न आना, घबराहट आदि।

इसके अतिरिक्त साधारण ध्वनि के प्रति अत्यधिक संवेदनशील रहना, नकारात्मक व निराशाजनक हो जाना, पैरों का लड़खड़ाना आदि।

चिंता मनस्ताप के रोगियों में कुछ मानसिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं-

मानसिक लक्षण:

1. चिंता- रोगी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण स्थायी चिन्ता है यह चिंता दीर्घकालीन होती है, जो कभी-कभी उग्र रूप धारण कर लेती है।
2. चिंता के दौरे - चिंता के दौरे रोगी में अचानक उत्पन्न होते हैं। दौरे की अवधि में रोगी में अनेक लक्षण जैसे दिल बैठना, सांस लेने में कठिनाई, चक्कर आना, भय आदि उत्पन्न हो जाते हैं। ''रोगी चीखकर लोगों को एकत्र करने का प्रयास करता है वह कहता है मैं मर रहा हूँ मेरा दम घुट रहा है या कोई भयानक घटना घटित होने वाली है आदि।'' ऐसे दौरे एक दिन में कई-कई बार पड़ते हैं। इन दौरों के पड़ने का समय तथा आवृत्तियाँ निश्चित नहीं है।
3. अन्तः वैयक्तिक संबंध- चिंता मनस्ताप का रोगी अन्तः वैयक्तिक संबंधों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है।
4. अनुभव- चिंता मनस्ताप का रोगी सदैव अपने को अनुपयुक्त समझता है तथा उसे सदा हल्का विषाद रहता है।

5. स्वप्न- रोगी सोते समय भूत तथा भविष्य की चिन्ताओं में उलझा रहता है। इसलिए वह स्वप्न में गोली लगने, दुर्घटना होने, गला घोटने जैसे स्वप्न देखता है।

4) चिंता मनस्ताप के कारण- चिंता मनस्ताप रोगी की चिंता सामान्य व्यक्ति की चिंता की अपेक्षा अधिक असंगत होती है। फ्रायड का विचार है कि चिंता मनस्ताप का कारण दमित इच्छाएँ हैं। जब दमित इच्छाएँ चेतन मन से अचेतन मन में पहुँचने का प्रयास करती है तो चेतन और अचेतन के बीच की स्थिति सेंसर हो जाती है। व्यक्ति ऐसी कठोर स्थिति को सहन नहीं कर पाता है। अतः व्यक्ति में चिंता मनस्ताप के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी को अपनी चिंता का कारण ज्ञात नहीं होता है और दमित इच्छाएँ चेतन स्तर तक पहुँच नहीं पाती हैं।

चिंता मनस्ताप के निम्न कारण हैं-

1. अल्पायु के विक्षेपकारी अनुभव- कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि प्रौणावस्था में अल्पावस्था के अनेक लक्षण रोगी में प्रकट होते हैं जिनका उसे ज्ञान नहीं होता है। रोगी चिंता तथा भय के लक्षणों से खुद को घिरा पाता है।
2. कामवासना का दमन- फ्रायड ने चिंता मनस्ताप का कारण कामवासना का दमन तथा अन्तर्द्वन्द को माना है। फ्रायड का मत है चाहे पुरूष हो या स्त्री यदि उसमें अत्यधिक कामवासना है और वह उसकी संतुष्टि नहीं कर पाता है तो वह दमित हो जाती है। दमित हो जाने पर में इच्छाएँ अन्तर्द्वन्द उत्पन्न करती है जो चिंता मनस्ताप का कारण बनती है।
3. आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति का दमन- एडलर ने आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति के दमन को चिंता मनस्ताप का कारण माना है। जब व्यक्ति में आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है और वह उसकी पूर्ति नहीं कर पाता है, तो उसका दमन करता है। दमन ही व्यक्ति में चिंता उत्पन्न करता है।
4. मानसिक संघर्ष व विफलता- ओकेली का कहना है कि मानसिक संघर्ष व विफलता किसी भी कारण से उत्पन्न हो सकती है। इसका संबंध लैंगिक वासना से भी हो सकता है दो संवेग भी संघर्ष उत्पन्न कर सकते हैं, जो व्यक्ति में चिंता उत्पन्न करते हैं।

इसके अतिरिक्त कोलमैन ने कुछ ऐसे अन्य कारणों का भी वर्णन किया है जो इस रोग में सहायक होते हैं-

1. **प्रतिष्ठा की आशंका-** इन रोगियों में असुरक्षा की भावना निहित हेती है। इन्हें निरन्तर यह आशंका बनी रहती है कि उनकी प्रतिष्ठा तथा वर्तमान स्थिति को कोई हानि पहुँचा रहा है। यदि उनके उद्देश्यों को थोड़ी सी भी बाधा पहुँचती है तो वह विचलित हो उठते हैं। कोलमैन में एक 34 वर्षीय डाक्टर का वर्णन किया है जिसने दस वर्ष तक सफलतापूर्व चिकित्सा की, अन्तिम वर्षों में उसकी आमदनी कुछ कम हो गयी। उस समय हल्के प्रकार के दौरे पड़ने लगे। तब उसने

अपने कार्य करने का समय बढ़ा दिया परंतु फिर भी उसकी चिंता कम नहीं हुई। अन्त में वह मनोचिकित्सक के पास गया जहाँ उसे ज्ञात हुआ कि उसमें प्रारम्भिक अवस्था में स्थायी असुरक्षा विद्यमान थी। वह अपने माता-पिता द्वारा तिरस्कृत किया गया था। तिरस्कार के कारण उसमें हीनता तथा अनुपयुक्तता की भावना का जन्म हुआ था।

2. **इच्छा व्यक्त होने की आशंका-** यदि व्यक्ति की अचेतन की इच्छा व्यक्त होने की संभावनाएँ बढ़ जाती है, जिससे उसकी नैतिक व सामाजिक प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचने की आशंका होती है, तो वह किसी भी कीमत पर सामाजिक प्रतिष्ठा को नहीं त्यागता है। इस प्रकार की इच्छाओं को वो चेतन से दिवास्वप्न एवं कल्पना तरंग के माध्यम से पूर्ण करता है। इस प्रकार वह उनकी अभिव्यक्ति अप्रत्यक्ष ढंग से करता है। रोगी में जब कभी उनके उत्पन्न होने की संभावनाएँ तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, तो वह चिंता मनस्ताप से ग्रस्त हो जाता है।
3. **अपराध की भावना-** चिंता मनस्ताप का कारण अपराध तथा दण्ड का भय भी है। इन रोगियों में अनुपयुक्तता तथा व्यर्थ की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्ति से घृणा करते हैं, जिससे उनमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है। इन रोगियों की अपराध भावना चिन्ता मनस्ताप के लक्षणों के रूप में व्यक्त होती है। डार्लिंग ने एक विद्यार्थी का विवरण प्रस्तुत किया है जिसे चिंता के अति तीव्र दौरे पड़ते थे। कारण खोजने पर ज्ञात हुआ कि उससे एक कार दुर्घटना हो गयी थी जिससे एक बालक की मृत्यु हो गयी थी। विद्यार्थी को यह दुर्घटना याद नहीं थी। विद्यार्थी ने इस घटना को अचेतन मन में दमन कर लिया था। इस कारण उसे चिंता के अति तीव्र दौरे पड़ते थे।
4. **चिंता उत्पन्न करने वाले निर्णय-** ऐसे रोगी अहंशक्ति की कमी के कारण निर्णय लेने में कठिनाई अनुभव करते हैं। नैतिक मूल्यों से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द प्रतिष्ठा तथा आत्म सुरक्षा के खतरे में पड़ने की आशंका से उत्पन्न अंतरद्वंद व्यक्ति में तीव्र चिनता उत्पन्न करता है जिससे वे निर्णय लेने में अपने को असमर्थ पाता है। कोलमैन ने एक व्यवसायी अफसर के केस का वर्णन किया जिसे दूसरे या तीसरे माह में दौरा पड़ता था। उस व्यक्ति को जब मनोचिकित्सक द्वारा ज्ञात हुआ कि बाल्यावस्था में वह एक निर्धन बालक था उसका बचपन असुरक्षित था। वह हीन भावना से ग्रस्त था। कालेज में पढ़ते हुए जब वह परीक्षा में असफल हुआ तो उसकी असुरक्षा व हीनता की भावना और प्रबल हो गई उसने अपने को सुरक्षित बनाने के लिए 8 वर्ष बड़ी स्त्री से विवाह किया। कुछ दिनों पश्चात उसे उस स्त्री को तलाक देने की इच्छा हुई क्योंकि वह व्यक्ति कम आयु की स्त्रियों में रूचि लेने लगा था। इसी बीच उसकी भेंट एक कम आयु की स्त्री से हुई। जिससे वह प्रेम करने लगा। इस प्रेम के बाद उसे चिन्ता के दौरे पड़ने लगे। उसकी चिंता के दौरों का कारण उसका तलाक देने का निर्णय था।
5. **पूर्व आघातों की पुनः सक्रियता-** प्रारम्भिक जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी होती है जो पुराने घावों को हरा कर देती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति में चिंता मनस्ताप के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कोलमैन ने एक रोगी का वर्णन किया है जो अपने पिता से बहुत स्नेह करता है परंतु उसका पिता

उसको सदैव आलोचना करता हुआ दिखाई देता है। जिससे वह परेशान होकर घंटो रोता था। एक दन उसे नौकरी मिल जाती है। उसका सुपरवाइजर उसकी बड़ी प्रशंसा करता है। वह खुश रहता है। कुछ दिनों बाद नया सुपरवाइजर आ जाता है उसका स्वभाव आलोचनात्मक है। नया सुपरवाइजर कर्मचारी की अत्याधिक आलोचना करता है जिससे उसके पुराने घाव हरे हो जाते है और उसमें चिंता तथा बेचैनी के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कर्मचारी छुट्टी लेकर घर चला जाता है। चिन्ता और बेचैनी के कारण किसी भी कीमत पर काम पर नहीं आना चाहता है।

5) **उपचार-** चिंता मनस्ताप के रोगियों को प्रशान्तक औषधियों द्वारा तात्कालिक आराम दिया जा सकता है। परंतु उनकी जीवनशैली को इन औषधियों द्वारा बदला नहीं जा सकता है। चिंता मनस्ताप के रोगियों के उपचार के लिए दो विधियों का प्रयोग आवश्यक है-

1- मनोविश्लेषण 2- समूह चिकित्सा

चिकित्सक को रोगी के सम्मुख ऐसी अनुकूल प्रमुख परिस्थितियाँ उपस्थित करनी चाहिए जिससे वह अनुकूल प्रतिक्रिया करके अपनी चिंता का समाधान कर सके। रोगी को सवस्थ वातावरण में रखकर पुर्नशिक्षित करना चाहिए जिससे वह चिंता से अपने आप को बचा सके।

चिंता मनस्ताप के रोगियों को साधारण उपचार द्वारा ठीक किया जा सकता है। इनकी चिंता के कारणों का लंबे समय तक उपचार करके उन्हें पुनः समायोजन के योग्य बनाया जा सकता है।

11.4 फोबिया का स्वरूप

सामान्य व असामान्य (दुभीर्ति) भय में अन्तर होता है। सामान्य खतरनाक परिस्थितियों में उचित प्रतिक्रिया करता है क्योंकि यह भय का एक कारण होता है जिसे वह समझता है। जैसे जो व्यक्ति एक बार पानी में डूबने से बच जाता है तो वह पानी से डरता है। परंतु दुर्भीति से भय का कोई भी उचित कारण नहीं होता है ये भय निराधार होते हैं। रोगी इस प्रकार के भय का कारण नहीं जानता है और न ही वह सामान्य व्यक्ति के समान इन भय के प्रति प्रतिक्रिया करता है।

वीटेन एवं लायड (2003) के अनुसार, दुर्भीति विकृति में किसी वस्तु या परिस्थिति से सम्बन्धित सतत् एवं अतार्किक भय पाया जाता है जिससे वास्तव में कोई खतरा नहीं है।

सेलिगमैन एवं रोजेनहान (1998) ने दुर्भीति को इस प्रकार परिभाषित किया है- ''दुर्भीति एक सतत् डर प्रतिक्रिया है जो खतरे की वास्तविकता के अनुपात से परे होती है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि दुर्भीति की दशा में प्रभावित व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु या परिस्थिति से डरने लगता है जिससे उसे वास्तव में कोई खतरा या नुकसान की संभावना नहीं है

दुर्भीति विकृति के कारण व्यक्ति का व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है जैसे यदि किसी को ऊँचे स्थान से भय है तो वह उधर नहीं जाना चाहेगा यदि उसे दबाब में वहा ले भी जाया जाये तो उसमें तनाव, घबराहट एवं कंपकंपी आदि के लक्षण दिखाई पड़ सकते हैं।

a) फोबिया के प्रकार-

दुर्भीति के कई प्रकार है। इन सभी दुर्भीतियों के मुख्य तीन प्रकार बतलाये गये है जो इस प्रकार है-

1. विशिष्ट दुर्भीति
2. एगोरा दुर्भीति
3. सामाजिक दुर्भीति

इन तीनों का वर्णन इस प्रकार है-

i) **विशिष्ट दुर्भीति-** विशिष्ट दुर्भीति एक ऐसा असंगत डर होता है जो विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति की उपस्थिति का उसके अनुमान मात्र से ही उत्पन्न होता है जैसे बिल्लियों, मकड़ो, कॉकरोच, आदि से डरना। संपूर्ण दुर्भीति का करीब 3% दुर्भीति, विशिष्ट दुर्भीति होती है जिन्हें मूलतः निम्नांकित चार प्रमुख भागों में बांटा गया है।

a. पशु दुर्भीति- इसमें रोगी विशेष तरह से कुछ कारणों से असंगत ढंग से डरने लगता है। यही अधिकतर महिलाओं में पाया जाता है तथा इसकी शुरूआत बाल्यावस्था से होती है। प्रमुख पशु दुर्भीति निम्न हैं-

बिल्ली से	-	एलूरोफोबिया
कुत्ते से	-	साइनोफोबिया
कीट-मकोड़े से	-	इन्सैक्टोफोबिया
चिड़िया से	-	एबिसोफोबिया
घोड़ो से	-	इक्यूनोफोबिया
सांप से	-	ओफिड़योफोबिया
जीवाणुओं से	-	माइसोफोबिया

b. आजीवित वस्तु से- इसमें व्यक्ति आजीवित वस्तुओं से असंगत भय दिखाता है जैसे अंधेरा, गंदगी आदि से यह पुरूष व महिला दोनों में समान होती है यह किसी भी उम्र में हो सकती है। इसके प्रमुख प्रकार निम्नांकित है-

आंधी तूफान से	-	ब्रोनेटोफोबिया
ऊँचाई से	-	एक्रोफोबिया
अंधेरे से	-	नाइक्टोफोबिया
बंद जगहो से	-	क्लाउस्ट्रोफोबिया
अकेलेपन से	-	मोनोफोबिया
आग से	-	पायरोफोबिया
भीड़ से	-	आकलोफोबिया
हवाई जहाज से यात्रा का डर	-	एबियोफोबिया

c. बीमारी एवं चोट से- इस तरह की दुर्भीति में व्यक्ति जिन बीमारियों से डरता है उनसे इतना डरने की बात नहीं होती है। इस तरह के असामान्य डर से उसमें कुछ डर जैसे छाती में दर्द, पेट में दर्द आदि जिससे वह समझता है कि उसमें अमुक रोग हो जायेगा। इस तरह की दुर्भीति की शुरूआत सामान्यतः मध्य आयु में होती है। इस तरह की दुर्भीति को नोसोफोबिया कहा जाता है जिसके विशिष्ट सामान्य प्रकार कुछ इस तरह से है।

मृत्यु से डर	-	थैनेटोफोबिया
कैंसर से डर	-	कैंसरोफोबिया
यौन रोगों से डर	-	वैनेरियोफोबिया

d. रक्त दुर्भीति- इस तरह की दुर्भीति में रोगी को उन परिस्थितियों से असंगत भय लगता है जिसमें उसे रक्त देखने को मिलता है। इसी दुर्भीति के कारण वे मेडिकल जांच आदि से दूर भागते हैं। सामान्य जीवसंख्या का करीब 4 प्रतिशत लोगों में रक्त दुर्भीति सामान्य मात्रा में पाया गया है। क्लिनकेनेचट् (1994) में अनुसार रक्त दुर्भीति महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा अधिक होती है और इसकी शुरूआत अक्सर उत्तर बाल्यावस्था में होती है।

e. एगोरा दुर्भीति- 'एगोराफोबिया' का शाब्दिक अर्थ भीड़-भाड़ या बाजार स्थलों से डर होता है परन्तु वास्तविकता यह है कि एगारोफोबिया में कई तरह के डर सम्मिलित होते हैं जिसका केन्द्र बिन्दु आम या सार्वजनिक स्थान ही होता है। जहाँ से व्यक्ति को विश्वास होता है कि किसी तरह की घटना या दुर्घटना होने पर न तो कोई बचाव संभव है और न

कोई बचाने के लिए आ सकता है। दुर्भीति रोगियों में से करीब 60 प्रतिशत रोगी एगारोफोबिया के ही होते हैं। यह महिलाओं में अधिक होता है तथा इसकी शुरूआत प्रायः किशोरावस्था तथा आरंभिक व्यवस्था में होती है।

f. सामाजिक दुर्भीति- सामाजिक दुर्भीति वैसे दुर्भीति को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति की उपस्थिति का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में यह डर बना रहता है कि उसका मूल्यांकन लोग करेंगे इसे 'सामाजिक चिंता विकृति' भी कहा जाता है।

b) फोबिया के प्रमुख लक्षण-

दुर्भीति (फोबिया) पर जो अध्ययन हुए है उनके आधार पर इसके प्रमुख लक्षण निम्नांकित है:-

1) सतत् तथा अतार्किक भय की उत्पत्ति।
2) वास्तविक खतरा न होने पर भी भय का प्रदर्शन।
3) व्यक्ति भय सम्बन्धी वस्तु से दूर रहना चाहता है।
4) व्यक्ति जिससे भयग्रस्त है, उसका सामना होने पर और भी भयग्रस्त हो जाता है।
5) दुर्भीति का कारण स्पष्ट रहता है परंतु वह वास्तव में खतरा नहीं होता है।
6) व्यक्ति संभावित खतरे से कहीं अधिक खतरा अनुभव करता है।
7) दुर्भीति तीव्र हो जाने पर दैनिक जीवन में समायोजन बहुत कठिन हो जाता है।
8) कंपकंपी एवं पसीने का प्रदर्शन हो सकता है।
9) व्यक्ति किसी मुद्दे पर निर्णय नहीं ले पाता है वह डरता कि कहीं उसका फैसला गलत परिणाम न दे दे।
10) रोगी में विषाद के लक्षण तथा सामाजिक संबंधो में कठिनाई प्रदर्शित हो सकती है।

कुछ रोगियों में तो निर्णय लेने में भी काफी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है जिसे कॉफमैन ने (1973) व्यंग्यात्मक लहजे में निर्णय दुर्भीति कहा है।

c) फोबिया के कारण- दुर्भीति के उत्पत्ति के कारणों पर मनोवैज्ञानिकों तथा मनश्चिकित्स्कों द्वारा काफी गहन रूप से अध्ययन किया गया है और उन अध्ययनों से मिले तथ्यों पर यदि विचार करे तो यह स्पष्ट होगा कि दुर्भीति के निम्नांकित 4 प्रमुख सिद्धांत या कारक हैं जिसमें उनकी व्याख्या अलग-अलग ढंगों से की गयी है।

1. जैविक सिद्धान्त

2. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

3. व्यवहारपरक सिद्धान्त

4. संज्ञानात्मक सिद्धान्त

i) **जैविक सिद्धान्त-** एक ही तनाव वाली परिस्थितियों में होने पर कुछ व्यक्तियों में दुर्भीति उत्पन्न हो जाती है व कुछ में नहीं। इसका कारण यह बतलाया गया है कि जिन व्यक्तियों में यह उत्पन्न होती है उनमें कुछ जैविक दुश्कार्य होता है जो उनमें तनावपूर्ण परिस्थिति के बाद दुर्भीति उत्पन्न करता है। इस क्षेत्र में किये गये शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि निम्नांकित दो क्षेत्रों से संबद्ध जैविक कारक महत्वपूर्ण है-

a. स्वायत्त तंत्रिका तंत्र- कुछ अध्ययनों में इस बात के सबूत मिले है कि दुर्भीति उन व्यक्तियों में अधिक होती है जिनका स्वायत्त तंत्रिका तंत्र कई तरह के पर्यावर्णी उद्दीपकों से बहुत ही जल्द उत्तेजित हो जाता है इस तरह के स्वायत्त तंत्रिका तंत्र स्वायत्त अस्थिरता कहा जाता है गावे 1992 के अनुसार स्वायत्त अस्थिरता बहुत हद तक वंशानुगत रूप से निर्धारित होती है। अतः व्यक्ति की अनुवांशिकता की दुर्भीति उत्पन्न होने में अहम भूमिका होती है।

b. अनुवांशिक कारक- कुछ ऐसे अध्ययन हुए हैं जिनसे यह स्पष्ट सबूत मिलता है कि दुर्भीति होने की संभावना उन व्यक्तियों में अधिक होती है जिसके माता-पिता तथा तुल्य सम्बन्धियों में इस तरह का रोग पहले हो चुका हो।

टॉरग्रेसेन (1983) ने अपने अध्ययन में पाया कि एकांगी जुड़वा बच्चों में भ्रांतीय जुड़वा बच्चों की तुलना में एगोराफोबिया की सुसंगतता दर अधिक होती है।

ii) **मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त-** दुर्भीति के कारणों की व्याख्या मनोविश्लेषणात्मक कारकों के रूप में की गयी है। फ्रायड के अनुसार दमित उपाह इच्छाओं से उत्पन्न चिन्ता के प्रति रोगी द्वारा अपनाई गयी दुर्भीति एक सुरक्षा होती है। यह चिंता डर उत्पन्न करने वाले उपाहं की इच्छाओं से विस्थापित होकर किसी वैसी वस्तु या परिस्थिति से संबंधित हो जाता है जो इन इच्छाओं से किसी न किसी ढंग से जुड़ा होता है। वह वस्तु या परिस्थिति जैसे बंद स्थान, ऊँचाई, कीड़े-मकोड़े आदि तब व्यक्ति के लिए दुर्भीति उत्पन्न करने वाले उद्दीपक हो जाते हैं। उनसे दूर रहकर व्यक्ति अपने आपको दमित संघर्ष से बचाता है।

iii) **व्यवहारपरक सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति में दुर्भीति उत्पन्न होने का मुख्य कारण दोषपूर्ण सीखना होता है। यह दोषपूर्ण सीखने तीन तरह के कारकों से होता है-

a. परिहार अनुबंधन-नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि उपचार ग्रह में आये रोगियों में यह देखा गया कि किसी विशिष्ट वस्तु से विकसित दुर्भीति प्रायः उस वस्तु से उत्पन्न दर्द भरी अनुभूतियों से ही प्रारम्भ हुयी है जैसेः स्कूटर से दुर्घटना हो जाने पर कुछ लोगों में

सिर्फ स्कूटर नहीं बल्कि सभी तरह के दो पहिया, तीन पहिया, तथा चार पहिया वाहनों के चलाने के प्रति उनमें असंगत डर उत्पन्न हो जाता है।

b. माडलिंग- माडलिंग के अनुसार दुर्भीति व्यक्ति में दूसरों के व्यवहार का प्रेक्षण करके या उसके बारे में दूसरों से सुनकर विकसित होती है। प्रेक्षण द्वारा इस तरह के सीखने को स्थानापन्न सीखना या प्रेक्षणात्मक सीखना भी कहा जाता है।

c. धनात्मक पुनर्बलन- दुर्भीति का विकास व्यक्ति में धनात्मक पुनर्बलन के आधार पर भी होता है जैसे मान लिया जाये कि कोई बच्चा स्कूल जाने के डर से माता-पिता के सामने कुछ ऐसा बहाना बनाता है जिसे सुनकर वे उसे स्वीकार कर लेते हैं और स्कूल नहीं जाना पड़ता है तो यहां माता-पिता द्वारा बच्चे को स्कूल नहीं जाने के लिए सीधा धनात्मक पुनर्बलन मिल रहा है। इसका परिणाम यह होगा कि बच्चा भविष्य में डर कर स्कूल न जाने की अनुक्रिया को सीख लेगा। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि धनात्मक पुनर्बलन से भी व्यक्ति में डर या दुर्भीति उत्पन्न होती है।

iv) **संज्ञानात्मक सिद्धान्त-** दुर्भीति के विकास में कुछ संज्ञानात्मक कारकों की भी अहम भूमिका रही है। दुर्भीति विकृति से ग्रस्त व्यक्ति जान-बूझकर परिस्थितियों को या उनसे मिलने वाली सूचनाओं को इस ढंग से संसाधित करते हैं कि उससे उनका दुर्भीति और मजबूत हो जाती है। इस तरह से दुर्भीति के उत्पन्न होने तथा उसे संपोषित होने में एक तरह का संज्ञानात्मक पूर्वाग्रह होता है।

गोल्डफ्रिड़ (1984) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि ऐसे लोग सामाजिक परिस्थिति में होने वाले मूल्यांकन को लेकर अधिक चिंतित रहते हैं। वेट्स (1950) के अनुसार ऐसे लोग दूसरों के मन में अपने बारे में उत्पन्न होने वाली प्रतिमा का अधिक ख्याल रखते है।

d) फोबिया के उपचार- दुर्भीति के रोगियों के उपचार के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है। किस प्रकार के ढंग से दुर्भीति के रोगियों का उपचार किया जाये, उसका निर्धारण इस बात पर होता है कि इसे उत्पन्न करने वाली कौन-कौन सी स्थितियाँ थी तथा उनका स्वरूप क्या था? वैसे तो रोगी यह समझता है कि उसका भय असंगत व अतार्किक है परंतु यदि उसमें और अधिक साहस व विश्वास उत्पन्न किया जाये तो उसे भयात्मक स्थिति के करीब जाने से बचाया जा सकता है। मुक्त साहचर्य विधि से वह अपनी स्थिति के बारे में बता सकता है। अगर दुर्भीति से व्यक्ति अपनी चिंता को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करता है तो इस स्थिति में रोगी की स्थितियों व व्यक्तित्व संरचनाओं का ज्ञान प्राप्त करके मनोचिकित्सा का उपयोग करना चाहिए। जिस रोगी में अनेक प्रकार के दुर्भीति के लक्षण पाये जाये उनके उपचार के लिए आत्मनिर्देशन तथा आत्म पुनर्बल कल्पनात्मक का उपयोग करना चाहिए। निर्देशन तथा आत्म-पुनर्बल कल्पनात्मकता का उपयोग करना चाहिए।

दुर्भीति के उपचार की कई विधियाँ भी हैं जिनके आधार पर दुर्भीति का उपचार किया जा सकता है-

1) जैविक उपचार
2) मनोविश्लेषणात्मक उपचार
3) व्यवहारपरक उपचार

11.5 हिस्टीरिया का स्वरूप

प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख कुछ जिम्मेदारियाँ या समस्याएँ होती हैं। जब वह जीवन की इन समस्याओं का सामना नहीं कर पाता और असमर्थ व असफल हो जाता है तो निराश होकर ऐसी क्रियाएँ करने लगता है जो अस्वभाविक व असम्बन्धित होती है। वह परेशान होकर गिर जाता है, दौरे पड़ने लगते हैं या भय के कारण लकवा मार जाता है। ये सब हिस्टीरिया या क्षोभोन्माद की प्रतिक्रियाएँ है। फ्रायड के अनुसार क्षोभोन्माद का कारण अचेतन रूप से चित्तीय अभिघात है।

1) **हिस्टीरिया (क्षोभोन्माद) के प्रकार-** प्रायः क्षोभोन्माद को तीन प्रकार से बांटा गया है-
   i) **क्षोभोन्माद-** इस प्रकार में रोगी रोने या हंसने से सम्बन्धित अनियन्त्रित संवेगों का प्रदर्शन करता है।
   ii) **चिन्ता क्षोभोन्माद-** चिन्ता क्षोभोन्माद में रोगी में आकुलता व्यग्रता व चिंता प्रायः स्थायी रूप से बनी रहती है।
   iii) **रूपान्तरित क्षोभोन्माद-** इस प्रकार में मानसिक अन्तर्द्वन्द, शारीरिक लक्षणों में रूपान्तरित हो जाते हैं, अर्थात रोगी किसी प्रकार की शारीरिक बीमारी से ग्रस्त होता है परन्तु उसके कारण उसके शरीर में खोज करने पर भी प्राप्त नहीं होता।

2) **क्षोभोन्माद के लक्षण-** इसमें शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं। कुछ लक्षण स्थायी एवं कुछ अस्थायी होते हैं जो निम्न प्रकार के हैं-
   a) <u>शारीरिक लक्षण:</u>

i. असंवेदनात्मक असामर्थ्य- क्षोभोन्माद के रोगियों में वेदना, स्पर्ष व तापक्रमीय संबंधी संवेदनाओं का आभाव देखा जाता है जिसके कारण रोगी इन संवेदनाओं के प्रति कोई भी प्रतिक्रियाएँ नहीं कर पाता तथा कभी-कभी शरीर के आधे भाग में और कभी-कभी संपूर्ण शरीर या विभिन्न अंगों में संवेदनहींनता प्रकट होने लगती है। कभी-कभी रोगी को विकृत संवेदनाएँ भी होती हैं जैसेः दृष्टि संबंधी विकृतियाँ, बहरापन में हास आदि।

ii. गत्यात्मक असमर्थता- क्षोभोन्माद के रोगी में पक्षाघात या अंगघात भी आ जाते हैं, कभी-कभी वह सीधा खड़े होने व चलने में असमर्थ सा हो जाता है। क्षोभोन्माद के रोगी में आन्तरिक

क्रियाओं में अंतर आ जाता है जैसे: सांस लेने की प्रक्रिया में गड़बड़ी, नाड़ी गति में तीव्रता, अत्यधिक पसीना, चेहरे व त्वचा का बदरंग हो जाना, शर्म से मुंह लाल होना, भूल की कमी, आदि।

b) मानसिक या मनोवैज्ञानिक लक्षण:

i. निद्राभ्रमण- इसमें रोगी नींद में ही उठकर अचेतन रूप से ऐसे अनेक जटिल कार्य व व्यवहार करता है जिसकी स्मृति उसे जाग्रतावस्था में नहीं होती। सामान्य रूप से रोगी सोता है तथा रात्रि में बिना जागे बिस्तर से उठकर अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है तथा पुनः अपने बिस्तर पर जाकर सो जाता है। सुबह उसे रात्रि में की गई क्रियाओं के बारे में कुछ याद नहीं रहता|

ii. आत्मविस्मृति-आत्मविस्मृति का लक्षण भी पाया जाता है क्षोभोन्माद के रोगी में। इस लक्षण के कारण रोगी असह्य संवेदनात्मक अनुभव व व्यक्तिगत किंठनाईयों, नाम, पता, व्यवसाय व प्रियजनों के सम्बन्ध आदि को ही भूल जाता है।

iii. स्मृति लोप- स्मृति लोप के दौरे का काल प्रायः तीन घण्टे एक माह तक चलता है। परंतु रोगों की पूर्ण रूप से विस्मृति नहीं होती है क्योंकि उसे दूसरे से सम्बद्ध बातें, सामाजिक, आचार-विचार, संस्कृति आदि की स्मृति होती है अतः रोगी एक सामान्य व्यक्ति ही लगता है। केवल कुछ दुखद संवेगात्मक स्थितियों से बचने के लिए ही स्मृतिलोप का सहारा लेता है।

iv. संवेगात्मक अस्थिरता व मूर्च्छा- क्षोभान्माद के रोगी में संवेगात्मक अस्थिरता व मूर्च्छा के लक्षण पाये जाते हैं। वह रोता है, चिल्लाता है, हंसता है, आक्रमण करता है, दांत काटता-पीसता है, कभी-कभी शरीर को नोंचना या कपड़े फाड़ना आदि क्रियाएँ करता है। ये सब क्रियाएँ संवेदनात्मक अस्थिरता को प्रदर्शित करती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मूर्छित भी हो जाता है जिसे क्षोभोन्मादी मूर्च्छा भी कहते हैं। कुछ समय तक रोगी को मूर्च्छा के माध्यम से संवेगात्मक तनावों व चिन्ताओं से छुटकारा मिल जाता है।

v. द्वैध व्यक्तित्व- क्षोभोन्माद का एक मुख्य लक्षण यह है कि रोगी कभी-कभी एक ही स्थान पर रहकर दूसरे व्यक्तियों के समान व्यवहार करने लगता है निंद्रा भ्रमण में तो रोगी सोते सोते भ्रमण करने को चला जाता है परंतु वैध व्यक्तित्व में बिना आवास परिवर्तन व घर से भागे, समय-समय पर विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व को धारण कर लेता है।

3) क्षोभोन्माद के कारण- क्षोभोन्माद के मुख्य कारण निम्नलिखित है-

i) मानसिक अभिघात- कुछ व्यक्ति जीवन में ऐसी दुखद परिस्थितियों में इस प्रकार फंस जाते हैं कि निकल ही नहीं पाते हैं तथा अंत में उन्हें तीव्र मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। संवेगात्मक तनाव ही मानसिक अभिघात पहुँचाते हैं। संवेगात्मक तनाव का मुख्य कारण दुखद समाचार जैसेः प्रियजनों की मृत्यु, आर्थिक हानि, वैवाहिक जीवन में असफलता, सामाजिक अप्रतिष्ठा आदि। इन मानसिक अभिघातों के फलस्वरूप व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा उसमें क्षोभोन्माद के लक्षण विकसित हो जाते हैं।

ii) आयु- कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि क्षोभोन्माद के कारणों में आयु एक प्रमुख कारण है। व्यक्ति के सम्मुख किशोरावस्था के स्तर पर सर्वाधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा सर्वाधिक नैराश्यों का सामना भी इसी अवस्था में होता है। अपरिपक्व व्यक्तित्व के कारण वह इन समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता उसमें मानसिक तथा संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाते हैं जो क्षोभोन्माद के लक्षण विकसित कर देते हैं।

iii) मन्द बुद्धि- हॉलिंगबर्थ ने बहुत से सैनिकों में व्याप्त क्षोभोन्माद का अध्ययन किया तथा बताया कि क्षोभोन्मादी में बुद्धि की कमी होती है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इस कारण को स्वीकारा नहीं।

iv) दोषपूर्ण अनुशासन- कुछ मनोवैज्ञानिकां के अनुसार क्षोभोन्माद का कारण अनुशासन का अधिक या शिथिल नियंत्रण होने पर आत्म नियंत्रण की योग्यता का विकास नहीं हो पाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्तित्व ठीक तरह से विकसित नहीं हो पाता है तथा व्यक्ति के अन्दर क्षोभोन्माद के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

v) बर्हिमुखी व्यक्तित्व- अनेक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व प्रकारों के आधर पर क्षोभोन्माद का अध्ययन करके ज्ञात किया कि मुख्यतः बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाला ही व्यक्ति क्षोभोन्माद का रोगी होता है।

vi) सुझाव- कुछ लोगों का कहना है कि जो व्यक्ति सुझावग्राही होते है उनमें क्षोभोन्माद के लक्षण शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं तथा क्षोभोन्माद के लक्षणों के विकास में प्रभावकारी भूमिका निभाते हैं।

vii) असमायोजन- जीवन की समस्याओं से उत्पन्न असमायोजन कैरो हॉर्नी, सुलिवान, फ्राम आदि ने सामाजिक जीवन में असमायोजन को क्षोभोन्माद का कारण माना जाता है।

4) क्षोभोन्माद का उपचार- क्षोभोन्माद के उपचार की निम्न विधियाँ है-

i) **मनोविश्लेषण विधि-** फ्रायड तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने क्षोभोन्माद का उपचार मनोविश्लेषण विधि द्वारा किया है। मनोविश्लेषण विधि से तात्पर्य है कि रोगियों के उन कारणों का पता लगाना जिसे कि व्यक्ति इस रोग का शिकार होता है। इस विधि में दो प्रकार से चिकित्सा की जाती है-

क. मुक्त साहचर्य विधि

ख. स्वप्न विश्लेषण के द्वारा

ii) **संकेत-** संकेतो के द्वारा क्षोभोन्माद का इलाज किया जा सकता है। इस विधि से की गयी चिकित्सा अस्थायी होती है तथा ठीक होने के बाद भी इसके लक्षण रोगी में पुनः उत्पन्न हो सकते हैं।

iii) **सम्मोहन-** इस विधि के द्वारा रोगी को सम्मोहन की अवस्था में पहुँचाया जाता है तथा सम्मोहन की अवस्था में पहुँचने पर रोगी अपने रोग के बारे में बहुत कुछ बता देता है। इस प्रकार सम्मोहन के माध्यम से क्षोभोन्माद के अनेक लक्षणों को दूर किया जाता है।

11.6 चिंता क्षोभोन्माद के प्रकार

मुख्यः चिंता क्षोभोन्माद को 3 वर्गो में रखकर अध्ययन किया जाता है-

i. सरल मूर्त चिंता क्षोभोन्माद
ii. प्रतीकात्मक मूर्त चिंता क्षोभोन्माद
iii. प्रतीकात्मक अमूर्त चिंता क्षोभोन्माद

i) **सरल मूर्त चिंता क्षोभोन्माद-** इस प्रकार के चिन्ता क्षोभोन्माद में रोगी के भय का सम्बन्ध कोई मूर्त वस्तु होती है। इसके प्रमुख लक्षण जल आदि से संबंधित भय होते हैं।

ii) **प्रतीकात्मक मूर्त चिंता क्षोभोन्माद-** इस प्रकार के क्षोभोन्माद में रोगी को भय तो मूर्त वस्तुओं से ही लगता है परंतु भय का उद्दीपन मूर्त वस्तु वास्तव में प्रतीकात्मक है। जैसे एक व्यक्ति को सदैव इस बात का भय रहता था कि उसकी मृत्यु उसकी पत्नी उसके गले में रस्सी बांधकर करेगी। यहां रस्सी का भय प्रतीकात्मक है।

iii) **प्रतीकात्मक अमूर्त चिंता क्षोभोन्माद-** इस प्रकार के क्षोभोन्माद में रोगी का भय उद्दीपन अमूर्त होता है। रोगी को खुले स्थान, ऊंची जगह तथा बन्द जगह से भय लगता है।

फिशर ने इस संबंध में एक रोचक उदाहरण का विवरण दिया है। लूसी नामक एक महिला कार्य करते समय तीव्र हृदय धड़कन का अनुभव करने लगी तथा उसके कुछ समय उपरानत वह सड़क को पार करने में असमर्थ हो गयी। इसके बाद जब कभी वह घर से बाहर जाने की चेष्टा करती थी तब उसके मन में पागलपन मृत्यु आदि का भय छाया रहता था। जब इस औरत का मनोविश्लेषण किया गया तो ज्ञात हुआ कि ये भाव पति को छोड़ने का प्रतीक थे।

1) **चिन्ता क्षोभोन्माद के लक्षण-** हैडफील्ड के अनुसार मुख्यतः चिन्ता क्षोभोन्माद दो प्रकार का होता है। प्रथम प्रकार में बाल्यावस्था के दमित भय की पुनरावृत्ति क्षोभोन्माद के लक्षणों के रूप में होती है तथा दूसरे प्रकार में काम या आक्रमण जैसे निशिद्ध इच्छाओं से क्षोभोन्माद के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

चिंता क्षोभोन्माद के शारीरिक लक्षणों में प्रमुखतः रोगी में शरीर का थर-थराना, बेहोश होना, हृदय की धड़कन बढ़ जाना आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। भय इस विकृति का महत्वपूर्ण लक्षण है। इसके मानसिक लक्षणों में भय के अतिरिक्त व्याकुलता, बेचैनी आदि अनुभूतियाँ प्रमुख रूप से देखी जाती है। रोगी को नींद न आने की शिकायत प्रायः रहती है।

2) **चिन्ता क्षोभोन्माद के कारण-** फ्रायड के मतानुसार इस रोग का मुख्य कारण है कि रोगी का मनोलैंगिक विकास मातृ-प्रेम ग्रन्थि स्तर तक पहुँचकर रूक जाता है। स्मरण रहे कि इस स्तर पर बच्चों में माँ-बाप से यौन संबंध की इच्छा विद्यमान रहती है परन्तु वयस्क होते ही परम अहम के

दबाब या भय के कारण इस इच्छा का दमन हो जाता है जिसकी अभिव्यक्ति चिन्ता क्षोभोन्माद के लक्षणों द्वारा होती है।

जेने ने चिन्ता क्षोभोन्माद का प्रमुख कारण इच्छा शक्ति की अव्यवस्था बताया है। जो व्यक्ति अपनी इच्छा शक्ति को सामान्य रूप से पर्यावरण के साथ समायोजन नहीं कर पाते तो उनका संतुलन बिगड़ जाता है और वे इस रोग के शिकार हो जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यह रोग उन्हीं व्यक्तियों को होता है जिनके संवेग परिवर्तनशील व स्वच्छन्द होते हैं।

3) **चिन्ता क्षोभोन्माद के उपचार-** अनेक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रविधियों के द्वारा चिन्ता क्षोभोन्माद के रोगी का उपचार किया जाता है। मुख्यतः मुक्त साहचर्य विधि, सम्मोहन विधि, संकेत या सुझाव, पुनः शिक्षण आदि प्रविधियों का उपयोग इनके उपचार के लिए किया जाता है।

11.7 रूपान्तरित क्षोभोन्माद का स्वरूप

रूपान्तरित क्षोभोन्माद, क्षोभोन्माद का ही एक रूप है जिसमें रोगी अपनी द्वन्दात्मक भावनाओं या विचारों को शारीरिक लक्षणों में परिवर्तन करके समाधान करता है। रोगों में शारीरिक लक्षण तो विद्यमान रहते हैं परंतु उनका कोई आंगिक कारण या शारीरिक आधार नहीं होता है।

प्रो0 केमरान के अनुसार, ‘‘रूपान्तर क्षोभोन्माद एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अचेतन अन्तर्द्वन्द किसी शारीरिक लक्षण में परिवर्तित या प्रकट हो जाता है जिससे कि अन्तर्द्वन्द की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा तनाव व चिन्ता कम हो जाते हैं।

1) रूपान्तरित क्षोभोन्माद के लक्षण-

रूपान्तरित क्षोभोन्माद में रोगी को स्पष्ट रूप से शारीरिक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं जिनका आधार मानसिक होता है। अध्ययन के दृष्टिकोण से रूपान्तरित क्षोभोन्माद के प्रमुख लक्षणों को हम निम्न वर्गों में रखकर अध्ययन करेंगे।

a) ज्ञानेन्द्रिय लक्षण:
   i) जांघ असंवेदिता या संवेदन शून्यता।
   ii) दृष्टि अयोग्यता।
   iii) कम सुनना।
   iv) अघ्राणता या सूंघने की क्षमता समाप्त हो जाना।

b) गत्यात्मक लक्षण:
   i) पेशीय ऐंठन के लक्षण उत्पन्न हो जाना।

ii) शरीर में कंपन होना।
iii) स्वतः ही शरीर में गतिविधियाँ होना जिसका उसे ज्ञान नहीं होता, इसे टिक कहते हैं, सिर झटकना, पलकें झपकना आदि।
iv) पेशीय संकुचन जैसे हाथ-पांच की अंगुलियाँ मुड़ जाना, कोहनी व घुटनों में अनम्यता आ जाना।
v) वाणी विकार जैसे स्वरहीन, हकलाना, मूकता आदि।

c) आन्तरांगी लक्षण:

रूपान्तरित क्षोभोन्माद के रोगी के कुछ आन्तरांगी लक्षण भी पाये जाते हैं जैसेः सिर दर्द, खांसी, उल्टी, गला बन्द हो जाना, जी मिचलाना, जी मिचलाना, श्वांस लेने में कठिनाई आदि उत्पन्न हो जाना चाहिए।

2) रूपान्तरित क्षोभोन्माद के कारण-

सारसन, सारसन (2002) ने रूपान्तरित विकृति के कई कारण बताये हैं-

1) दुःखद या अप्रिय परिस्थिति से बचाव की इच्छा।
2) खोये हुए सामाजिक स्तर की पुनः प्राप्ति की इच्छा।
3) व्यक्ति की अपराध भावना का प्रयास करना जिससे उसकी वास्तविकता सामने न आ पाये।
4) भविष्य की कठिनाईयों से बचने के लिए रूपान्तरित क्षोभोन्माद के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।
5) जब रोगी को इस बात की आशा हो कि उसे अपने रोग के कारण किसी प्रकार की आर्थिक क्षतिपूर्ति मिल सकती तो वह रूपान्तर क्षोभोन्माद से पीड़ित हो जाता है।

3) रूपान्तरित क्षोभोन्माद के उपचार- रूपान्तर क्षोभोन्माद के उपचार की प्रमुख प्रक्रियाएँ इस प्रकार हैं-

i) **मनोविश्लेषणात्मक प्रक्रिया-** अन्य विकृतियों की भांति रूपान्तर विकृति के उपचार में मनोविश्लेषणात्मक प्रक्रिया का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए सर्वप्रथम रोगी व्यक्ति की समस्याओं का विवरण प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, तत्पश्चात उसकी आशंकाओं एवं समस्याओं के बारे में यथोचित सलाह दी जाती है कि उसे जो नकारात्मक अनुभव होते हैं वास्तव में उसका कोई पर्याप्त कारण नहीं है अतः उचित दृष्टिकोण विकसित करने की अवश्यकता है यदि रोगी को यह समझ आ जाये तो उसमें उत्पन्न होने वाले लक्षण समाप्त हो जाते हैं और वह सामान्य जीवन व्यतीत करने लगता है।
ii) **दवाओं का प्रयोग-** इसके उपचार में दवाओं का प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। वैसे कोई विकल्प न होने पर रोगी व्यक्ति चिंता प्रतिरोधी एवं विषाद शमक दवाइयों का प्रयोग करते

हैं। ऐसी दवाओं से कुछ लाभ तो होता ही है परन्तु कभी-कभी दवाओं पर निर्भरता बढ़ जाती है। यह हानिकारक स्थिति होती है। वैसे दवाओं से दीर्घकालिक लाभ तो नहीं मिलता है। ऐसी दवाएँ रूपान्तर विकृति एवं दर्द लक्षण में लाभदायक अवश्य है परंतु फिर भी, इनके द्वारा पूर्ण समाधान कठिन है।

iii) **संज्ञानात्मक व्यवहार उपचार-** इस प्रकार की विकृति के उपचार में संज्ञानात्मक व्यवहार उपचार पद्धति से लाभ मिल सकता है। इसके लिए रोगी व्यक्ति की सोच को बदलने की आवश्यकता पडेगी। उसे आवश्यकतानुसार सलाह देकर उसका मनोबल बढ़ाया जाना चाहिए। उसे यह बताया जाये कि ये समस्याएँ कुछ खास नहीं है। ये समाप्त हो जायेगी, तो इसका उस पर बहुत ही अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

संक्षेप में कह सकते हैं कि रूपान्तर क्षोभोन्माद के उपचार के क्षेत्र में अभी काफी कुछ शोध करने की आवश्यकता है।

11.8 सारांश

चिंता विकृति से तात्पर्य वैसी विकृति से होता है जिसमें रोगी में अवास्तविक चिंता एवं अवास्तविक डर की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उसमें उसका सामान्य जिन्दगी का व्यवहार अपअनुकूलित हो जाता है तथा इसमें व्यक्ति अपनी चिन्ता की अभिव्यकित बिल्कुल ही स्पष्ट ढंग से करता है-

चिंता के मुख्य तीन प्रकार हैं-

क. विषयपरक चिन्ता

ख. नैतिक चिन्ता

ग. तंत्रिकातापी चिंता

चिंता विकृति के छः प्रमुख प्रकार हैं-

क. दुर्भीति

ख. भीषिका विकृति

ग. सामान्य चिन्ता विकृति

घ. मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति

ड़. अन्तर अघातीय तनाव विकृति

च. तीव्र तनाव विकृति

चिंता मनस्ताप के अनेक शारीरिक व मानसिक लक्षण, कारण व उपाय हैं।

दुर्भीति एक बहुत ही सामान्य चिन्ता विकृति है जिसमें व्यक्ति किसी ऐसे विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति से सतत् व असंतुलित मात्रा में डरता है जो वास्तव में व्यक्ति के लिए कोई खतरा या न के बराबर खतरा उत्पन्न करता है।

दुर्भीति के तीन सामान्य प्रकार बताये गये हैं-

क. विशिष्ट दुर्भीति

ख. एगोरादुर्भीति

ग. सामाजिक दुर्भीति

इसके कई कारण, लक्षण व उपाय हैं।

क्षोभोन्माद एक सामान्य कायाप्रारूप विकृति है। इसे केवल स्त्रियों का रोग माना जाता था परंतु आज इसे स्त्री पुरूष दोनों का रोग माना जाता है।

11.9 शब्दावली

- **दुर्भीति:** एक सतत् डर प्रतिक्रिया है जो खतरे की वास्तविकता के अनुपात से परे होती है।
- **एगोराफोबिया:** भीड़-भाड़ या बाजार स्थलों से डर
- **निंद्रा भ्रमण:** इसमें रोगी नींद में ही उठकर अचेतन रूप से ऐसे अनेक जटिल कार्य व व्यवहार करता है जिसकी स्मृति उसे जाग्रतावस्था में नहीं होती।
- **सरल मूर्त चिंता क्षोभोन्माद:** इस प्रकार के चिन्ता क्षोभोन्माद में रोगी के भय का सम्बन्ध कोई मूर्त वस्तु होती है। इसके प्रमुख लक्षण जल आदि से संबंधित भय होते हैं।

11.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) चिंता के कौन कौन से प्रकार है।
2) कीड़े, मकोड़े से डर को क्या कहते है?
3) अकेलेपन से डर को क्या कहते है?

4) मृत्यु से डर को क्या कहिलाता है ।
5) सामाजिक चिंता विकृति किसे कहते है ।
6) निर्णय दुर्भीति किसे कहते है ।
7) प्रतीकात्मक मूर्त चिंता क्षोभोन्माद किसे कहते है।

उत्तर: 1) चिंता के प्रकार- विषयपरक, नैतिक व तंत्रिकातापी

2) इन्सैक्टोफोबिया 3) मोनोफोबिया 4) थैनेटोफोबिया

5) जब व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों का सामना करने में डर लगता है उसे सामाजिक दुर्भीति कहते हैं।

6) जब व्यक्ति को निर्णय लेने में कठिनाई होती है उसे निर्णय दुर्भीति कहते हैं।

7) इस प्रकार के क्षोभोन्माद में रोगी को भय तो मूर्त वस्तुओं से ही लगता है परंतु भय का उद्दीपन मूर्त वस्तु वास्तव में प्रतीकात्मक है।

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान - डा0 ए0के0 सिंह
- असामान्य मनोविज्ञान- डा0 लाभ सिंह एवं डॉ0 गोविंद तिवारी
- असामान्य मनोविज्ञान- डा0 डी0एन0 श्रीवास्तव

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चिन्ता मनस्तापों का विवरण संक्षेप में करिए।
2. दुर्भीति से क्या समझते हैं। इसके विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
3. हिस्टीरिया तथा चिंता क्षोभोन्माद में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. रूपान्तरित क्षोभोन्माद के कारण, लक्षण व उपायो की व्याख्या कीजिए।
5. टिप्पणी-
   i. सामान्य व असामान्य चिन्ता में अन्तर।
   ii. फोबिया के कारण
   iii. द्वैध व्यक्तित्व
   iv. स्मृति लोप

इकाई–12 मनोविदलता, उत्साह विषाद तथा पैरानोइया

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 मनोविदलता का स्वरुप

12.3.1 मनोविदलता के प्रकार

12.3.2 मनोविदलता के कारण

12.3.3 मनोविदलता के लक्षण

12.3.4 मनोविदलता के उपचार

12.4 उत्साह विषाद

12.4.1 उत्साह विषाद के लक्षण

12.4.2 उत्साह विषाद के कारण

12.4.3 उत्साह विषाद के उपचार

12.5 पैरानोइया

12.5.1 पैरानोइया के प्रकार व लक्षण

12.5.2 पैरानोइया के कारण

12.5.3 पैरानोइया के उपचार तथा परिणाम

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

मनोविदलता का शाब्दिक अर्थ, व्यक्तित्व का विच्छेद या अस्त-व्यस्त होना है, परन्तु वास्तव में इसका अर्थ यर्थाथता से सम्बन्ध-विच्छेद है। इसका मुख्य कारण है कि मनोविदलता का रोगी वास्तविक दुनिया से अपने सम्बन्ध को पूर्ण रूप से तोड़ देता है तथा अपनी बुनाई हुई दुनिया में

ही विचरण करता रहता है। मनोविदलता में अनेक प्रकार के विकार सम्मिलित होते हैं। यही कारण है कि प्रो. कोलमैन ने इसे असामान्य व्यवहारों का एक समूह बताया है जिसमें रोगी वास्तविकता के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता एवं उसकी संवेगात्मक व बौद्धिक प्रक्रियाओं में आधारभूत विक्षोप उत्पन्न हो जाते हैं। प्रो.केमरान के मतानुसार,"मनोविदलता सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ प्रतिगमनात्मक प्रयास हैं जिनमें रोगी वास्तविक अन्तवैयक्तिक पदार्थ सम्बन्धी व व्यामोहों एवं विभ्रमों के निर्माण के माध्यम से अपने तनावों व चिन्ताओं का बचाव करता है।''

प्राचीन ग्रीक आदि के लेखों में उत्साह-विषाद मनोविकृति का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिकों का मत था कि अधिक प्रसन्न रहना व अधिक उदास रहना दो अलग-अलग प्रकार के मानसिक रोग हैं। लेकिन सर्वप्रथम फारलेट तथा बेलार्जर (1850-1954) ने बताया कि ये दो लक्षण हैं। क्रेपलिन के अनुसार इसमें रोगी एक ही रोग से ग्रस्त होता है। लेकिन इस रोग के दो विरोधी लक्षण होते हैं। अत्याधिक प्रसन्नता की अवस्था में विचारों की उड़ान, मनोगत्यात्मक सक्रियता व उत्साह के लक्षण प्रकट होते हैं। लेकिन इसके विपरीत उदासीनता की अवस्था में रोगी में मानसिक अवरोध, विचारों में तर्कहीनता, मनोत्यात्मक सक्रियता की कमी आदि के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। क्रेपलिन के इस विचार में अनेक अध्ययनों के आधार पर परिवर्तन हुए हैं लेकिन मूल स्वरूप के सम्बन्ध में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

व्यामोही विकृति को पहले पैरानोइया कहा जाता था। पैरानोइया की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर हुई है-पैरा तथा नोइया। पैरा का अर्थ है मिथ्या अथवा विकृत तथा नोइया का अर्थ है तर्क। इस प्रकार पैरानोइया का शाब्दिक अर्थ मिथ्या तर्क अथवा विकृत तर्क करना होता है। इस इकाई के अध्ययन हम मनोविदलता, उत्साह-विषाद, मनोविकृति तथा पैरोनोइया रोगों के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम निम्न बिंदुओं को समझाने में सक्षम हो सकेंगे।

- मनोविदला के स्वरूप तथा प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
- मनोविदलता के कारण, लक्षण व उपायो पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- उत्साह-विषाद विकृति के लक्षण, कारण व उपायों के बिंदु पर चर्चा कर सकेंगे।
- पैरानोइया के प्रकार समझाने में सक्षम होंगे।
- पैरानोइया के लक्षण, कारण व उपायों की व्याख्या कर सकेंगे।

12.3 मनोविदलता का स्वरुप

स्विटजरलैण्ड के प्रसिद्ध मनोचिकित्सक ब्ल्यूलर ने सर्वप्रथम इस रोग को मनोविदलता का नाम दिया। जिसका अर्थ है व्यक्तित्व विदलन या व्यक्तित्व में दरार का पड़ जाना। मनोविदलता का यह अर्थ वर्तमान में स्वीकार्य नहीं है। इसे व्यक्तित्व का विदलन या दरार का पड़ जाना न कहकर हम वास्तविकता से सम्बन्ध विच्छेद कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि रोगी वास्तविक दुनिया से अपना सम्बन्ध तोड़ देता है। वह अपने द्वारा बनाई हुई दुनिया में विचरण करता है।

कैमरान के अनुसार,''मनोविदलता सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ प्रतिगमन प्रयास है जिसमें व्यक्ति वास्तविकता पर आधारित अन्तर्वैक्तित्व वस्तु सम्बन्धों को छोड़ने तथा व्यामोहों एवं विभ्रमों के माध्यम से तनाव तथा चिन्ता से बचाव करता है।''

कारसन इत्यादि 2000 के अनुसार,''मनोविदलन को ऐसी मनोविक्षिप्त के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें व्यक्तित्व-प्रक्रियाओं में विघटन होता है, वास्तविकता से सम्बन्ध टूट जाता है, संवेगात्मक कुण्ठा एवं विभ्रम एवं विचार तथा व्यवहार में व्यावधान होता है।''

इससे स्पष्ट है कि मनोविदलता किसी, एक विकार का नाम नहीं है वरन् मानसिक विकारों के एक समूह को मनोविदलता का नाम दिया गया है, जिसमें व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों; जैसे- प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन, सामाजिक एवं संवेगात्मक पक्षों में गंभीर विकृति एव विघटन देखने में आता है। इसमें व्यक्ति का वास्तविकता से सम्पर्क टूट जाता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति अपनी दमित चिन्ता के तीव्र तनाव को समाप्त करने के लिए विभिन्न विभ्रमों एवं व्यामोहों का सहारा लेता है तथा अनेक प्रतिगामी प्रयास अपने व्यवहारों में प्रदर्शित करता है।

12.3.1 मनोविदलता के प्रकार-

मनोविदलता को निम्न नौ वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

1) **सरल मनोविदलता:-** सरल मनोविदलता जैसा कि नाम से स्पष्ट है इसमें रोग के लक्षण धीरे-धीरे व क्रमिक रूप से विकसित होते हैं। इन रोगियों की पहचान विचित्र, अतार्किक तथा उदासीनता के आधार पर की जा सकती है। इन रोगियों की रूचियाँ समाप्त हो जाती हैं। ये एकान्त में रहना पसन्द करते हैं, बहुत कम बोलते हैं, कुछ पूछने पर सिर हिलाकर जबाव देते हैं। इन्हें अपने शरीर की सफाई का ध्यान नहीं रहता है। ये लाभ-हानि सफलता-असफलता की कोई परवाह नहीं करते हैं। रोगी अपने द्वारा निर्मित संसार में विचरण करते हैं। अपने ही विचारों में उलझे रहते हैं। अत्याधिक स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं। यह अपनी प्रतिदिन की क्रियाओं के लिये परिवार पर निर्भर रहते हैं। माता-पिता, मित्रों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा दिये गये

सुझावों एवं आदेशों का पालन नहीं करते हैं। इनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। इन लोगों के व्यवहार में लैंगिक आक्रामकता भी पायी जाती है। कुछ लोग अपराधी भी हो जाते हैं।

2) **हैबीफ्रेनिक मनोविदलता:-** हैबीफ्रेनिक शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के हीबोफ्रेनिया शब्द से हुई है, जिसका अर्थ 'युवा मन' हैं। मनोवैज्ञनिकों का कहना है कि यह रोग विशेष रूप से युवावर्ग या कम आयु में ही विकसित होता है। कोलमैन का मत है कि हैबीफ्रेनिक मनोविदलता के रोगी का समस्त व्यवहार एक बच्चे के समान होता है। वास्तव में उसका यह व्यवहार प्रतिगमन की स्थिति को प्रदर्शित करता है। इस रोग के मुख्य लक्षण चिन्तन, संवेगात्मक अस्थिरता, विभ्रम, असंगत भ्रान्ति, वाक्यदोश तथा विघटित व्यक्तित्व है। इन रोगियों का अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि इनका व्यवहार बड़ा ही विचित्र होता है। यह सामाजिक एवं धार्मिक चिन्तन में लीन रहते हैं। रोगी अपने व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित होता है और घण्टों अपने काल्पनिक पात्रों से बातें करता है। इन रोगियों के व्यामोह स्वाद, घ्राण तथा श्रवण के अतिरिक्त काम सम्बन्धी, धार्मिक, दण्डात्मक तथा स्वास्थ्य चिन्ता से सम्बन्धित भी होते हैं। जब रोग की तीव्रता बढ़ती है तब उसका व्यवहार अत्यन्त विचित्र एवं बेवकूफी भरा लगता है। रोगी कहता है कि उसके मुँह में जहरीली गैस भरी है। मुँह खोलते ही आस-पास के लोग मर जायेंगें। विचारों की अतार्किकता तथा वास्तविकता से सम्बन्ध विच्छेद विचित्र व्यामोह को व्यक्त करता है।

3) **कैटाटोनिक मनोविदलता:-** कैटाटोनिक मनोविदलता की उत्पत्ति की उत्पत्ति यकायक बड़े ही नाटकीय ढ़ग से होती है। रोगी के व्यवहार में क्रियायें इस प्रकार की होती है कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है, इस कारण उसमें संवेगात्मक उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। इस रोग की दो स्थितियाँ होती हैं-

i) <u>मूर्छित स्थिति:-</u> इस स्थिति में रोगी की क्रियाएँ धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगती है। रोगी घण्टों एक ही स्थिति में शून्य को घूरता रहता है। उसका बोलना, चलना, फिरना, उठना, बैठना एकदम कम हो जाता है। उसका वातावरण से सम्पर्क टूटने लगता है और वह अत्याधिक उदासीन हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि रोगी को सुई चुभोई जाए तब भी वह कोई प्रतिक्रिया नहीं करता है। उसे खाने-पीने तथा मलमूत्र त्यागने की संवेदना नहीं रहती है यदि उसके हाथ को ऊपर कर दिया जाए तो पूरे दिन उसका हाथ ऊपर ही रहता है।

ii) <u>उत्तेजित स्थिति:-</u>यह स्थिति मूर्छित अवस्था के ठीक विपरीत होती है। इसमें रोगी की शारीरिक क्रियाएँ इस प्रकार चलती हैं जैसे दीवार घडी का पैण्डुलम निरन्तर चलता रहता है। उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्ति व्याकुलता का उग्र रूप धारण कर लेती है। ऐसी तीव्र क्रियाओं तथा उग्र प्रतिक्रियाओं का आधार वातावरण सम्बन्धी उद्दीपक स्थिति नहीं वरन् बाह्य दृष्टि से उनका निर्धारण रोगी स्वतन्त्र रूप से करता है। रोगी की यह क्रियाएँ उद्देश्यहीन तथा लक्ष्यहीन होती हैं। मनोगत्यात्मक दृष्टिकोण से इनका स्वरूप सम्बन्धित व्यक्ति के अचेतन की दमित इच्छाओं द्वारा अभिप्रेरित होता है। रोगी की क्रियायें कभी-कभी

आक्रामक तथा विनाशात्मक भी हो जाती हैं। रोगी कमरे में रखे सामान, पर्दों, कपडों तथा फर्नीचर आदि को तोड़-फोड़ देता है। अपने सामने वाले व्यक्ति पर अचानक आक्रमण कर बैठता है। इनकी यह उत्तेजित स्थिति घण्टों तथा कई दिनों तक बनी रहती है।

4) **पेरानायड मनोविदलता:-** पेरानायड मनोविदलता के रोगियों में बाह्य वास्तविकता से वांछनीय समायोजन करने की योग्यता का पूर्ण अभाव पाया जाता है। ये रोगी प्रायः 25 से 40 वर्ष की आयु के होते हैं। प्रथम प्रवेश के समय 50 प्रतिशत रोगी पेरानायड मनोविदलता के होते हैं। इन रोगियों में अतार्किक, विचित्र, परिवर्तनशील व्यामोह के विशिष्ट लक्षण पाये जाते हैं। इनमें दण्डात्मक व्यामोहों की प्रधानता होती है। रोगी शिकायत करता है कि लोग उसका पीछा कर रहे हैं, उसे जहर देकर मारना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त महानता का व्यामोह, स्व-संदर्भ तथा अनुचित प्रभाव के व्यामोह भी मिलते हैं। इन रोगियों में श्रवण, दृष्टि तथा अन्य प्रकार के विभ्रम भी पाये जाते हैं। इन रोगियों की तार्किक निर्णय योग्यता समाप्त हो जाती है। जब रोगी की दशा बिगड़ती है तब उसकी बौद्धिक व संवेगात्मक योग्यताओं का विघटन गम्भीर रूप से हाने लगता है। पेरानायड मनोविदलता तथा पेरानोइया के रोगियों में यह अन्तर है कि मनोविदलता के रोगियों के व्यामोह अतार्किक एवं परिवर्तनशील होते हैं। जबकि पेरानोइया के रोगियों के व्यामोह तार्किक व स्थायी होते हैं। मनोविदलता में रोगी का व्यक्तित्व अत्याधिक विघटित हो जाता है। पेरानोइया के रोगी का व्यक्तित्व व्यामोहों को छोड़कर संगठित रहता है।

आगरा मानसिक चिकित्सालय के एक मनोविदलता रोगी निम्न साक्षात्कार किया गया, विवरण इस प्रकार है-

डॉक्टर-आप कौन हैं?

रोगी-मैं हिटलर हूँ।

डॉक्टर-आप क्या करते हैं?

रोगी-मैं अपने हैड क्वार्टर पर हूँ। देखिए यह मेरी फौज है। (सामने के विभिन्न बैरकों की ओर संकेत करते हुए जिनमें अनेक मानसिक रोगी रहते हैं।)

रोगी -देखिए यह मेरी एयर फोर्स है (सामने उड़ते हुए एक हवाई जहाज की ओर देखते हुए तथा उसे सलामी देते हुए संकेत करता है।)

5) **बाल्यकालीन मनोविदलता:-** इस प्रकार की मनोविदलता के लक्षण बाल्यावस्था से ही आरम्भ हो जाते हैं। इसमें रोगी लोगों से दूर भागता है। उसकी विचार प्रक्रिया का विघटन, अनियन्त्रित काम तथा आक्रामक प्रवाहों का होना आदि सम्मिलित है। इनका चिन्तन निम्न कोटि

का होता है। इनकी भाषा में विभिन्न दोश उत्पन्न हो जाते हैं। बेण्डर ने 2 से 13 वर्ष की आयु वाले 600 रोगियों का अध्ययन किया। निष्कर्ष इस प्रकार पाये गये-

i) रोगी बालक आत्म परिचय देने में पूर्ण असमर्थ होता है।
ii) रोगी बालक वास्तविकता से सम्बन्ध रखने में पूर्ण असमर्थ होता है।
iii) रोगी बालकों के माता-पिता तथा अन्य व्यक्तियों से तादात्म्य स्थापित करने में पूर्ण असमर्थ होता है।
iv) रोगी बालक मनोरचनाओं को सही ढंग से प्रयुक्त नहीं कर पाते हैं।
v) रोगी बालकों में दृढ़ता, चिन्ता आदि उत्पन्न हो जाती है।
vi) नींद, भोजन एवं अन्य सामान्य व्यवहारों में अनियमितता पायी जाती है।

6) **तीव्र अवकलित मनोविदलता:-** मनोविदलता के इस प्रारूप में विभिन्न प्रकार के अनेक लक्षण मिश्रित रूप से देखने में आते हैं। इन लक्षणों का स्वरूप स्थिर नहीं होता है। ऐसे लक्षण कुछ समय के लिये प्रकट होते हैं फिर, स्वतः समाप्त हो जाते हैं। यह प्रारूप मनोविदलता के रोग की प्रारम्भिक अवस्था का रूप है। यदि रोगी का समय से उपचार न किया जाए तो यह मनोविदलता के किसी भी एक प्रारूप का रूप ले लेता है।
7) **दीर्घकालीन अवकलित मनोविदलता:-** दीर्घकालीन अवकलित मनोविदलता भी अनेक मिश्रित लक्षणों का रूप है। इसमें रोगी के व्यक्तित्व में अनेक लक्षण जैसे-संवेगात्मक व्यवहार, बौद्धिक ह्रास एवं व्यावहारिक विचलन आदि लक्षण प्रकट होते हैं। ऐसे लक्षणों का स्वरूप मनोविदलता के लक्षण की भाँति दीर्घकालीन होता है। इस प्रकार के रोगियों में न्यूनतमतम समायोजन की क्षमता अवश्य बनी रहती है, जो प्रायः मनोविदलता के रोगी में कम देखने को मिलती है।
8) **सीजो-अफेक्टिव मनोविदलता:-** मनोविदलता के इस प्रारूप में मानसिक लक्षणों की प्रधानता के साथ-साथ उत्साह अथवा विषाद की स्थिति भी उत्पन्न होती है। इसमें रोगी चिन्ता की स्थिति में विचित्र व्यवहार प्रकट करता है।
9) **अवशिष्ट मनोविदलता:-** मनोचिकित्सालय के दीर्घकालीन उपचार के उपरान्त कुछ मनोविदलता रोगी स्वस्थ भी हो जाते हैं और कुछ रोगियों में जटिल लक्षण समाप्त नहीं होते हैं। रोगी में यही लक्षण कुछ न कुछ मात्रा में अवशिष्ट रूप में रह जाते हैं। ऐसे रोगियों को ही अवशिष्ट श्रेणी में रखा जाता है।

12.3.2 मनोविदलता के कारण-

मनोविदलता विकारों की उत्पत्ति के लिये कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है। विभिन्न कारक सम्मिलित रूप से अपना प्रभाव व्यक्ति पर डालते हैं। इन कारकों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. जैविक कारण
2. मनोवैज्ञानिक कारण
3. सामाजिक कारण

2) जैविक कारण:

मनोविदलता के जैविक कारणों को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

i) अनुवांशिकता :- विभिन्न विद्वानों ने वंशानुक्रम को मनोविदलता की उत्पत्ति का कारण माना है। कालमैन ने अपने अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध किया है कि यदि माता-पिता में से एक व्यक्ति मनोविदलता से पीड़ित रहा है तो उनके बच्चे 16.4 प्रतिशत इस विकार से पीड़ित पाये गये हैं। यदि माता-पिता दोनों विकार से पीड़ित हैं तो उनके बच्चे 68.1 प्रतिशत इस विकार से पीड़ित हो सकते हैं। समरूप यमज में यह सम्भावना 86.2 प्रतिशत थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोविदलता की उत्पत्ति में वंशानुक्रम का योगदान महत्वपूर्ण है।

ii) शारीरिक रचना:- शारीरिक रचना वंशानुक्रम तथा वातावरण की मिश्रित देन है। क्रेशमर के अनुसार एस्थेनिक तथा एथलेटिक प्रकार के व्यक्ति मनोविदलता से अधिक पीड़ित होते हैं। शेल्डेन के अनुसार लम्बाकृति तथा मध्याकृति व्यक्ति अन्य मनस्पात की अपेक्षा मनोविदलता से अधिक पीड़ित होते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में काफी मतभेद है।

iii) केन्द्रीय स्नायुमण्डलः- अनेक विद्वानों ने मनोविदलता एवं सामान्य रोगी के मस्तिष्क का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि दोनों के मस्तिष्क कोशों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। कुछ मनोवैज्ञानिक इस रोग का कारण दिल का छोटा होना, नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ आदि मानते हैं। परन्तु आज तक इन परिणामों के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत प्राप्त नहीं हुआ है।

3) मनोवैज्ञानिक कारण:

क्रेपलिन ने वंशानुक्रम के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक कारकों को भी मनोविदलता का कारण माना है। ब्लूलर ने निराशा व अन्तर्द्वन्द्व को फ्राइड ने अचेतन को, एडलर ने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मनोविदलता का प्रमुख कारण माना है। मनोविदलता रोग की उत्पत्ति में निम्न मनोवैज्ञानिक कारण महत्वपूर्ण हैं-

i) विकृत पारिवारिक जीवन:- माता-पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उचित सम्बन्ध होने के कारण रोगी में अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं। उसकी विभेदकारी क्षमता घट जाती है। रोगी चिन्ता से ग्रस्त हो जाता है। रोगी के परिवार का विघटन एवं असंगत स्वरूपी रोगी की विचार प्रक्रिया में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

माता-पिता का अनुपयुक्त वैवाहिक सम्बन्ध तथा संवेगात्मक समायोजन भी बच्चों में मनोविदलता के प्रति उन्मुखता बढ़ाता है। अतः स्पष्ट है कि परिवार की कोई भी स्थिति बालक में अनुपयुक्ता, असुरक्षा तथा हीनता उत्पन्न कर सकती है और आगे चलकर उसके घातक प्रभाव दिखाई दे सकते हैं। मनोविदलता के रोगियों का इतिहास देखने से स्पष्ट है कि ये रोगी बचपन से ही दूर भागने का प्रयास करते हैं। वे अपने विचारों को दूसरों से नहीं कह पाते हैं। इनका चिन्तन अपने तक ही सीमित रहता है।

ii) शैशवकालीन मनो-घात:- मनोवैज्ञानिकों ने शैशवकाल के आघातों को मनोविदलता का कारण माना है। वाहल ने मनोविदलता के 568 रोगियों का अध्ययन किया और बताया कि 4 प्रतिशत रोगियों के माँ-बाप की मृत्यु उनकी बाल्यावस्था में ही हो गई थी अथवा तलाक आदि कारणों से वह अलग हो गये थे। ऐसे रोगी पारिवारिक आघातों को सहन नहीं कर पाये तथा उनके मन में ऐसे घाव उत्पन्न हो गये जिसके कारण वह जीवन की दबाव पूर्ण परिस्थितियों का सामना करने में अपने को असमर्थ पाने लगे। ये रोगी बड़े होकर जीवन की कठिन परिस्थितियों से बचने के लिए बाल्यावस्था का सहारा लेने लगे।

iii) निराशा तथा अन्तर्द्वन्द्व:- मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकास रोगियों में अत्याधिक संवेदनशीलता, सम्पर्कों से दूर भागना तथा असुरक्षा की भावना के कारण रोगी के सम्मुख किशोरावस्था या पूर्व-प्रौढ़ावस्था की अनेक समस्यायें उपस्थित होती हैं। प्रत्येक असामान्यता के पीछे निराशा की मुख्य भूमिका होती है। मनोविदलता के रोगियों की असफलता वर्तमान परिस्थिति के समायोजन में बाधक होती है। इस प्रकार रोगी विभिन्न निराशाओं तथा अन्तर्द्वन्द्व तात्कालिक कारण है।

iv) प्रतिगमनात्मक स्वरूप:- मनोविदलता प्रतिगमन की चरमसीमा है। फ्राइड के अनुसार मनोविदलता अचेतन में छिपी समलैंगिकता का परिणाम है। रोगी प्रतिगमन द्वारा अचेतन की दमित इच्छाओं से अहम की रक्षा करता है। युग ने मनोविदलता का कारण बाल्यावस्था की ओर पलायन माना है। क्योंकि शैशवावस्था में इन आवेगों की प्रधानता होती है। रोगी का बौद्धिक एवं संवेगात्मक स्वरूप अत्याधिक अस्पष्ट, अतार्किक तथा असंगत होता है। रोगी शिशुओं के समान ऐसे काल्पनिक जगत में खोया रहता है कि उसे वास्तविकता का ज्ञान नहीं रहता है।

v) अन्य मनोवैज्ञानिक कारण:- एलडर ने मनोविदलता का कारण हीनता की भावना माना है। हीनता की भावना के कारण व्यक्ति समायोजन करने में असफल हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें विभिन्न प्रकार के व्यामोह, विभ्रम, भय आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। फ्राइड मनोलैंगिक विकास के प्रभाव को मनोविदलता का कारण बताता है। कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता का कारण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व मानते हैं।

4) सामाजिक कारण:

अनेक अध्ययनों के अनुसार मनोविदलता रोग कुछ सामाजिक समूहों में अधिक पाया जाता है क्योंकि बड़े शहरों में व्यक्ति के सम्मुख अधिक कठिन समस्याओं तथा दबावपूर्ण परिस्थितियाँ होती हैं। इसी प्रकार कुछ व्यवसायों तथा धर्मो में मनोविदलता का घटनाक्रम अधिक है। अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारक आपस में इतने सम्बन्धित हैं कि इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।

12.3.3 मनोविदलता के सामान्य लक्षण -

मनोविदलता दो प्रकार की प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। मनोविदलता एक समय में होने वाला रोग नहीं है। अपितु काफी समय तक धीरे-धीरे अनेक विचित्र लक्षण उसके व्यवहार में विकसित होते रहते हैं, जिस प्रक्रिया को मनोविदलता कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सांवेगिक विकृतियां अचानक उसके व्यवहार में उत्पन्न हो जाती है तब इसे प्रक्रियात्मक मनोविदलता कहते है मनोविदलता के कई प्रकार हैं। किन्तु कुछ ऐसे सामान्य लक्षण हैं जो सभी मनोविदलता में समान रूप से पाये जाते हैं।

1) **वास्तविकता से पलायन:-** मनोविदलता के रोगियों का प्रधान लक्षण जीवन की वास्तविकता से पलायन करना है। यह रोगी अपने द्वारा निर्मित (काल्पनिक) दुनिया में विचरण करते हैं। इनका वास्तविकता से कोई सम्पर्क नहीं होता है और न ही बाहृय घटनाओं में कोई रूचि लेते हैं। इनकी स्मृति, चिन्तन, प्रत्यक्षीकरण तथा कल्पनाएँ आदि इनके निजी आन्तरिक जीवन से नियन्त्रित होते हैं ये रोगी अपने आसपास के संसार में कोई रूचि नहीं लेते हैं। इस कारण इनका लोगों से सम्बन्ध टूट जाता है।
2) **संवेगात्मक विकृतियाँ:-** संवेगात्मक उदासीनता इन रोगियों का मूल केन्द्र बिन्दु हैं। संवेगात्मक परिस्थितियों के प्रति रोगी उदासीन रहता है। यहाँ तक कि अपने प्रियजन की दुर्घटना हो जाने पर भी दुख व्यक्त नहीं करता है। किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देता है। भूख प्यास के प्रति उसका ध्यान नहीं रहता, उसे एकान्त में रहना अच्छा लगता है। अस्पताल के एक वार्ड में रहने वाले दो रोगी आपस में एक-दूसरे का नाम तक नहीं जानते। जैसे-जैसे रोग की तीव्रता बढ़ती जाती है उनकी उदासीनता भी बढ़ती जाती है। कभी-कभी यह रोगी अकारण हँसने लगते हैं, रोने लगते हैं आदि। मनोविदलता के रोगियों में अनेक संवेगात्मक प्रतिक्रियायें दिखाई पड़ती हैं- 1) अनुपयुक्ता 2) उदासीनता एवं संवेगात्मकता का अभाव 3) दृढ़ता 4) उभय भावात्मकता 5) अविश्वास 6) विपरीत संवेगात्मकता 7) सांवेगिक रिक्तिता।
3) **विकृत-विचार प्रक्रिया:-** मनोविदलता के रोगी के विचारों में अनेक विकृतियाँ पायी जाती हैं। इन रोगियों का विचार-क्रम अतार्किक, विचित्र तथा बड़ा ही असंगत प्रतीत होता है। साधारण वस्तु के प्रति इनकी क्रियायें बड़ी ही विचित्र एवं जटिल होती हैं। इस कारण इनके सामाजिक सम्बन्ध पर्याप्त रूप से अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। इन्हें अपने चिन्तन पर नियन्त्रण नहीं होता है।

इनके विचार अस्पष्ट, दिशाहीन, विश्रृखलित तथा भ्रान्तिपूर्ण होते हैं। वेष्लर बेलव्यू तथा रोशा परीक्षणों के आधार पर इन रोगियों के चिन्तन में निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं।

i. एक ही प्रत्यय में अनेक प्रत्ययों के रूप को व्यक्त करना।
ii. मूर्त अमूर्त के मध्य भेद न करना।
iii. प्रत्ययों में स्वनिर्मित नवीन अर्थ जोड़ना।
iv. प्रतीकों को अधिक मात्रा में प्रयोग करना।
v. जैसे सत्य एवं काल्पनिकता को एक समझना।
vi. तर्कशास्त्र के नियमों का पालन न करना।
vii. किसी वस्तु की विवेचना करते समय व्यक्तिगत प्रसंगों का अत्याधिक उपयोग करना।

इन रोगियों का चिन्तन मूर्त होता है। ब्लूलर ने एक रोगी से पूछा,"क्या तुम्हारे मस्तिष्क पर कोई वस्तु अतिरिक्त दबाव डाल रही है।'' रोगी ने उत्तर दिया ''हां लोहा भारी होता है।'' इनके चिन्तन में इस विचित्रता का कारण इनका स्वनिर्मित संसार एवं विकृत सांवेगिक अभिवृत्तियों की प्रधानता है। यह रोगी जैसेर्थ के साथ वस्तुगत सम्बन्ध रखने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

4) **भाषा सम्बन्धी विकृतियाँ:-** मानसिक ह्रास के कारण मनोविदलता के रोगी गूँगे व्यक्ति की तरह चुपचाप एवं शान्त बने रहते हैं। इनके शब्दों तथा विचारों में कोई तार्किक सम्बन्ध नहीं होता है। इनकी भाषा में कई विकृतियाँ पायी जाती हैं।

1) अस्पष्टता 2) पुनरावृत्ति 3) असंगतता 4) असम्बन्धित

5) नवीन शब्दों का निर्माण आदि जिनका अर्थ रोगी ही स्वंय समझ पाता है।

5) **व्यामोह:-** व्यामोह ऐसे झूठे विश्वास हैं जो व्यक्ति के मस्तिष्क में इतना गहरा स्थान बना लेते हैं कि लाख तर्क तथा प्रमाण देने पर भी रोगी उन्हें सत्य ही मानता है। रोगी के व्यामोह स्वप्नों के समान होते हैं, जिनमें वह अपने को कोई बड़ा व्यक्ति या राजा या महान पुरूष मान बैठता है। मनोविदलता के रोगी में दण्डात्मक तथा महानता के व्यामोह की मात्रा अधिक पायी जाती है। रोगी चिकित्सक को अपना शत्रु, दवा को विष समझता है। अपनी ओर आते हुए व्यक्ति को देखकर यह कहता है कि यह मुझे मारने के लिये आ रहा है। मेरी हत्या करना चाहता है। मनोविदलता के रोगी के व्यामोह बड़े विचित्र एवं अतार्किक होते हैं। पेज ने एक अविवाहित स्त्री रोगी का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वह स्त्री फटे पुराने कपडों का बण्डल बनाकर उसे अपना बच्चा कहती थी। वार्ड के डॉक्टर को बच्चे का पिता बताती थी, डाक्टर को वार्ड में आता देखकर बच्चे को प्यार करने लगती थी, और किसी अन्य व्यक्ति को छूने नहीं देती थी। प्रतिदिन रात में उसे अपने पास सुलाती थी।

6) **विभ्रम:-** अन्य मानसिक रोगियों की अपेक्षा मनोविदलता के रोगियों को विभ्रम भी होते हैं। इसमें रोगी को सुनने सम्बन्धी विभ्रम अधिक होते हैं। रोगी, धमकी, तिरस्कार तथा प्रशंसा भरी आवाजें सुनता है। कभी-कभी अपने कपड़े उतारकर मारपीट करने के लिए तैयार हो जाता है। इसके विपरीत रोगी को दृष्टि, स्वाद, गंध तथा स्पर्ष सम्बन्धी विभ्रम होते हैं। वह एकांत में बैठकर अलौकिक द्रश्य देखता है जैसे कभी भगवान स्वंय प्रकट होते हैं, कभी दिव्य प्रकाश के रूप में संदेष प्राप्त होता है। कभी मृत सम्बन्धियों के दर्शन करता है। शक्की स्वभाव के रोगी अक्सर स्पर्ष सम्बन्धी विभ्रम का अनुभव करते हैं।
7) **लेखन विलक्षणता:-** ऐसे रोगियों की लिखावट में विचित्रता पायी जाती है। वे अपनी लेखनी में शब्द तथा वाक्यों को बारम्बार लिखते हैं। निरर्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं, व्याकरण तथा विराम आदि का इन्हें ज्ञान नहीं रहता है। कभी-कभी बिल्कुल शान्त हो जाते हैं और कभी-कभी बहुत अधिक लिखते हैं।
8) **व्यवहार सम्बन्धी विकृति:-** मनोविदलता का रोगी अपने शरीर को विचित्र ढंग से एक ही मुद्रा में मरोड़कर कई दिन तक बैठा या खड़ा रहता है। वे शून्य में टकटकी बांधे घूरते रहते है, विचित्र ढंग से हंसते हैं तथा दृढ़ एवं शुष्क व्यवहार करते हुए दिखाई देते हैं। व्यवहार में सामाजिक प्रतिमानों का अभाव तथा अपने प्रति अत्याधिक उदासीनता रहती है।
9) **शारीरिक दशा:-** मनोविदलता के रोगी का शरीर इतना दुर्बल हो जाता है कि वह शारीरिक परिश्रम करने में अपने को असहाय एवं असमर्थ पाता है। उसे नींद नहीं आती है। यह सर्दी-गर्मी से अपना बचाव नहीं कर पाते हैं, भूख भी नहीं लगती है, स्वच्छता का इन्हें ज्ञान नहीं रहता है।
10) **अन्य लक्षण:-** उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त तीव्र चिन्ता एवं आतंक, ध्यान के प्रति अत्याधिक विचलनशीलता, नैतिकता में रूचियों का अभाव, अधिगम योग्यता का अभाव तथा विकृत स्मरण शक्ति आदि लक्षण भी मनोविदलता के रोगियों में उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी दूसरों की प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में पूर्व अनुमान तथा कल्पना कर सकने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इनमें सुख की अनुभूति करने की योग्यता नहीं होती है। इनका जीवन दूसरों के अनुरूप व्यवहार करने योग्य नहीं रहता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मनोविदलन के रोगी में अनेक प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इनमें कुछ धनात्मक तो कुछ नकारात्मक होते हैं।

12.3.4 मनोविदलता का उपचार-

मनोविदलता के रोगी की अतार्किकता एवं विचित्रता इतनी बढ़ जाती है कि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न हो जाता है। आज से तीन दशक पूर्व इन रोगियों का उपचार आसानी से सम्भव नहीं था। 30 प्रतिशत रोगियों के उपचार हेतु उन्हें मनोचिकित्सालयों में भेज दिया जाता था जिसमें 23 प्रतिशत रोगियों में कुछ सुधार हो जाता था तथा 7 प्रतिशत रोगियों की स्थिति में कोई

सुधार नहीं होता था। परन्तु आज मनोविदलता रोग की अनेक नवीन उपचार पद्धतियाँ विकसित हो गई हैं। जैसे -

1) **रसायन चिकित्सा विधि:-** रोगी की दशा को सुधारने के लिये सेकल ने एक उपचार पद्धति का प्रतिपादन किया। रोगी जब दौरे की स्थिति में होता है तब उसको इन्जैक्षन द्वारा इन्सुलिन की अतिरिक्त मात्रा रक्त में प्रवाहित की जाती है, जिससे उसकी स्थिति में थोड़ा सुधार हो जाता है। मेड़यूना ने इन्सुलिन के स्थान पर मेट्राजोल इन्जैक्षन का प्रयोग किया है। रोगी की तीव्र आशंका, चिन्ता एवं तनाव को दूर करने के लिये दुष्चिन्ता उन्मूलक औषधियों का प्रयोग किया जाता है। यह औषधियाँ रोग के लक्षणों को कुछ सीमा तक सुधार सकती है, उनका उपचार नहीं कर सकती है।

2) **शारीरिक चिकित्सा:-** शारीरिक चिकित्सा के अन्तगर्त दो प्रकार की पद्धतियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं-

i. विद्युत आघात चिकित्सा:- रोगी के विभिन्न लक्षणों को समाप्त करने के लिए विद्युत आघात चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है। इसमें रोगी की कनपटी पर दो विद्युत आघात चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है। इसमें रोगी की कनपटी पर दो इलैक्ट्रोड़ लगा दिये जाते हैं तथा रोगी के दांतों के मध्य में आघात शल्य कुछ सेकेण्ड तक एक निश्चित ऐम्पियर की विद्युत धारा प्रवाहित हो जाती है, जिससे रोगी तड़प के साथ दौरे की स्थिति में चला जाता है। इसके पश्चात रोगी अपनी पूर्व बातों को कुछ समय के लिये भूल जाता है।

ii. मस्तिष्कीयशल्य चिकित्सा:- शल्य चिकित्सा के माध्यम से मस्तिष्क कार्टेक्स व थेलेमस के मध्य उस भाग को विच्छेदित कर दिया जाता है। जिसका सम्बन्ध व्यक्ति की उच्च्च मानसिक क्रियाओं तथा संवेगों से होता है। इस चिकित्सा से रोगी की स्थिति में व्यापक स्थायी सुधार आ जाता है तथा रोगी को समायोजन करने में सहायता प्राप्त होती है यह स्थिति जोखिमपूर्ण भी होती है।

3) **मनोसामाजिक चिकित्सा:-** मनोविदलता के रोगी की निराशा तथा मानसिक द्वन्द्वों को समाप्त करने की विभिन्न मनोसामाजिक विधि है-

समूह चिकित्सा:- इस पद्धति में रोगी के लिए ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जिसमें वह आपस में मिल-जुलकर व्यक्तिगत रूप से वार्तालाप कर सके। अपनी बीमारी के कारणों तथा उत्पत्ति को समझ सके। समूह चिकित्सा पद्धति में साइकोड्रामा तथा भूमिका चिकित्सा विधि का भी प्रयोग किया जाता है, जिसके द्वारा व्यक्ति के अचेतन मे दमित विचार, इच्छायें एवं विफलतायें अभिनय करते समय अभिव्यक्त हो जाती हैं जिससे रोगी के लक्षणों में कमी आ जाती है। इसके अतिरिक्त पेंटिग चिकित्सा पद्धति तथा संगीत चिकित्सा पद्धति आदि का भी प्रयोग उपचार हेतु किया जाता है।

4) **सामुदायिक उपचार:-** इस उपचार पद्धति में मनोविदलता के विभिन्न रोगियों की व्यवस्था एक ऐसे स्थान पर की जाती है जहाँ वे स्वंय की देख-रेख में अपनी आवश्यकताओं जैसे-भोजन, पानी, स्नान मलमूत्र त्याग आदि कार्य स्वंय करते हैं। कुछ समय पश्चात रोगी स्वंय सामान्य रूप से कार्य करने लगते हैं। अतः उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार दिखाई देता है। सामान्यतः इन रोगियों का उपचार मानसिक अस्पतालों में ही सम्भव है। इन्हें घर पर रखकर ठीक नहीं किया जा सकता है।

12.4 उत्साह-विषाद मनोकृति

सन् 1854 में फालरेट व बेलार्जर ने इस रोग के सम्बन्ध में सर्वप्रथम व्याख्या प्रस्तुत की। फालरेट ने 1879 में एक ऐसे रोगी का उल्लेख किया, जिसमें उत्साह व विषाद दोनों लक्षणों की मिश्रित अवस्था थी। इस अवस्था को उसने संक्रमणकालीन अवस्था कहा।

12.4.1 उत्साह-विषाद मनोविकृति के सामान्य लक्षण-

सामान्यतः उत्साह-विषाद मनोविकृति के रोगियों में अग्रलिखित सामान्य लक्षण पाए जाते हैं-

i. **प्रत्यक्षीकरण की अयोग्यता:-** सामान्यतः इस प्रकार के रोगियों के प्रत्यक्षीकरण का दोष आ जाता है। वे किसी भी वस्तु को देख सकते हैं लेकिन सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं होती। अगर इस प्रकार के रोगियों को कुछ पढ़ने को दिया जाए तथा उनसे पूछा जाये कि इसमें क्या लिख हुआ है तो वे कुछ भी बताने में समर्थ नहीं होते। इसका प्रमुख कारण होता है कि इनमें एकाग्रता की कमी होती है।

ii. **अति उत्तेजना व चेतना का खोना:-** सामान्यतः इस प्रकार के रोगी को अधिक उत्तेजनशील एवं आवश्यकता से अधिक उदास रहने के फलस्वरूप अपनी चेतना का ज्ञान नहीं होता। रोगियों को समय, स्थान, दिनांक आदि का भी ज्ञान नहीं होता। इसका मुख्य कारण इस रोग का मुख्य आक्रमण है जिसके फलस्वरूप अचेतन मन की ग्रन्थियाँ चेतना पर प्रभाव जमा लेती है तथा रोगी की चेतना समाप्त या कम हो जाती है। इस तथ्य को क्रेपलिन ने भी स्वीकार किया है क्योंकि उसका कहना था कि इस प्रकार के रोग के अन्तगर्त रोगी को अपने वातावरण का ज्ञान या चेतना नहीं रहती है।

iii. **मिथ्या निर्णय शक्ति:-** रोगी में झूठ या सत्य के सम्बन्ध में निर्णय शक्ति की कमी हो जाती है जिसके फलस्वरूप वह कभी-कभी वह झूठ को सत्य और सत्य को झूठ समझने लगता है। इसी कारण रोगी में अनेक मिथ्या विचार आते हैं तथा वह सदैव कल्पना की दुनिया में विचरण करता रहता है। अगर वह किसी स्थान पर दो व्यक्तियों को बात करते देखता है, तो यह समझता है कि उसे फांसी देने की योजना बनाई जा रही है। वे इसे पूर्ण रूप से सही भी मान लेते हैं।

iv. **विपर्यय तथा विभ्रम:-** रोगी मुख्यतः अपनी चित्तवृत्ति के अनुरूप विपर्यय तथा विभ्रम का शिकार हो जाता है, जैसे- उत्साह की अवस्था में रोगी किसी भी आने वाले व्यक्ति को अपना पुत्र समझ लेता है तो विषाद की अवस्था में वहीं आने वाला व्यक्ति उसे घातक शत्रु के रूप में दिखाई पड़ता है।

v. **संवेगात्मक तनावों का बाहुल्य:-** उत्साह-विषाद मनोविकृतियों के रोगियों में मुख्यतः संवेगात्मक की प्रधानता होती है। उत्साह की अवस्था में रोगी बहुत अधिक आशावादी हो जाता है। वह इतनी क्रियायें करता है जिनको देखकर पता चलता है कि उसमें बहुत अधिक शक्ति आ गई है। विषाद की अवस्था में रोगी आवश्यकता से अधिक भयभीत व सदैव निर्धनता या अपनी हत्या आदि की भावना से ग्रस्त रहता है। विषाद के 75 प्रतिशत रोगी आत्माहत्या करने के विचार रखते हैं तथा करीब 10 से 15 प्रतिशत रोगी आत्महत्या करने का प्रयास भी करते है

12.4.2 उत्साह-विषाद मनोविकृति के कारण-

उत्साह-विषाद मनोविकृति के पूर्व प्रवृत्यात्मक तथा तात्कालिक कारणों को हम मुख्यतः तीन भागों में बांटकर अध्ययन कर सकते हैं-

1. जैविक कारक
2. मनोवैज्ञानिक कारक
3. सामाजिक कारक

1) **जैविक कारक:** क्रेपलिन, प्रेसी आदि ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के कारण वंश-परंपरा माना जाता है। ब्रिज का कहना है कि करीब 70 प्रतिशत रोगियों में वंश परम्परा का हाथ रहता है। स्ट्रेकर व इबो का मत है कि व्यक्ति वंश-परम्परा के माध्यम से कुछ शीलगुण प्राप्त करता है जो इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक है। रोसनॉफ हैण्डी व प्लेसे आदि अनेक विद्वानों ने यमजों पर अध्ययन किये तथा अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मूलभूत रूप से इस रोग को उत्पन्न करने का कारण वंश-परंपरा है। स्लेटर ने अपने अध्ययन द्वारा इस तथ्य को बताया कि समान जनसंख्या में इस रोग के उत्पन्न होने की सम्भावना केवल 0.05 ही है, जबकि इन रोगियों के माँ-बाप, भाई-बहिन व बच्चों में इस रोग की सम्भावना करीब 15 प्रतिशत है। रेनी व फाउलर ने 208 उत्साह-विषाद के रोगियों में 63 प्रतिशत वंश-परंपरा के प्रभाव को पाया। इन अध्ययनों से पूर्णतः स्पष्ट हो गया है कि इस रोग के उद्भव में वंशपरम्परा का महत्वपूर्ण हाथ है।

कुछ विद्वानों ने शारीरिक बनावट को भी इस रोग का कारण माना है, जैसे- क्रेशमर ने 85 रोगियों का अध्ययन करने के बाद बताया कि इस रोग का कारणशारीरिक गठन भी है। उसने पिकनिक प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों को प्रमुख रूप से इस रोग का शिकार बताया। इस प्रकार के व्यक्ति कद में तो नाटे तथा इनकी तोंद लम्बी होती है। शेल्डन ने ऐसे व्यक्तियों को जिनकी

शारीरिक बनावट 'मेसोमार्फिक' व 'ऐण्डोमार्फिक' प्रकार की होती है, इस रोग का शिकार शीघ्र हो जाने वाला बताया है।

कुछ विद्वानों ने आन्तरिक-शारीरिक उपद्रव्यों को भी इस रोग का कारण माना है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में गड़बड़ी, पाचन क्रिया तथा रक्त-चाप में गड़बड़ी आदि के कारण से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। एक अत्यन्त रोचक तथ्य का विवरण जेम्स 1961 ने किया है। उसने बताया है कि विषाद-स्थिति की अपेक्षा उत्साह की स्थिति व शारीरिक रचना सम्बन्धी कारक अत्यन्त सहायक होता है।

यहाँ इस बात को पूर्णतः ध्यान में रखना चाहिए कि केवल जैविक कारक ही एकमात्र इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक नहीं होते हैं, बल्कि अन्य कारण इसके उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

2) **मनोवैज्ञानिक कारक:** अनेक मनोवैज्ञानिकों ने जैसे-मेयर कर्बी तथा ब्लूलर आदि ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के कारणों में मनोवैज्ञानिक कारकों का उल्लेखनीय प्रभाव बताया है। इनका कहना है कि उत्साह-विषाद मनोविकृति, मनोविकृति के रोगियों में मानसिक गठन एवं मानसिक क्रियाओं का अधिक प्रभाव पड़ता है। पूर्ण रूप से किसी विशेष मनोवैज्ञानिक स्थिति को उत्साह-विषाद के रोग के कारण तथा वर्तमान जटिल व तीव्र दबावपूर्ण अवस्थाएँ इस रोग के विकास में सहायक होती हैं। युंग ने कहा कि जो व्यक्ति बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं, वे प्रधानतः इस मनोविकृति के शिकार हो जाते हैं। फ्रायड ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के मानसिक कारणों की व्याख्या अपने मनोलैंगिक विकास के सिद्धान्त के आधार पर की है। माँ-बाप के बीच व्यवहार मानसिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अधिकतर ऐसा देखा गया है कि अधिकांशतः इस रोग से ग्रस्त रोगी का अत्यन्त कडे अनुशासन, उच्च नैतिक, आदर्ष व मान्यताओं में पालन-पोषण हुआ होता है।

मैक्डूगल ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के मानसिक कारणों पर अधिक जोर दिया है तथा उसके अनुसार यह रोग आत्म-सम्मान व आत्म-समर्पण की प्रवृत्तियों के असंतुलित विकास के कारण उत्पन्न होता है। एडलर ने आत्म-प्रतिष्ठा व हीन-भावना को ही इस रोग का कारण माना है। इसका कहना है कि जब इनका प्रकाशन सही रूप में नहीं होता तो इसका दमन हो जाता है और उसमें हीन-भावना विकसित हो जाती है तथा वह उत्साह-विषाद मनोविकृति के रोग से ग्रस्त हो जाता है। फ्रायड ने परम अहम् व अहम् के आधार पर इस रोग की व्याख्या की है। इसी प्रकार इवाल्ड, स्ट्रेकर, इवॉग आदि विद्वानों ने भी मनोवैज्ञानिक कारकों की प्रधानता को स्वीकार किया है।

3) **सामाजिक कारक:** अनेक विद्वानों का कहना है कि कुछ ऐसी विशेष संस्कृति या सामाजिक कारक होते हैं जहाँ यह रोग अधिक रोग अधिक होता है। इस सम्बन्ध में फीगेलहोल का कहना

है कि न्यूजीलैंड़ में यह रोग मनोविदलता की तुलना में लगभग 21.2 गुना अधिक होता है जबकि अमरीका में इन दोनों के अनुपात में एक विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। करोदर ने अपने एक अध्ययन में देखा कि सर्वप्रथम मानसिक अस्पताल में प्रवेश करने वाले रोगियों में से करीब 28.6 प्रतिशत रोगी मनोविदलता के थे तथा केवल 3.8 प्रतिशत उत्साह-विषाद के रोगी थे। इसी प्रकार के परिणाम स्टेनब्रोंक ने भी प्राप्त किए हैं। इस सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि जटिल स्वभाव की संस्कृति व इनके निश्चित प्रभाव के सम्बन्ध में पूर्ण अध्ययन प्राप्त नहीं प्राप्त हुए हैं।

12.4.3 चिकित्सा-उपचार-

इस रोग से ग्रस्त अधिकांश रोगियों को चिकित्सालय में भर्ती करा देना आवश्यक है क्योंकि वहाँ उनकी देखभाल भली-भाँति की जा सकती है। इनके उपचार के लिए सबसे प्रमुख बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि इन्हें बाह्‌य उद्दीपकों के प्रभाव से बचाया जाए। उनके सामने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न न की जाए जिससे उन्हें झुँझलाहट या उत्साह की प्रेरणा मिले। उन्हें टहलने, पढ़ने एवं हाथ से कुछ कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए तथा उनमें यह आशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए कि ये निश्चित रूप से ठीक हो जायेंगे। उद्दीप्त अवस्था में रोगियों को प्रतिदिन गर्म पानी से नहिलाने से लाभ होता हैं

उत्साह की अवस्था में रोगी को ऐसी क्रियाओं से बचाना चाहिए जिससे उनकी शक्ति में कमी आती है। इस प्रकार के रोग की हाइड्रो-उपचार पद्धति जिसमें ठण्डे पानी के टब में रोगी को डाला जाता है तथा कुछ शामक औषधियों का भी प्रयोग करना चाहिए जिनसे उनके लक्षणों की तीव्रता में कमी आ सके। कुछ विशेष स्थितियों में विद्युत पद्धति लाभदायक होती है। इस प्रकार के प्रयासों से रोगी के लक्षणों की व्यवस्था में कमी आ जाती है तथा मनोचिकित्सा की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है।

विषादात्मक स्थिति में रोगियों के उपचार में मुख्य ध्यान यह देना चाहिए कि उसकी निष्क्रियता को दूर किया जा सके। उसे गर्म पानी से नहिलाना तथा मालिश करवानी चाहिए। विद्युत आघात भी लाभदायक होता है। रोगी के साथ सदैव सहानुभूति व्यवहार करना चाहिए तथा उसके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए या ऐसी स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि उसकी मनोचिकित्सा सम्भव हो सके।

12.5 व्यामोही विकृति या पैरानोइया विकृति

क्रेपलिन ने उन मानसिक रोगियों के लिये पैरानोइया शब्द का प्रयोग किया जिनके व्यक्तित्व में व्यवस्थित रूप से महानता तथा दण्ड के व्यामोह पाये जाते हैं तथा रोगी का शेष व्यक्तित्व पर्याप्त

संगठित रहता है। उसका वास्तविकता से उचित सम्पर्क बना रहता है। रोगी का बौद्धिक ह्रास बहुत कम होता है। उसके व्यामोह की व्याख्या इतनी तार्किक होती है कि यदि उनको एक बार सही मान लिया जाए तो उसके समस्त विचार तार्किक लगने लगते हैं। कैमरॉन के अनुसार रोगी तनाव एवं चिन्ता से बचाव करने के लिए आरोपण तथा अस्वीकारण का सहारा लेता है जिसके परिणाम स्वरूप रोगी में व्यवस्थित व्यामोह उत्पन्न हो जाते हैं। पैरानोइया के रोगी में कामुकता आदि व्यामोह भी उत्पन्न हो जाते हैं।

वीटेन एवं लायड 2003 के अनुसार,"व्यामोही विकृति ऐसी विकृति है जिसमें रोगी दण्डात्मक तथा श्रेष्ठता विकृतियों से ग्रस्त हो जाता है।''

बुटजिन इत्यादि 1993 के अनुसार,"व्यामोही विकृति में व्यामोही तन्त्र में मौलिक असामान्यता पायी जाती है। वास्तव में कुछ मामलों में व्यामोही तन्त्र ही असामान्य होता है, अन्य दृष्टियों से व्यक्ति सामान्य प्रतीत होता है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि व्यामोही विकृति से प्रभावित रोगी में श्रेष्ठता एवं दण्ड सम्बन्धी भ्रान्ति की अधिकता होती है। अन्य दृष्टियों से रोगी का व्यवहार सामान्य होता है।

पैरानोइया के रोगी जो नकारात्मक धारणा बनाते है उसका दायरा आगे चलकर बढाते जाते हैं कभी किसी एक को अपने लिए खतरा मानते हैं तो आगे चलकर अनेक लोगों को स्वंय के लिए खतरा मान सकते हैं, जबकि ऐसा वास्तव में होता नहीं है। वह ऐसा 'मिथ्या समुदाय' तैयार कर लेते हैं जिसके बारे मे उसकी धारणा होती है कि लोग उसे नुकसान पहुँचाने की साजिश रच रहे हैं या रचते हैं इसलिए उसका समायोजन खराब हो जाता है। तथा कार्यकुशलता में कमी आ जाती है।

12.5.1 व्यामोही विकृति (पैरानोइया) के प्रकार तथा उसके लक्षण-

पैरानोइया के प्रकारों को व्यामोहों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है-

1) दण्डात्मक पैरानोइया:- इसमें दण्ड सम्बन्धी व्यामोहों की प्रधानता होती है। रोगी को यह दृढ़ विश्वास होता है कि कोई व्यक्ति उसे दण्ड देने का प्रयत्न कर रहा है। वह सभी को अपना शत्रु मानता है। परिवार के सभी सदस्य उसकी दृष्टि में शत्रु होते हैं। रोगी के ये विचार उसे आक्रमण करने या हत्या करने के लिए बाध्य कर देते हैं।
2) महानता पैरानोइया:- यह रोगी के ऐसे दिवास्वप्न हैं जिसे वह सत्य मान बैठता है। रोगी को यह विश्वास होता है कि वह विष्व का महानतम व्यक्ति है, सबसे धनी व्यक्ति है, सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है आदि।

3) कामुक पैरानोइया:- फिशर ने एक रोगी का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। एक युवक एक उच्च कुल की लड़की से प्रेम करने लगा, उसने अपनी प्रेमिका को एक प्रेम पत्र लिखा उत्तर न प्राप्त होने पर समझा कि वह युवती विवाह करना चाहती है, उसने दूसरा पत्र उस युवती के पिता को लिखा कि उसकी पुत्री मुझसे विवाह करना चाहती है पिता ने उस युवक को मानसिक चिकित्सालय भेज दिया।
4) ईर्ष्यात्मक पैरानोइया:- इसमें रोगी पति या पत्नी एक-दूसरे पर विश्वासघात का आरोप लगाते हैं। तथा उनके प्रमाणों को एकत्र कर जासूसी करते हुए दिखाई देते हैं। यदि रोगी घर से बाहर जाता है, तो स्त्री उससे लौटने के बारे में पूछती है कि कितनी देर में घर वापस आओगे। यह सुनकर रोगी को सन्देह हो जाता है कि उसकी स्त्री उसके पीछे अपने प्रेमी से मिलेगी। इसी प्रकार स्त्री भी अपने पति के चरित्र पर सन्देह करने लगती है।
5) मुकदमेबाजी का पैरानोइया:- इसमें रोगी लगातार मुकदमों में लीन रहता है। अपने दोशों को दूसरों पर आरोपित करता है इन रोगियों के मुकदमों को कोई कानून आधार नहीं होता है। इसलिए रोगी मुकदमा हार जाता है। रोगी अपने अधिकारों के लिये निरन्तर मुकदमेबाजी करता रहता है। यदि मुकदमा जीत भी जाता है तो पुनः किसी बहाने से उस मुकदमे को फिर से लड़ना आरम्भ कर देता है।
6) सुधारात्मक पैरानोइया:- इसमें रोगी अपने को संसार का सुधारक तथा उद्धार करने वाला मानता है। वातावरण में उत्पन्न विभिन्न संकटों का निवारण करने के लिये वह अपने को सक्षम मानता है।
7) धार्मिक पैरानोइया:- इसमें रोगी अपने को 'परमात्मा का अवतार' या भगवान का दूत समझता है। रोगी अनेक प्रकार के उपदेश देते हैं। जैसे-रोगी व्यक्तियों को उपदेश देता है कि रात में अपनी पत्नी को अन्य व्यक्तियों के पास भेज देना चाहिए। उनका ऐसा करना बहुत बड़ा धार्मिक कार्य है। इस प्रकार इन रोगियों के ये विचित्र विचार इन्हें यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि उनका जन्म संसार की रक्षा करने के लिये हुआ है।
8) रोग से सम्बद्ध पैरानोइया:- इस प्रकार के व्यामोह रोगियों में दृढ़ विश्वास पैदा करते हैं। रोगी अपने को भयंकर रोग जैसे- कैंसर, टी. बी. आदि से ग्रस्त पाता है। उसे विश्वास है कि उसका इलाज कोई चिकित्सक नहीं कर सकता है। उसका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जा रहा है|

12.5.2 व्यामोही विकृति (पैरानोइया) के कारण-

पैरानोइया तत्कालिक दबावपूर्ण परिस्थतियों तथा व्यक्तित्व के दोषपूर्ण विकास के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। प्रमुख कारण अग्रलिखित हैं-

1) **जैविक कारक:-** पैरानोइया को अनुवांशिकता के आधार पर मानने के लिये आज तक कोई प्रमाण नहीं मिला है। परन्तु फिर भी कुछ विद्वान इसे वंशानुक्रम कारक के रूप में स्वीकार करते

हैं। क्रेशमर का कथन है। कि ऐस्थनिक प्रकार के व्यक्तियों में पैरानोइया उत्पन्न होने की सम्भावना पायी जाती है जबकि रोजेन एवं केने ने बताया कि पैरानोइया का विशिष्ट शारीरिक संरचना से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न रासायनिक स्राव तथा मस्तिष्क कोशों के स्वरूप का पैरानोइया की उत्पत्ति में प्रत्यक्ष समबन्ध नहीं है।

2) **मनोवैज्ञानिक कारक:-** पैरानोइया की उत्पत्ति के बारे में मनोवैज्ञानिक कारक अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कोलमैन ने अपने अध्ययनों के आधार पर मनोवैज्ञानिक कारकों के प्राथमिक कारक निम्नलिखित बताये हैं-

i) दोषपूर्ण व्यक्तित्व का विकास:- बाल्यावस्था में बालक पर कठोर अनुशासन, अतिसंरक्षण, अत्याधिक तिरस्कार, माता-पिता के उच्च नैतिक आदर्ष आदि ऐसी स्थितियाँ हैं जो व्यक्ति के जीवन में दबावपूर्ण समस्याओं के उपस्थित होने पर उसका सन्तुलन खो देती है। दोषपूर्ण विकास बचपन से ही बच्चे की जिद्दी, अनुशासन विरोधी, उदास तथा पलायन प्रवृत्ति वाला बना देता है। यही अनुपयुक्त विकास आगे चलकर व्यक्ति में विभिन्न व्यामोह एवं विभ्रम उत्पन्न करता है। वह जीवन में महान बनने के स्वप्न देखने लगता है। अपने उच्च लक्ष्यों तथा आकांक्षाओं को प्राप्त करने में जब वह असफल होता है तो उसमें दण्डात्मक व्यामोह उत्पन्न हो जाते हैं।

ii) असफलता तथा हीनता:- रोजेन एवं केने के अनुसार पैरानोइया के रोगी का व्यवहार स्वंय के प्रति श्रेष्ठता की भावना, सामाजिक व्यवहार आलोचनात्मक, बैचेनी, लालसा, प्रशंसा इनके अन्दर की भावनाओं की पुष्टि करती दिखाई देती है। रोगी अपने अन्दर हीनता की भावना को क्षतिपूर्ति द्वारा महानता के व्यामोह के रूप में पूरा करने का प्रयास करता है।

iii) लैंगिक असमायोजन:- व्यक्ति के दोषपूर्ण विकास, कठोर अनुशासन तथा उच्च नैतिक आदर्शों के कारण ऐसा रोगी स्वभाविक यौन इच्छा को घृणित तथा पाप समझने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप वह अपने को ब्रह्मचारी या महान धार्मिक गुरू मान लेता है। अतः रोगी लैंगिक असमायोजन से ग्रस्त हो जाता है।

iv) अपराध प्रवृत्ति का आरोपण:- रोगी के उच्च नैतिक आदर्शों के परिणामस्वरूप साधारण से अनैतिक कार्य भी उसमें अपराध भावना को जाग्रत करते हैं। इस प्रकार यह अपराध प्रवृत्ति व्यक्ति में आत्म-अवमूल्यन की स्थिति उत्पन्न करती है, जिससे उसका अहं अत्याधिक प्रभावित होता है। अतः वह आरोपण की प्रक्रिया द्वारा इस स्थिति को दूसरे व्यक्तियों में देखना आरम्भ कर देता है। पैरानोइया के रोगियों की यह अपराध प्रवृत्ति उनमें सन्देह प्रवृत्ति को जाग्रत करती है।

v) तात्कालिक परिस्थितियाँ:- दोषपूर्ण व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में विभिन्न तात्कालिक परिस्थितियाँ अग्रलिखित हैं-

क) ऐसी स्थिति जो रोगी में अविश्वास तथा सन्देह पैदा करे और रोगी को यह आशंका हाने लगे कि उसके जीवन के साथ कोई धोखा तथा विश्वासघात किया जा रहा है।

ख) वे परिस्थितियाँ जो रोगी को सतर्क बनाने के अतिरिक्त सामाजिक सम्पर्कों से दूर रखें।

ग) ऐसी अनेक परिस्थितियाँ जो ईर्ष्या तथा शत्रुता को बढ़ाती है जिसमें रोगी में हीनता, घृणा तथा विरोध की भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं।

घ) वे परिस्थितियाँ जो व्यक्ति के आत्मसम्मान को कम करती है। रोगी आरोपण तथा अस्वीकारण मनोरचनाओं का सहारा लेता है।

ङ) जब व्यक्ति अपने दोषों को दूसरे व्यक्तियों में देखता है। तो उसकी चिन्ता एवं तनाव आदि बढ़ जाता है और वह तीव्रता के साथ अस्वीकारण तथा आरोपण मनोरचना का प्रयोग करता है।

च) जब कोई परिस्थिति क्रूरता के व्यवहार को प्रदर्शित करती है तब व्यक्ति उसका प्रतिरोध करता है।

छ) ऐसी परिस्थितियाँ जो व्यक्ति में एकान्तता तथा आलस्य उत्पन्न करती है, व्यक्ति मौन धारण कर लेता है।

vi) कैमरान का स्वनिर्मित समुदाय:- रोगी अपने काल्पनिक जगत में रहते हुए विभिन्न व्यामाहों से ग्रस्त रहता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति वातावरण के विभिन्न व्यक्तियों से सम्पर्क करने में घबराहट का अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति ने तो सहयोग करता है और न ही सहयोग लेना पसन्द करता है। ऐसी स्थिति में रोगी के कार्यों तथा विचारों में समन्वय नहीं पाता है और व्यक्ति अपना व्यक्तिगत जगत निर्मित कर लेता है जिसे कैमरॉन ने ‘स्वनिर्मित समुदाय’ का नाम दिया है।

3) **सामाजिक कारक:-** पैरानोइया के रोगियों का शैक्षिक सामाजिक, आर्थिक स्तर तथा जीवन लक्ष्य अन्य रोगियों की अपेक्षा अधिक उच्च होता है। इन लक्ष्यों की पूर्ति हेतु अपनी योग्यता के अभाव में उनमें हीनता एवं अनुपयुक्ता की भावना उत्पन्न हो जाती है। यह भावना महानता के व्यामोह में विकृत एवं अतिरंजित रूप में पायी जाती है। लुकास 1962 ने एक रोगी की आयु लिंग तथा सामाजिक स्तर को विश्लेषित कर निम्नांकित निष्कर्ष प्रस्तुत किया है-

i) उच्च सामाजिक स्तर वाले तथा अविवाहित रोगियों में दैवीय शक्ति एवं धार्मिक व्यामोह की प्रधानता पायी जाती है।

ii) महानता का व्यामोह घर के सबसे बड़े बालक तथा उच्च सामाजिक स्तर वालों में अधिक पाया जाता है।

iii) हीनता सम्बन्धी व्यामोह की प्रधानता निम्न सामाजिक स्तर तथा परिवार के छोटे बालक में अधिक पायी जाती है।

iv) कामुका व्यामोह स्त्रियों में अधिक पाया जाता है।

v) अधिक आयु वाले रोगियों में दण्डात्मक व्यामोह की प्रधानता पायी जाती है।

इससे स्पष्ट होता है व्यामोही विकृति या पैरानोइया से प्रभावित व्यक्ति की दूसरों के बारे में सोच ही नकारात्मक एवं संदेहात्मक हो जाती है। उसकी दृष्टि में लोग उसे नुकसान पहुचाने का शड्यन्त्र रच रहे हैं। यह उसके लिये ही हानिकारक हो जाता है। वह कुसमायोजन के शिकार हो जाता है।

12.5.3 उपचार तथा परिणाम-

यह दुर्भाग्य की बात है कि व्यामोही विकृति या पैरानोइया से ग्रस्त रोगी स्वंय के बारे में ऐसी नकारात्मक एवं सेदेहात्मक धारण बना लेते हैं। कि वे उससे बाहर निकलना ही नहीं चाहते हैं। वे अपनी तथ्यहीन बातों के विरूद्ध कुछ सुनना भी नहीं चाहते हैं। वे समझते हैं कि उन्हें कुछ हुआ ही नहीं है। अतः वे उपचार के लिए तैयार ही नहीं होते। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी रहती है।

यह भी देखा जाता है। कि यदि उन्हें दवाएँ दी जाएँ तो वे दवाएँ लेने को तैयार नहीं होते हैं। उन्हें यह आशंका रहती है कि लोग उनके साथ धोखा कर देंगें। दवा में कुछ अन्य हानिकारक चीजे मिला देंगे अतः वे कहते है कि आप लोग क्यों परेशान हैं। हमें कुछ नहीं हुआ है।

यदि ऐसे रोगी अस्पताल में भर्ती किये जाते हैं। तो वे अन्य रोगियों एवं स्टाफ से स्वंय को बड़ा या श्रेष्ठ मान लेते हैं तथा तद्नुसार व्यवहार भी करते हैं। उनकी यह भी धारण होती है कि उनके परिवार के लोग तथा स्टाफ वाले मिलकर उनके खिलाफ षड्यन्त्र रच रहे हैं। बगैर किसी उचित कारण के उन्हें जबरदस्ती भर्ती कराया गया है वे कोर्ट का भी सहारा ले सकते हैं। कभी-कभी कोर्ट उन्हें उनके अनुसार रहने के लिए आदेश भी पारित कर देती है। चूंकि उनकी दृष्टि में उन्हें कुछ हुआ ही नहीं है, अतः वे दवाएँ लेने से भी मना कर देते हैं।

वैसे कभी-कभी यह भी देखा जाता है कुछ व्यामोही रोगी यह सोचने लगते हैं कि यदि स्टाफ की बात नहीं मानी गई तो उन्हें काफी समय तक यहां रहना पड़ सकता है। अतः ऐसी दशा में दवाओं को खा लेना ही अच्छा है ताकि जल्दी यहां से मुक्ति मिल जाए। वे यह भी कह सकते हैं कि पहले उनके मन में अवश्य ही नकारात्मक, संदेहात्मक विचार जरूर थे, परन्तु अब इन विचारों का वे परित्याग कर चुके हैं, मनोविदलता को निम्न नौ वर्गों में वर्गीकृत किया अतः उन्हें यहां से मुक्त कर दिया जाए। इन कारणों से व्यामोही विकृति के रोगियों के उपचार में आपेक्षित सफलता कठिन हो जाती है।

12.6 सारांश

डी.एस.एम IV में मनोविदलता एवं व्यामोही विकृति इत्यादि को एक वर्ग मनोविक्षिप्तीय वर्ग में रखा गया है। मनोविदलता मानसिक विकारों के एक समूह का नाम है जिनमें कुछ विशिष्ट लक्षण रोगी के व्यक्तित्व को अव्यवस्थित कर देते है।

मनोविदलता को निम्न नौ वर्गों में वर्गीकृत किया है।

मनोविदलता विकारों की उत्पत्ति के लिये कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है। विभिन्न कारक सम्मिलित रूप से अपना प्रभाव व्यक्ति पर डालते हैं। इन कारकों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. जैविक कारण
2. मनोवैज्ञानिक कारण
3. सामाजिक कारण

मनोविदलता के सामान्य लक्षण एवं अनेक नवीन उपचार पद्धतियाँ है।

फारलेट तथा बेलार्जर 1850,1954 ने बताया कि ये दो लक्ष्ण हैं। क्रेपलिन के अनुसार इसमें रोगी एक ही रोग से ग्रस्त होता है। लेकिन इस रोग के दो विरोधी लक्षण होते हैं। अत्याधिक प्रसन्नता की अवस्था में विचारों की उड़ान, मनोगत्यात्मक सक्रियता व उत्साह के लक्षण प्रकट होते हैं। लेकिन इसके विपरीत उदासीनता की अवस्था में रोगी में मानसिक अवरोध, विचारों में तर्कहीनता, मनोत्यात्मक सक्रियता की कमी आदि के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

उत्साह-विषाद मनोविकृति के अनेक लक्षण, कारण एवं उपचार है।

व्यामोही विकृति को पहले पैरानोइया कहा जाता था। पैरानोइया की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर हुई है-पैरा तथा नोइया। पैरा का अर्थ है, मिथ्या अथवा विकृत तथा नोइया का अर्थ हैः तर्क। इस प्रकार पैरानोइया का शाब्दिक अर्थ मिथ्या तर्क अथवा विकृत तर्क करना होता है।

12.7 शब्दावली

- **पेरानायड मनोविदलता:** पेरानायड मनोविदलता के रोगियों में बाह्र वास्तविकता से वांछनीय समायोजन करने की योग्यता का पूर्ण अभाव पाया जाता है।
- **व्यामोह:** व्यामोह ऐसे झूठे विश्वास हैं जो व्यक्ति के मस्तिष्क में इतना गहरा स्थान बना लेते हैं कि लाख तर्क तथा प्रमाण देने पर भी रोगी उन्हें सत्य ही मानता है।

- **व्यामोही विकृति:** ऐसी विकृति है जिसमें रोगी दण्डात्मक तथा श्रेष्ठता विकृतियों से ग्रस्त हो जाता है।

12.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) मनोविदलता के रोगी में कौन कौन सी संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ होती है।
2) सीजो-अफेक्टिव मनोविदलता किसे कहते है?
3) संक्रमणकालीन आवस्था किसे कहते है?
4) उत्साह विवाद के कौन-कौन से तीन कारण है।
5) हाइड्रो उपचार पद्धति किससे की जाती है।
6) पैरानोइया का शाब्दिक अर्थ क्या है?
7) स्वनिर्मित समुदाय किसे कहते है? स्वनिर्मित समुदाय किसकी खोज है?
8) व्यामोह व विभ्रम में क्या अन्तर है।

उत्तर: 1) i) अनुपयुक्ता ii) उदासीनता एवं संवेगात्मकता का अभाव iii) दृढ़ता iv) उभय भावात्मकता v) अविश्वास vi) विपरीत संवेगात्मकता vii) सांवेगिक रिक्तिता।

2) सीजो-अफेक्टिव मनोविदलताः- मनोविदलता के इस प्रारूप में मानसिक लक्षणों की प्रधानता के साथ-साथ उत्साह अथवा विषाद की स्थिति भी उत्पन्न होती है। इसमें रोगी चिन्ता की स्थिति में विचित्र व्यवहार प्रकट करता है।

3) फालरेट ने 1879 में एक ऐसे रोगी का उल्लेख किया, जिसमें उत्साह व विषाद दोनों लक्षणों की मिश्रित अवस्था थी। इस अवस्था को उसने संक्रमणकालीन अवस्था कहा।

4) i) जैविक कारक ii) मनोवैज्ञानिक कारक iii) सामाजिक कारक

5) ठण्डे पानी के टब में रोगी को डाला जाता है तथा कुछ शामक औषधियों का भी प्रयोग करना चाहिए जिनसे उनके लक्षणों की तीव्रता में कमी आ सके।

6) पैरानोइया की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर हुई है-पैरा तथा नोइया। पैरा का अर्थ है, मिथ्या अथवा विकृत तथा नोइया का अर्थ हैः तर्क। इस प्रकार पैरानोइया का शाब्दिक अर्थ मिथ्या तर्क अथवा विकृत तर्क करना होता है।

7) रोगी अपने काल्पनिक जगत में रहते हुए विभिन्न व्यामाहों से ग्रस्त रहता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति वातावरण के विभिन्न व्यक्तियों से सम्पर्क करने में घबराहट का अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति ने तो सहयोग करता है और न ही सहयोग लेना पसन्द करता है। ऐसी स्थिति में रोगी

के कार्यों तथा विचारों में समन्वय नहीं पाता है और व्यक्ति अपना व्यक्तिगत जगत निर्मित कर लेता है जिसे कैमरॉन ने 'स्वनिर्मित समुदाय' का नाम दिया है।

8) व्यामोह ऐसे झूठे विश्वास हैं जो व्यक्ति के मस्तिष्क में इतना गहरा स्थान बना लेते हैं कि लाख तर्क तथा प्रमाण देने पर भी रोगी उन्हें सत्य ही मानता है।

विभ्रम में रोगी, धमकी, तिरस्कार तथा प्रशंसा भरी आवाजें सुनता है। कभी-कभी अपने कपड़े उतारकर मारपीट करने के लिए तैयार हो जाता है। इसके विपरीत रोगी को दृष्टि, स्वाद, गंध तथा स्पर्ष सम्बन्धी विभ्रम होते हैं। वह एकांत में बैठकर अलौकिक द्रश्य देखता है जैसे कभी भगवान स्वंय प्रकट होते हैं, कभी दिव्य प्रकाश के रूप में संदेष प्राप्त होता है। कभी मृत सम्बन्धियों के दर्शन करता है। शक्की स्वभाव के रोगी अक्सर स्पर्ष सम्बन्धी विभ्रम का अनुभव करते हैं।

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान- डा0 अरूण कुमार सिंह
- असामान्य मनोविज्ञान- डा0 डी0एन0 श्रीवास्तव
- असामान्य मनोविज्ञान- डा0 लाभ सिंह एवं डॉ0 गोविंद तिवारी

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोविदलता के स्वरूप तथा प्रकारों की व्याख्या करिये।
2. मनोविदलता के लक्षण विकसित होने की अवस्थाओं पर प्रकाश डालिये।
3. पैरानोइया के कारणों का विवेचन करिये।
4. उत्साह विषाद मनोविकृति के लक्षणो पर प्रकाश डालिए।
5. टिप्पणी-
    i) मनोविदलता के कारण
    ii) उत्साह विषाद के लक्षण
    iii) पैरानोइया के सामाजिक कारक
    iv) विधुत आघात चिकित्सा

इकाई-13 मनोचिकित्सा की प्रकृति एवं महत्व

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 मनोचिकित्सा के स्वरूप एवं अर्थ
13.3.1 मनोचिकित्सा की प्रमुख परिभाषाएँ
13.3.2 मनोचिकित्सा के स्वरूप
13.4 मनोचिकित्सा के उद्देश्य एवं महत्व
13.5 मनोचिकित्सा के सामान्य चरण
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न मानसिक रोगों के बारें में जान गये होंगे।

आज के भागदौड़ की ज़िन्दगी में लोग मानसिक रूप से परेशान रहने लगे हैं इन परेशानियों के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने लगता है। व्यक्तित्व में आये विकार को समय रहते दूर करना आवश्यक हो जाता है जिसके लिए विभिन्न प्रकार की मनोचिकित्सा प्रविधियों का उपयोग किया जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप मनोचिकित्सा की प्रकृति, महत्व एवं चिकित्सा में अपनाये जाने वाले सामान्य चरणों के बारे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि-

- मनोचिकित्सा का अर्थ क्या है।
- मनोचिकित्सा का वर्तमान में महत्व क्या है एवं उसके उद्देश्य क्या हैं।
- मनोचिकित्सा के सामान्यतः कौन-कौन से चरण हैं।

13.3 मनोचिकित्सा के स्वरूप एवं अर्थ

सामान्यतः किसी अस्वस्थ व्यक्ति को ओषधि या शल्य आदि प्रविधियों से पुनः स्वस्थ बनाने को उपचार या चिकित्सा कहा जाता है। इसी तरह से मानसिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा उपचार करना मनोचि कित्सा कहा जाता है। सरल शब्दों में चिकित्सा का अर्थ है रोगों का उपचार करना तथा मनोचिकित्सा का अर्थ है मानसिक रोगों का उपचार करना। इसे नैदानिक हस्तक्षेप भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने व्यवसायी या पेशेवर क्षमता का उपयोग करते हुए मानसिक रूप से या सांवेगिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने की कोशिश करता है। सामान्यतः मनोचिकित्सा का उपयोग उन मानसिक रोगियों के लिए लाभकारी होता है जो मनःस्नायुविकृति से पीड़ित होते हैं। इसका उपयोग दूसरे प्रकार के मानसिक रोगियों जैसे मनोविक्षिप्त या मनोविकृति के रोगियों के साथ भी किया जाता है परन्तु ऐसे रोगियों को मनोचिकित्सा के अलावा मेडिकल चिकित्सा भी देना अनिवार्य होता है। मनोचिकित्सा का मूल उद्देश्य व्यक्ति के समायोजन के मार्ग में आने वाले अनेक दमित मानसिक विषम जालों, कुण्ठाओं व अन्तर्द्वन्द्वों के निर्बलताजन्य लक्षणों के अचेतन से चेतन स्तर पर ला कर के व्यक्तित्व विकास व समायोजन के मार्ग को इस प्रकार प्रषस्त्र करना होता है, जिससे व्यक्ति में अपने मूल संघर्षो के स्वरूप को लगभग वस्तुपरक आधार पर समझ सकने की व्यापक व गहरी अंतर्दृष्टि विकसित हो सके और ऐसा व्यक्ति जीवन में अपना बहुपक्षीय समायोजन परिपक्वता तथा सुयोग्यता के साथ-साथ एक प्रकार से अपनी आत्म-सिद्धि के मार्ग पर भी सहज रूप से अग्रसर हो सके।

13.3.1 मनोचिकित्सा की प्रमुख परिभाषाएँ-

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने मनोचिकित्सा को अपने-अपने तरह से परिभाषित किया है जिसमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं।

ओलबर्ग के अनुसार- मनोचिकित्सा सांवेगिक प्रकृति की समस्याओं के लिए उपचार का एक प्रारूप है जिसमें एक प्रशिक्षित व्यक्ति जान बूझकर एक रोगी के साथ पेशेवर संबंध इस उद्देश्य से कायम करता है कि उसमें घनात्मक व्यक्तित्व वर्द्धन तथा विकास हो, व्यवहार के विकृत प्रारूप के मंदित वर्तमान लक्षणों को दूर किया जा सके या उसमें परिर्माजन किया जा सके।

किसकर के अनुसार- मनोचिकित्सा में मनोवैज्ञानिक विधियों से संवेगात्मक व व्यवहार विक्षोभों का उपचार किया जाता है। ये विधियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं जिनमें से कुछ व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है तथा कुछ समूहों से। किसकर की यह परिभाषा मुख्यतः निम्न विशेष बातों पर जोर देती हैं।

- इसमें संवेगात्मक एवं व्यवहार सम्बन्धी विक्षोभों से ग्रस्त व्यक्तियों का उपचार किया जाता है।
- मनोचिकित्सा विधियाँ मुख्यतः मनोवैज्ञानिक होती है
- मनोचिकित्सा विधियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती है - व्यक्तिगत एवं सामूहिक।

रौटर के अनुसार- मनोचिकित्सा मनोवैज्ञानिक की एक सुनियोजित क्रिया होती है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की ज़िन्दगी में ऐसा परिर्वतन लाना होता है जो उसकी ज़िन्दगी को भीतर से अधिक खुश तथा अधिक संरचनात्मक या दोंनों ही बनाता है।

निटजील, वर्नस्टीन एवं मिलिक (1991) के अनुसार- मनोचिकित्सा में कम से कम दो सहभागी होते हैं जिसमें से एक को मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निबटने में विशेष प्रशिक्षण तथा सुविज्ञता प्राप्त होती है और उसमें से समस्या का अनुभव करता है और वे दोंनो समस्या को कम करने के लिए एक विशेष संबंध कायम किये होते हैं। मनोचिकित्सा संबंध एक पोशक परन्तु उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध होता है जिसमें मनोवैज्ञानिक स्वरूप की कई विधियों का प्रयोग रोगी के वांछित व्यवहार में परिर्वतन लाने के लिए किया जाता है।

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि मनोचिकित्सा में रोगी तथा चिकित्सक के बीच वार्तालाप होता है जिसके माध्यम से रोगी अपनी सांवेगिक समस्याओं एवं मानसिक चिन्ताओं की अभिव्यक्ति करता है तथा चिकित्सक विशेष सहानुभूति, सुझाव एवं सलाह देकर रोगी में आत्मविश्वास तथा आत्म सम्मान कायम करता है जिससे रोगी की समस्याएँ धीरे-धीरे समाप्त होती चली जाती हैं और उसमें ठीक ढंग से अपने वातावरण के साथ समायोजन करने की क्षमता पुनः विकसित हो जाती है।

13.3.2 मनोचिकित्सा के स्वरूप-

मनोचिकित्सा में निहित स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नांकित तीन मौलिक तथ्यों पर प्रकाश डाला जायेगा।

1) **सहयोगी-** मनोचिकित्सा में दो सहयोगी होते हैं- पहला सहयोगी रोगी होता है तथा दूसरा सहयोगी चिकित्सक होता है। रोगी वह व्यक्ति होता है जिसमें सांवेगिक या मानसिक क्षुब्धता इतनी अधिक उत्पन्न हो जाती है कि उसे किसी प्रशिक्षित चिकित्सक की मदद अपनी समस्याओं के सामाधान के लिए लेना पड़ जाता है। रोगी मे क्षुब्धता की मात्रा अधिक भी हो सकती है या थोड़ी भी हो सकती है। मनोवैज्ञानिक द्वारा किये गये शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि मनोचिकित्सा के लिए सबसे उत्तम रोगी वह होता है जिसमें कुछ विशेष गुण होते हैं। जैसे मनोचिकित्सा से सबसे अधिक लाभ उन रोगियों को होता है जो अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए साधारण मात्रा में चिन्ता दिखाते हो तथा चिकित्सक को अपनी समस्याओं के बारे में सामान्यतः जानकारी दे सकते हैं। गुरमैन तथा राजीन ने अपने अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि की है।

मनोचिकित्सा का दूसरा सहयोगी चिकित्सक होता है। चिकित्सक वह व्यक्ति होता है जो अपने विशेष प्रशिक्षण तथा अनुभव के कारण रोगी को अपनी समस्याओं से निबटने में मदद करता है। चिकित्सा के लिए यह आवश्यक है कि उसमें विशेष कौषल हो और वह विशेष रूप से प्रशिक्षित

हो ताकि मनोरोगी की समस्याओं को समझ सके और तब उसके साथ इस ढंग से अन्तःक्रिया कर सके कि मनोरोगी फिर अपनी समस्याओं से ठीक ढंग से सामना कर सके। प्रसिद्ध मनोचिकित्सक कार्ल रोजर्स के अनुसार एक उत्तम चिकित्सक में परानुभूति, प्रमाणिकता तथा शर्तहीन धनात्मक सम्मान देने की क्षमता आवश्यक होनी चाहिए।

2) **चिकित्सीय संबंध-** मनोचिकित्सा का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू चिकित्सक तथा मनोरोगी के बीच विकसित विशेष सम्बन्ध होता है जिसे चिकित्सीय सम्बन्ध कहा जाता है। चिकित्सीय सम्बंध एक ऐसा सम्बंध होता है जिनमें चिकित्सक तथा रोगी दोंनों ही यह जानते हैं कि वे एक विशेष स्थान पर क्यों एकत्रित हुए हैं तथा उनकी अन्तः क्रियाओं का नियम तथा लक्ष्य क्या है। चिकित्सक की यह कोशिश रहती है कि वह रोगी के साथ एक ऐसा स्वस्थ्य सम्बन्ध बना सके कि वह अर्थात रोगी अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए काफी उत्सुक रहे। कोरचीन के अनुसार चिकित्सीय सम्बन्ध में आषक्ति तथा अनाषक्ति या अलगाव का संतुलन होना चाहिए।
3) **मनोचिकित्सा की प्रविधि-** मनोचिकित्सा की कई पद्धतियाँ हैं। मनोचिकित्सा की प्रत्येक पद्धति की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। मनोचिकित्सा की प्रविधियों में अन्तर होने का मुख्य कारण उनके पीछे छिपे हुए व्यक्तित्व सिद्धान्त तथा वे सारे परिर्वतन हैं जो चिकित्सक रोगी में उत्पन्न करना चाहता है। यद्यपि मनोचिकित्सा के कई प्रकार हैं, फिर भी कई प्रविधियाँ ऐसी हैं जो उन सभी प्रकारों में सामान्य हैं इन प्रविधियों का स्वरूप मूलतः मनोवैज्ञानिक होता है। मनोचिकित्सा के कुछ ऐसी प्रविधियाँ निम्नलिखित हैं।

   i) सूझ उत्पन्न करना

   ii) सांवेगिक अशांति को कम करना

   iii) नयी सूचना देना

   iv) परिवर्तन के लिए उम्मीद एवं विश्वास विकसित करना

स्पष्ट हुआ कि मनोचिकित्सा एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक रोगी की सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उत्तम निदान हो पाता है।

13.4 मनोचिकित्सा के उद्‌देश्य एवं महत्व

आधुनिक युग में मनुष्य ने अपने बाहर के संसार के प्रति अधिक से अधिक मात्रा में ज्ञान अर्जित किया है। उसने न केवल पृथ्वी के भीतर छिपे हुए प्राकृतिक खजानों को ढूंढ निकाला है बल्कि अन्तरिक्ष तक भी अपनी पहुँच बना ली है। परन्तु जितना ध्यान उसने बाह्य जगत पर दिया है उतना अपने भीतर के संसार पर नहीं दिया। अपने से बाहर की दुनिया के बारे में तो वह बहुत कुछ जान गया है। परन्तु स्वयं के बारे में वह कुछ भी नहीं जानता है। वह यह तो जानता है कि सौर मण्डल

के प्रत्येक ग्रह की दूरी पृथ्वी से कितनी है लेकिन उसे यह नहीं मालूम है कि वह स्वयं अपने ही आत्म से कितनी दूरी पर है।

अपने स्व से बढ़ती हुई दूरी मनुष्य की दुष्चिन्ता तथा उससे उत्पन्न होने वाली विभिन्न असमान्यताओं का मूल कारण है। राधा कमल मुखर्जी के शब्दों में आज का युग मूल्य विहीनता का युग है। अतः आज के मानव को न तो अपना होश है और न ही अपनी मंजिल का। वह दिशा के अभाव में इधर-उधर भटक रहा है।

मनोचिकित्सा का सामान्य उद्देश्य रोगी के संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं तथा मानसिक तनाव को दूर करके उसमें सामर्थ्य, आत्मबोध, पर्याप्तता, परिपक्वता एवं अपने आसपास के सामाजिक वातावरण से समंजस्य स्थापित करने की क्षमता आदि का विकास करना होता है।

मनोचिकित्सा के कुछ विशिष्ट लक्ष्य या उद्देश्य निम्नांकित हैं।

1) तीव्र भावों की अभिव्यक्ति करके सांवेगिक दबाव को कम करना:- मनोचिकित्सा का एक उद्देश्य रोगी के भीतर छिपे भावों की अभिव्यक्ति करना होता है। इसके पीछे तर्क यह छिपा होता है कि जब रोगी अपने भीतर छिपे परेशानी उत्पन्न करनेवाले भावों की अभिव्यक्ति करता है तो इससे उसका सांवेगिक दबाव कम हो जाता है तथा रोगी की मानसिक बीमारी की गम्भीरता बहुत ही कम हो जाती है।
2) रोगी द्वारा सही कार्य करने की प्रेरणा को मज़बूत करना:- मनोचिकित्सा का कोई भी प्रकार हो मनोचिकित्सक हमेशा यह कोशिश करते हैं कि वे रोगी को सही कार्य करने की प्रेरणा को तीव्र करें। मनोचिकित्सक का यह एक सामान्य उद्देश्य है जो बहुत महत्वपूर्ण हैं रोगी अधिक वांछनीय ढंग से व्यवहार कर सके इसके लिए सुझाव, अनुनय, सम्मोहक आदि जैसी चिकित्सा का सहारा लिया जाता है।
3) अवांछित एवं अनुचित आदतों में परिवर्तित करना:- मनोचिकित्सा का उद्देश्य एक ऐसी परिस्थिति को उत्पन्न करना होता है जिसमें रोगी के अवांछित, अनुचित एवं व्यवहारगत संकट उत्पन्न करने वाली आदतों का प्रतिस्थापन नई वांछित आदतों से किया जा सके। इसके लिए मनोचिकित्सक अनुबंधन एवं सीखने के सामान्य नियमों का सहारा लेते हैं तथा वे ऐसे वांछित आदतों के बाद पुनर्वलन देकर उसको सीखलाने की कोशिश करते हैं।
4) रोगी की संज्ञानात्मक संरचना में परिमार्जन करना:- मनोचिकित्सा का एक उद्देश्य यह भी है कि रोगी अपने बारे में दूसरे व्यक्तियों के बारे में तथा वातावरण के अन्य वस्तुओं एवं घटनाओं आदि के बारे में पूर्णतः अवगत हो तथा इस संज्ञानात्मक संरचना में व्याप्त असंगति को पहचाने तथा उसे आवश्यकतानुसार परिवर्तित करे क्योंकि इस तरह की असंगतता से व्यक्ति की सामान्य अवधारणा हो जाती है और वह मानसिक रोग का शिकार हो जाता है।

5) रोगी के ज्ञान को तथा प्रभावी निर्णयों को लेने की क्षमता में वृद्धि करना:- मनोचिकित्सा का उद्देश्य रोगी के वर्तमान ज्ञान को इस योग्य बना देना होता है कि वह अपनी जिन्दगी में प्रभावी निर्णय ले सके। उसे विभिन्न अवसरों के बारे में पर्याप्त ज्ञान दिया जाता है तथा प्रत्येक विकल्प के पक्ष विपक्ष में तथ्य उनके सामने रखा जाता है तथा फिर उन्हें ऐसी परिस्थितियों का सामना कराके ऐसी क्षमता धीरे-धीरे विकसित की जाती है कि वे अपने जीवन के सभी महत्वपूर्ण निर्णय को लेने में सक्षम हो सके।
6) रोगी में आत्मज्ञान या सूझ में वृद्धि करना:- मनोचिकित्सा का उद्देश्य रोगी में पर्याप्त सूझ विकसित करना होता हैं जिससे वह यह समझ सके कि वह किस तरह व्यवहार करता है तथा क्यों करता हैं। ऐसा करने के लिए मनश्चिकित्सक अचेतन में छिपे इच्छाओं को चेतन में लाते हैं। जब रोगी अपने अचेतन की अभिप्रेरणाओं एवं इच्छाओं को चेतन में लाकर उसे समझने की कोशिश करता है तो उससे उसमें आत्म ज्ञान या सूझ उत्पन्न होता है और रोगी की कुसमायोजी व्यवहार की गम्भीरता में कमी होने लगती है।
7) अन्तर्वैयक्तिक संबंधों पर बल दिया जाना:- मनोचिकित्सा का एक उद्देश्य यह भी स्पष्ट करना होता है कि किस तरह से रोगी का व्यवहार उसके चिन्तन से प्रभावित होता है और उसका व्यवहार किस तरह से चिन्तन के विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता है। इसमें रोगी तथा अन्य लोगों के बीच हुए संचार पर पर्याप्त बल दिया जाता है जिससे अन्तवैयक्तिक सम्बन्ध को अधिक सन्तोषजनक बनया जा सके।
8) रोगी के सामाजिक वातावरण में परिवर्तन उत्पन्न करना:- मनोचिकित्सा का प्रारूप चाहे किसी भी प्रकार का हो, इसका एक उद्देश्य रोगी के सामाजिक वातावरण में परिवर्तन लाना होता है। किसी भी रोगी का वास्तविक भला तो तभी होता है जब वह अपने दिन-प्रतिदिन की ज़िन्दगी में ठीक ढंग से सामायोजन कर सके। यद्यपि रोगी का सामाजिक वातावरण जिसमें वह दूसरों से प्रभावित होता है, मनोचिकित्सा के नियन्त्रण से बाहर होता है, फिर भी कोशिश इस बात की की जाती है कि रोगी के सामाजिक वातावरण के एजेन्टों को इस ढंग से प्रभावित किया जाये जिससे उसमें पर्याप्त परिवर्तन आ जाये और रोगी का सामाजिक जीवन सुखमय हो सके।
9) रोगी के शारीरिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन लाना जिससे उसके दर्दनाक अनुभूतियों को कम किया जा सके तथा शारीरिक चेतना में वृद्धि की जा सके:- मनोचिकित्सा में यह एक पूर्व कल्पना रहती है कि मन तथा शरीर दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मनोचिकित्सा का मत है कि रोगी के शारीरिक दुखों को कम करके तथा उसमें शारीरिक चेतना में वृद्धि करके मनोचिकित्सा की परिस्थिति के लिए उन्हें अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। यही कारण है कि कुछ मनोचिकित्सा जैसे व्यवहार चिकित्सा में प्रशिक्षण देकर उनके तनाव एवं चिन्ता को दूर किया जाता है और इसे प्रति अनुबन्ध के लिए आवश्यक भी माना जाता है उसी तरह रोगी के शारीरिक चेतना में वृद्धि करने के लिए विभिन्न तरह के व्यायामों जो भारतीय योग के नियमों पर आधारित होते हैं, का सहारा लिया जाता है।

10) 13.5 मनोचिकित्सा के सामान्य चरण-

1) पारस्परिक विश्वास तथा सौहार्द की स्थापना:- प्रथम चरण में मनश्चिकित्सक तथा सम्बन्धित रोगी के मध्य निःसंकोच आदान-प्रदान के मार्ग को प्रषस्त्र करने के लिए पारस्परिक विश्वास के पर्यावरण व सौहार्द की स्थापना की अत्याधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि ऐसे सद्भाव के परिवेश में ही तनावों व अन्तर्द्वन्द्वों को मनोचिकित्सक के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए अभिप्रेरित होता है। इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता एक ऐसे शान्त कमरे की होती है जहाँ रोगी के साथ साक्षात्कार अथवा विचार विमर्श किया जा सके। चिकित्सक एक ऐसी मैत्रीपूर्ण और स्वीकार्यात्मक अभिवृत्ति अपनाता है जो रोगी में विश्वास स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सके और रोगी खुले दिल से अपनी वास्तविक समस्याओं को बताते समय सुरक्षा का अनुभव करें।
2) रोगी द्वारा संघर्षपूर्ण तनावों की मुक्त अभिव्यक्ति:- दूसरे चरण में रोगी अपनी तीव्र संघर्षों के तनावों को निःसंकोच भाव से मनोचिकित्सक के सामने अभिव्यक्ति करता है। मनोचिकित्सक भी बहुत ध्यान से उसके प्रत्येक भावपूर्ण अभिव्यक्ति में अपनी गहन अभिरूचि प्रदर्शित करता है और उसे इस सम्बन्ध में अधिक से अधिक अपने व्यक्तिगत व एक प्रकार से मनोचिकित्सक, रोगी द्वारा कही गई छोटी से छोटी बात में एक प्रकार की सार्थकता के होने का संकेत भी देते हुए होता है, जिससे रोगी भी अपनी प्रत्येक बात निर्भय होकर कहने के लिए स्वभाविकतः अभिप्रेरित होता रहता है।
3) वास्तविक समस्या के प्रति अर्न्तदृष्टि का विकास:- इस चरण में रोगी के समस्यापूर्ण व्यवहार अथवा अपसमायोजन के सम्बन्ध में तथा रोगी द्वारा प्रस्तुत भावपूर्ण वार्तालाप के परिप्रेक्ष्य में मनोचिकित्सक आवश्यक अर्न्तद्रष्टि विकसित करता है। रोगी भी इस विषय में मनोचिकित्सक को अपनी वास्तविक समस्या को बताने में उसकी सहायता करता है, परन्तु इस सम्बन्ध में वास्तविक निर्णय, मनोचिकित्सक का ही होता है। इस प्रकम में रोगी को भी पर्याप्त आत्मबोध का अवसर मिलता है और वह अपने व्यवहार की न्यूनताओं, अकुशलताओं, अयोग्यताओं, अक्षमताओं व मिथ्या आंकाक्षाओं तथा उलझनों को भी लगभग निरपेक्ष रूप में समझने लगता है।
4) व्यक्तित्व परिवर्तन:- जैसे ही रोगी अपने द्वारा अपनाये जाने वाले दोषपूर्ण ढंगों के बारे में अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेता है वैसे ही वह इस योग्य हो जाता है कि अपने व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन ले आये और अधिक उपयुक्त समायोजी उपायों को अपनायें। हो सकता है कि यह परिवर्तन बहुत छोटे हो या इतने बड़े हों कि रोगी को अपनी धारणाओं, आदतों, सामाजिक भूमिकाओं और व्यवहार के अन्य पक्षों को पूरी तरह से बदलना पड़े। कुछ स्थितियों में किसी दोषपूर्ण आदत की जगह सही आदत डालने में रोगी की सहायता की जाती है। अन्य स्थितियों में उसकी धारणाओं अथवा प्रतिक्रिया प्रारूपों में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने में उसकी सहायता

की जाती है। व्यक्तित्व परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया मूलतः नयी बातों को सीखने पर केन्द्रित रहती हैं और इसे संवेगात्मक पुनः शिक्षण कहा जाता है।

5) समापन:- जब रोगी अपने द्वन्द्वों पर काबू पा लेता है और अपनी समस्याओं के समाधान की ओर काफी कुछ अग्रसर हो जाता है तब चिकित्सा के समापन का समय आ जाता है। वैसे तो यह कोई अधिक कठिन चरण नहीं है क्योंकि स्वयं रोगी को विश्वास होता है कि अब वह स्वतन्त्र रूप से आगे बढ़ सकता है। फिर भी यह आवश्यक है कि रोगी के लिए क्लीनिक के द्वार सदैव खुले रखे जाये और जब भी उसे आवश्यकता पड़े वह मनोचिकित्सक के पास चला आयें।

13.6 सारांश

मनोचिकित्सा का उद्देश्य पर्याप्त व्यक्तित्व समायोजन प्राप्त करने में रोगी की सहायता करना है। अतः इसमें विभिन्न अंशों तक व्यक्तित्व परिवर्तन अथवा व्यक्तित्व पुनः संरचना करनी पड़ती है। किस रोगी के लिए कौन सी प्रविधि अपनाई जाये यह इस बात पर निर्भर करता है कि रोगी की आवश्यकताएँ क्या हैं उसके पास साधन कितने हैं, और रोगी को कितनी चिकित्सीय सुविधाएँ उपलब्ध हैं। मनोचिकित्सा के कुछ लक्ष्य या उद्देश्य होते हैं जैसे- तीव्र भावों की अभिव्यक्ति करके सांवेगिक दबाव को कम करना, रोगी द्वारा सही कार्य करने की प्रेरणा को उत्पन्न करना, अवांछित एवं अनुचित आदतों को परिवर्तित करना, रोगी की संज्ञानात्मक संरचना में परिर्माजन करना, रोगी के आत्मज्ञान तथा सूझ में वृद्धि करना, रोगी के सामाजिक वातावरण में परिवर्तन करना, अर्न्तवैयक्तिक संबंधों पर बल दिया जाना आदि मनोचिकित्सा का प्रमुख लक्ष्य है। विविध सिद्धान्तों पर आधारित अनेक मनोचिकित्साओं की विचारधाराओं तथा प्रविधियों में भिन्नता पायी जाती है, फिर भी आरम्भ से लेकर अन्त तक कुछ ऐसी अवस्थाएँ तथा चरण है जो सभी मनोचिकित्साओं में समान रूप से पाये जाते हैं। जैसे- पारस्परिक विश्वास तथा सौहार्द की स्थापना, रोगी द्वारा संघर्षपूर्ण तनावों की मुक्त अभिव्यक्ति, वास्तविक समस्या के प्रति अंतर्दृष्टि का विकास, व्यक्तित्व परिवर्तन, सौहार्दपूर्ण समापन आदि।

13.7 शब्दावली

- **मनोचिकित्सा:** मानसिक रूप से अस्वस्थ एवं सावेंगिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करना मनोचिकित्सा कहलाता है।
- अंतर्दृष्टि**:** व्यक्ति के स्वंय के बारे में आत्मज्ञान या आत्मबोध।
- **सांवेगिक दबाव:** रोगी के भीतर छिपे हुए भाव को सावेंगिक दबाव कहते हैं।

- **संज्ञानात्मक संरचना:** रोगी का अपने बारे में, दूसरे व्यक्तियों के बारे में तथा वातावरण के अन्य वस्तुओं एवं घटनाओं के बारे में, जानकारी सोच एवं विचार ही उसका संज्ञानात्मक संरचना होता है।
- **अन्तवैयक्तिक संबन्ध:** व्यक्ति का अपने सामाजिक वातावरण में उपस्थित अन्य लोगों के साथ व्यवहार
- **मनःस्नायुविकृति:** यह संज्ञानात्मक, संवेगात्मक व व्यवहारात्मकता से संबन्धित मानसिक विकृतियों का एक साधारण प्रकार है। दूसरे शब्दों में रोगी मानसिक रूप से तो अस्वस्थ्य रहता है लेकिन उसे आसपास के वातावरण आदि के बारे में पूर्ण ज्ञान होता है।

13.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) मनोचिकित्सा के प्रमुख उद्देश्य कौन-कौन से हैं।
2) मनोचिकित्सा के सामान्य चरण कौन-कौन से हैं।

उत्तर: 1) मनोचिकित्सा के प्रमुख्य उद्देश्य निम्न हैं।

- तीव्रभावों की अभिव्यक्ति करके सांवेगिक दबाव को कम करना
- रोगी द्वारा सही कार्य करने की प्रेरणा को मजबूत करना
- अवांछित एवं अनुचित आदतों को परिवर्तित करना
- रोगी की संज्ञानात्मक संरचना में परिमार्जन करना
- रोगी में आत्मज्ञान या सूझ में वृद्धि करना

2) मनोचिकित्सा के सामान्य चरण -

- पारस्परिक विश्वास तथा सौहार्द की स्थापना करना
- रोगी द्वारा संघर्षपूर्ण तनावों की मुक्त अभिव्यक्ति
- वास्तविक समस्या के प्रति अंतर्दृष्टि का विकास
- व्यक्तित्व परिवर्तन समापन

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology and Modern life (Taraporevala)
- Davison, GC & Neal J.M. (1986) Abnormal Psychology: An experimental clinical Approach, John Wiley & Sons, Newyork.
- Miller, M.C. : Psychoanalysis and Its Derivatives.
- Mac Donal, Ladell: Tessus, P.20

- Page- Abnormal Psychology, P.46.
- Symonds- The dynamics of Human Adjustment
- अरूण कुमार सिंह (2001, 2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- एच0के0 कपिल (2001), अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः भार्गव बुक हाउस कचहरी घाट आगरा।
- डॉ0 लाभ सिंह, डॉ0 गोविन्द तिवारी- असामान्य मनोविज्ञान (2001) असामान्य मनोविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- मखीजा एवं मखीजा (1980, 2009) अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल हास्पीटल रोड, आगरा।

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोचिकित्सा को परिभाषित करते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. मनोचिकित्सा के महत्व एवं प्रकृति का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. मनोचिकित्सा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख चरणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई-14 निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक मनोचिकित्सा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक मनोचिकित्सा
14.4 मनोचिकित्सा की प्रविधियाँ
14.5 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा
14.6 फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण चिकित्सा के प्रमुख चरण
14.7 सम्मोहन चिकित्सा
14.8 सम्मोहनात्मक व्यवहार
14.9 व्यवहार चिकित्सा
14.10 अनिदेशात्मक या रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा
14.11 सारांश
14.12 शब्दावली
14.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन के पूर्व आप विभिन्न प्रकार के मानसिक विकारों के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे। अब प्रश्न यह उठता है कि उक्त मानसिक विकारों के समाधान हेतु किस प्रकार की मनोचिकित्सा की आवश्यकता होती है।

सामान्यतः किसी मानसिक रोगी के लिए कौन सी चिकित्सा की प्रविधि अपनाई जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि मानसिक रोगी की आवश्यकताएँ क्या हैं, उसके पास साधन कितने है। और रोगी को कितनी चिकित्सीय सुविधायें उपलब्ध हैं।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप विभिन्न प्रकार के मनोचिकित्सा प्रविधियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें और यह भी जान पायेंगे कि इन प्रविधियों का उपयोग किन-किन मानसिक रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है तथा उसमें किन-किन चरणों का प्रयोग होता है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे कि -

- मनोचिकित्सा के कौन-कौन से प्रकार होते हैं।
- मनोचिकित्सा की कौन सी प्रविधि किस प्रकार के मानसिक रोग को दूर करने के लिए उपयोग में लायी जाती है।
- मनोचिकित्सा की विभिन्न प्रविधियों का रोगी के लिए क्या महत्व है।
- निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक चिकित्सा क्या है।
- मनोचिकित्सा विधियों का प्रयोग कैसे किया जाता है।

14.3 निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक मनोचिकित्सा

किसी भी मनोचिकित्सा को सफल बनाने में कितना उत्तरदायित्व चिकित्सक का होना चाहिए और कितना स्वयं रोगी का, इस विषय पर मनोचिकित्सकों के बीच मतविभिन्नता है। निदेशात्मक मनोचिकित्सा में चिकित्सक अधिक सक्रिय भूमिका निभाता है। वह रोगी के अचेतन में दमित संवेगात्मक मनोग्रन्थियों को पता लगाने में स्वंय पहल करता है और व्यक्तित्व परिवर्तन के लिए धनात्मक क्रियाएँ करने के लिए रोगी को प्रोत्साहित करता है।

अनिदेशात्मक (Non Directive) चिकित्सा में चिकित्सक अपेक्षाकृत कम सक्रिय रहता है और चिकित्सा की सफलता में रोगी की सक्रिय भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार की पद्धति का प्रतिपादन कार्ल रोजर्स ने 1942 में किया था।

चिकित्सक रोगी को एक ऐसा मित्रतापूर्ण तथा अनुज्ञात्मक वातावरण प्रदान करता है जिससे रोगी स्वयं को सुरक्षित और स्वीकृत अनुभव करते हुए अपने आन्तरिक विचारों और भावनाओं को किसी निन्दा अथवा प्रतिकार के भय के बिना व्यक्त कर सकता है। मनोचिकित्सक रोगी के अचेतन में छिपी हुई भावनाओं एवं अभिवृत्तियों का सूक्ष्म परीक्षण और व्याख्या करने के बजाए रोगी की केवल इतनी सहायता करने का प्रयास करता है कि वह चिकित्सा स्थिति में अपनी समस्याओं के बारे में स्वयं समझ सके। इन भावनाओं के स्पष्टीकरण के लिए मनोचिकित्सक व्याख्या के स्थान पर प्रतिबिम्ब (Reflection) प्रस्तुत करने से काम लेता है।

सामान्यतः अनिदेशात्मक चिकित्सा ऐसे रोगियों के लिए अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है जिनका व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होता है, किन्तु कुछ विशिष्ट तात्कालिक समस्याओं का सामना करने में कठिनाई का अनुभव कर रहे होते हैं। इसके विपरीत मानसिक रूप से अधिक गम्भीर रोगियों के लिए निदेशात्मक मनोचिकित्सा (Directive Psychotherapy) सर्वाधिक उपयुक्त एवं प्रभावशाली होता है।

14.4 मनोचिकित्सा की प्रविधियाँ

मानसिक रोगों को दूर करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रविधियों का आविष्कार किये हैं। पहले इस प्रकार की विधियाँ दार्शनिक होती थीं, परन्तु आज वैज्ञानिक हो गई हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि आज प्राचीन विधियों का मनोचिकित्सा में कोई महत्व नहीं है। वास्तविक तथ्य यह है कि आज भी हम अनेक प्राचीन विधियों का उपयोग करते हैं मनोचिकित्सा के अनेक प्रकार की विधियों का विकास मानसिक रोगों एवं समस्याओं को दूर करने के लिए हुआ है। जिसका मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने तरीकों से वर्णन किया है।

किसकर के अनुसारः-

(अ) सहायक मनोचिकित्सा (Supportive Psychotherapy)

(ब) पुन:शिक्षात्मक मनोचिकित्सा (Re-educative Psychotherapy)

(स) पुनर्रचनात्मक मनोचिकित्सा (Re-constractive Psychotherapy)

सामान्य वर्गीकरण (General Classification):-

(अ) मनोचिकित्सा की प्राचीन प्रविधियाँ-

- सम्मोहन (Hyponotism)
- संसूचन (Suggestion)
- प्रत्यायन (Persuation)

(ब) मनोचिकित्सा की नवीन प्रविधियाँ-

- मनोविश्लेषण चिकित्सा
- व्यवसायिक चिकित्सा
- अनिदेशात्मक या रोगी केन्द्रित चिकित्सा
- निदेशात्मक चिकित्सा
- सामूहिक चिकित्सा
- अस्तिववादी मनोचिकित्सा
- मनोजैविक चिकित्सा
- आघात चिकित्सा
- मनोनाटक
- मनःशल्य चिकित्सा
- अन्य चिकित्सा

नोरक्रास, प्रोचास्का एवं गालाघेर (Norcross, Prochaska & Gallagher 1989) ने एक सर्वे किया जिसमें उन्होंने मनोचिकित्सा के विभिन्न प्रारूपों के प्रति करीब 579 नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की अपनी उन्मुखता का विश्लेषण किया जिसे नीचे दिये गये चित्र में प्रस्तुत किया गया है।

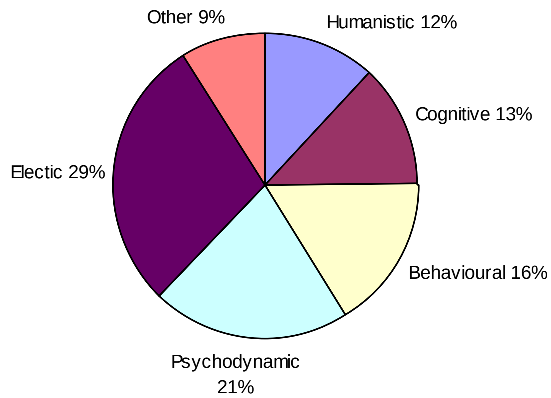

मनोचिकित्सा के विभिन्न प्रकारों के प्रति मनोचिकित्सकों की उन्मुखता

चित्र से स्पष्ट है कि करीब 21 प्रतिशत नैदानिक मनोवैज्ञानिक मनोगत्यात्मक चिकित्सा (Psychodynamics) 16 प्रतिशत मनौवज्ञानिक व्यवहार चिकित्सा (Behavioural) 13 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक संज्ञानात्मक चिकित्सा, 12 प्रतिशत मानवतावादी अनुभावात्मक चिकित्सा, 9 प्रतिशत अन्य चिकित्सा तथा 29 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक ग्रहणशील या संकलित (Electic) उपागम अर्थात कई चिकित्सीय पद्धति को एक साथ मिलाकर एक नया दृष्टिकोण अपनाते हुए रोगियों का उपचार करते हैं।

14.5 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा

मनोचिकित्सा के इतिहास में फ्रायड पहले ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने मानसिक विकृतियों से ग्रसित लोगों के उपचार में मनोवैज्ञानिक विधियों का वैज्ञानिक प्रयोग किया। मनोविश्लेषण चिकित्सा, निदेशक मनोचिकित्सा का एक मुख्य प्रकार है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के अचेतन में दमित अन्तर्द्वन्द्वों व मानसिक विषमजालों को मुक्त साहचर्य, स्वप्न विश्लेषण तथा कभी-कभी दैनिक जीवन की त्रुटियों व विस्मृतियों के संकेतों के आधर पर भी उपचार किया जाता है। इस चिकित्सा प्रविधि की आधारभूत अवधारणा यह है कि जब एक रोगी के रोग से सम्बन्धित दमित अन्तर्द्वन्द्व मनोविश्लेषण द्वारा उसके अचेतन स्तर से चेतन स्तर पर आ जाते हैं तब व्यक्ति के अचेतन में उनके द्वारा जनित संवेगात्मक तनाव भी एक दम कम होने लगता है और उसके पश्चात उससे सम्बन्धित रोग के समस्त लक्षण भी प्रायः स्वतः ही समाप्त होने लगते हैं। परन्तु व्यावहारिकतः

सम्बन्धित व्यक्ति का सफल मनोविश्लेषण कर पाना भी अति महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ अपने में एक जटिल समस्या है।

14.6 फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण चिकित्सा के प्रमुख चरण

1) **स्वतन्त्र साहचर्य की अवस्था (Stage of free Association)-** फ्रायड की चिकित्सा प्रणाली की सबसे पहली अवस्था स्वतंत्र साहचर्य की होती है। रोगी को एक मन्द प्रकाश युक्त कक्ष या कमरे में एक आरामदेह एवं गददीदार कोच पर लिटा दिया जाता है तथा चिकित्सक का आसन रोगी के सिर की तरफ इस ढंग से रखा जाता है कि मनोचिकित्सक रोगी के द्वारा मुक्त वार्तालाप के प्रकष में उठने वाली समस्त छोटी व बड़ी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के स्वरूपों को सरलतापूर्वक देख सकता है, परन्तु रोगी मनोचिकित्सक को देखने की स्थिति में न हो। चिकित्सक रोगी से कुछ देर तक सामान्य ढंग से बातचीत कर एक सौहार्दपूर्ण वातावरण स्थापित कर लेता है और रोगी से यह अनुरोध करता है कि उसके मन में जो कुछ भी आता जाए, उसे बिना किसी संकोच के कहता जाये। चाहें वह विचार सार्थक हो या निरर्थक हो, नैतिक हो या अनैतिक हो। रोगी के बातों को चिकित्सक ध्यान पूर्वक सुनता है और यदि कहीं रोगी को हिचकिचाहट आदि होती है, तब चिकित्सक उसकी सहायता करते हैं। इस प्रविधि को स्वतन्त्र साहचर्य की विधि कहा जाता है जिसका उद्देश्य रोगी के अचेतन में छिपे अनुभवों, मनोलैंगिक इच्छाओं एवं मानसिक संघर्षों को कुरेदकर अचेतन स्तर पर लाना होता है।
2) **प्रतिरोध की अवस्था-** प्रतिरोध की अवस्था स्वतन्त्र साहचर्य की अवस्था के बाद उत्पन्न होती है। रोगी जब अपने मन में आने वाले किसी भी तरह के विचारों को कहकर विश्लेषक को सुनाता है तो इसी प्रक्रिया में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जहाँ वह अपने मन के विचारों को व्यक्त नहीं करना चाहता है और वह या तो अचानक चुप हो जाता है या कुछ बनावटी बातें जानबूझकर करने लगता है। इस अवस्था को प्रतिरोध की अवस्था कहाँ जाता है। प्रतिरोध की अवस्था तब उत्पन्न होती है जब रोगी के मन में शर्मनाक एवं चिन्ता उत्पन्न करने वाली बात आ जाती है जिसे वह चिकित्सक को नहीं बताना चाहता है। फलस्वरूप वह चुप या शान्त हो जाता है या उसकी जगह पर वह कुछ दूसरी बनावटी बातें करने लगता है। चिकित्सक इस प्रतिरोध की अवस्था को समाप्त करने का प्रयास करता है ताकि उसके उपचार में प्रगति हो सके। प्रतिरोध को समाप्त करने के लिए चिकित्सक सुझाव, सम्मोहन, लिखकर विचार व्यक्त करने, पेन्टिंग, चित्रांकन आदि का सहारा लेता है। वह रोगी से घनिष्ठ संबंध स्थापित कर उसका विश्वासपात्र बनता है ताकि प्रतिरोध की इच्छाओं की अभिव्यक्ति आसानी से हो सके।
3) **संक्रमण (Transference)-** मनोविश्लेषण चिकित्सा में प्रतिरोध के साथ ही दूसरी कठिनाई संक्रमण की होती है। संक्रमण का अर्थ है, रोगी के संवेगों आदि का चिकित्सक पर चला जाना

अर्थात रोगी अपने संवेगों का स्वाभाविक पात्र चिकित्सक को मान लेता है। जैसे जैसे चिकित्सा में प्रगति होती है वैसे वैसे ही संक्रमणों का भी विकास होने लगता है तथा रोगी के लिए मनोविश्लेषक ही उसके प्रेम, घृणा क्रोध आदि भावों का पात्र बन जाता है। संक्रमण से चिकित्सक को काफी परेशानी उठानी पड़ती है। यह संक्रमण धनात्मक तथा ऋणात्मक दोंनो प्रकार का होता है। धनात्मक संक्रमण में रोगी के संवेग चिकित्सक के प्रति प्रेम के होते हैं जबकि ऋणात्मक संक्रमण में रोगी चिकित्सक से घृणा करता है। संक्रमण से बचाव के लिए चिकित्सकों को अनुभवी होना आवश्यक होता है। क्योंकि कभी-कभी महिला रोगी अपनी काम प्रवृत्ति का मौलिक पात्र चिकित्सक को समझने लगती है तथा उससे प्रेम करने लगती है। इस प्रकार वह अपनी काम सम्बन्धी मौलिक भावनाओं को स्थानान्तरित कर देती है। चिकित्सक को इस स्थिति का लाभ तो उठाना चाहिए परन्तु स्वयं को इस स्थिति में नहीं डालना चाहिए।

4) **स्वप्नविश्लेषण की अवस्था-** रोगी के अचेतन में दमित प्रेरणाओं, बाल्यावस्था की मनोवैज्ञानिक इच्छाएँ एवं मानसिक संघर्षो को चेतन स्तर पर लाने के लिए विश्लेषक रोगी के स्वप्न का अध्ययन एवं उसका विश्लेषण करता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न का सम्बन्ध अचेतन की दमित इच्छाएँ होती हैं, क्योंकि दमित इच्छाओं का अचेतन में अस्तित्व समाप्त नहीं होता बल्कि वे बाहर निकलने के अवसर खोजती रहती हैं तथा मौका आने पर तृप्ति चाहती हैं तथा स्वप्न उसकी तृप्ति का साधन होता है। इस प्रकार स्वप्न दमित इच्छाओं की पूर्ति है। इसी कारण फ्रायड के सिद्धान्तों को इच्छापूर्ति का सिद्धान्त भी कहा जाता है। रोगियों के स्वप्नों के अनुसार स्वप्नों का विश्लेषण करके चिकित्सक उसके अचेतन के संघर्षों एवं चिन्ताओं के बारे में जान पाते हैं। रोगी के स्वप्नों के अव्यक्त विषयों के अर्थों का विश्लेषण करके चिकित्सक उन्हें समझता है जिससे रोगी को अपने मानसिक संघर्ष एवं संवेगात्मक कठिनाई के वास्तविक कारण को समझने में सहायता मिलती है।

5) **समापन की अवस्था-** चिकित्सा के अन्त में चिकित्सक के सफल प्रयास के फलस्वरूप रोगी को अपने संवेगात्मक कठिनाई एवं मानसिक संघर्षो के अचेतन में छिपे कारणों का अहसास होता है जिससे रोगी में सूझ का विकास होता है। रोगी में सूझ का विकास हो जाने से उसके आत्म प्रत्यक्षण तथा तथा सामाजिक प्रत्यक्षण में परिर्वतन आ जाता है। इससे रोगी की मनोवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों मे धनात्मक परिवर्तन आता है तथा वह अपने व्यक्तिगत प्रेरणाओं को सही सन्दर्भ में समझने लगता है। रोगी में सूझ का विकास हो जाने से चिकित्सक रोगी से धीर-धीरे सम्बन्ध विच्छेद करने का प्रयास करता है।

14.7 सम्मोहन चिकित्सा

यह चिकित्सा प्रविधि प्राचीन, मिश्र की जातियों और अन्य कई जातियों में बहुत पहले से प्रचलित था, किन्तु इसका मनोचिकित्सा में आधुनिक उपयोग मैस्मर ने आरम्भ किया। सम्मोहन एक अत्यधिक संसूच्य अवस्था है जो एक सहयोगशील, प्रयोज्य में एक कुशल चिकित्सक द्वारा उत्पन्न

की जा सकती है। सम्मोहन अवस्था में प्रयोज्य केवल उसकी वास्तविक अथवा प्रतिकात्मक स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करता है। जिसके लिए चिकित्सक उसे निर्देश देता है।

14.8 सम्मोहनात्मक व्यवहार

सम्मोहन के प्रभाव द्वारा अनेक रोचक व्यवहार उत्पन्न किये जो सकते हैं।

1) **भूली हुई स्मृतियों का पुनः स्मरण-** सम्मोहन द्वारा गत जीवन के उन अभिघात पूर्ण अनुभवों को फिर से चेतन स्तर पर लाया जा सकता है जिन्हें रोगी ने किसी कारण वश दमित कर दिया था। बाल्यावस्था और किशोरावस्था के विभिन्न अभिघातपूर्ण अनुभवों को पुनः जाग्रत करके रोगियों के विकृत पर्यावरण सम्बन्धी अभिवृत्तियों अथवा आत्म सम्बन्धी अभिवृत्तियों को संशोधित किया जा सकता है।
2) **आयु प्रतिगमन-** रोगी को सम्मोहित करके यह सूझाव या संसूचन दिया जाता है कि वह फिर से 5 वर्ष का बालक बन गया है। अब वह पांच वर्ष के बालक के समान काम करेगा, बोलेगा, सोचेगा। इस प्रकार प्रतिगमन करते हुए रोगी की लिखावट बचकानी हो जाती है। आयु प्रतिगमन का उपयोग करते हुए रोगी को उस समय से पहले वाली स्थिति में पहुंचा दिया जाता है जिस समय उसके लक्षण पहली बार उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार उन विशिष्ट घटनाओं का याद किया जा सकता है जिनके कारण लक्षणों को अवक्षेपण हुआ था। इस प्रकार आयु प्रतिगमन का प्रयोग दमित अभिघातों को ज्ञात करके उनसे सम्बन्धित लक्षणों को दूर करने में किया जाता है।
3) **स्वपन उपपादन (Dream Induction)-** सम्मोहन द्वारा रोगी में सम्मोहन तन्द्रा अथवा बाद में सामान्य जाग्रत अवस्था में स्वप्न उत्पन्न कराये जा सकते हैं। इस प्रकार के स्वप्न अथवा विभ्रम रोगी के दमित अन्तर्द्वन्दों को व्यक्त करने में काफी सहायक सिद्ध होते हैं और रोगी में संवेगात्मक अभिघात के प्रति प्रभाव ग्रहणशीलता को समाप्त कर देते हैं।
4) **सम्मोहनोत्तर संसूचन (Post-hypnotic suggestion)-** मनोचिकित्सा के लिए सम्मोहन प्रविधियों में सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली विधि सम्मोहनोत्तर संसूचन है। इसके अन्तर्गत सम्मोहन तन्द्रा में दिये गये संसूचनों को रोगी जाग्रतावस्था में पूरा करता है। ऐसा करते समय रोगी को इसका कारण ज्ञात नहीं होता। उदाहरण के लिए सम्मोहन तन्द्रा में रोगी को यह संसूचन दिया जाता है कि जागने के बाद वह हकलाना बन्द कर देगा या सिगरेट नहीं पियेगा। यदि इस प्रविधि को सुचारू रूप से चलाया जाये तो सम्मोहन संसूचन जाग्रतावस्था में बहुत देर तक प्रभावशाली बने रहते हैं। किन्तु प्रायः इनकी अवधि बहुत कम होती है यदि संसूचन का पुर्नबलन (Reinforcement) किया जाये तो वह फिर से हकलाना या सिगरेट पीना शुरू कर देगा।

14.9 व्यवहार चिकित्सा

सर्वप्रथम 1953 में लिण्डस्लेय, स्कीनर तथा सोलोमोन द्वारा प्रकाशित एक शोध पत्र में व्यवहार चिकित्सा पद का उपयोग किया गया। विभिन्न अधिगम सिद्धान्तों विशेष रूप से अनुकूलन सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित नियमों का उपयोग मानसिक रोगों के उपचार में किया जाने लगा। व्यवहार चिकित्सा के बदले में कभी-कभी व्यवहार परिमार्जन पद का भी उपयोग किया जाता है। व्यवहार चिकित्सा मनोचिकित्सा की एक ऐसी प्रविधि हैं जिसमें मानसिक रोगी का उपचार कुछ ऐसी विधियों से किया जाता है जिसका आधार अनुबन्धन के क्षेत्र में विशेषकर पैवलव तथा स्कीनर द्वारा तथा संज्ञानात्मक सीखने के क्षेत्र में किये गये प्रमुख सिद्धान्त या नियम होते हैं। व्यवहार चिकित्सा के पीछे प्रमुख धारणा यह है कि अतीत में सीखी गयी कुसमयोजित क्रियाओं को संशोधित अथवा विस्मृत किया जा सकता है। इस चिकित्सा प्रणाली में ऐसे उद्दीपन चरो में हेरफेर या परिवर्तन किया जाता है जो विशेष प्रकार के व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं। व्यवहार चिकित्सा इस अवधारणा पर आधारित है कि कुसमायोजी व्यवहार के दो प्रमुख कारण होते हैं।

- **दोषपूर्ण अनुकूलित प्रतिक्रियाएँ (Deficient conditioned reaction)-**

व्यक्ति आवश्यक समायोजी अनुक्रियाओं को अर्जित करने में असफल रहता है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे दोषपूर्ण अनुकूलन, सही अनुकूलन के अवसरों का अभाव आदि।

- **अधिशेष अनुकूलन प्रतिक्रियाएँ-**

यह भी संभव हो सकता है कि रोगी ने कुछ विषम परिस्थितियों में कुछ कुसमयोजी दुश्चिंता प्रतिक्रियाएँ सीख ली हैं। अब ये प्रतिक्रियाएँ इतनी सामान्यीकृत हो चुकी हैं कि व्यक्ति वास्तविक परिस्थितियों में भी दुश्चिंतित रहता है।

एक तरफ मनोविश्लेषणवादी चिकित्सक यह प्रयास करता है कि लक्षणों के पीछे छिपे हुए गतिक कारणों की खोज करे और उन्हें पूरी तरह से समाप्त करें। इसके विपरीत व्यवहारवादी चिकित्सक रोगी के लक्षणों को ही मुख्य समस्या मानता है।

व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य ऐसी समायोजी अनुकूलित अनुक्रियायें उत्पन्न करता है जो रोगी की कुसुमयोगी अनुक्रियाओं का स्थान ले सकें।

व्यवहार चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ निम्नवत हैं।

- सरल क्लासिकी अनुकूलन
- उद्दीपन प्रसूत अनुकूलन
- क्रिया प्रसूत अनुकूलन
- अपवर्ती अनुकूलन

- पारस्परिक अन्तर्बाधा

1) **सरल क्लासिकी अनुकूलन (Simple Classical Conditioning)-** यह एक प्रकार का प्रतिसम्बद्धन प्रविधि पर आधारित है। इस प्रकार की प्रविधि का मूल आधार यह है कि विकृति व्यवहार से सम्बन्धित उदीपक एक विशेष सेट या उदीपक स्थिति के साथ अनुबन्धित हो जाते हैं जिन्हें अगर उन्हीं अनुक्रियाओं के साथ अनुबन्धित कर दिया जाये तो रोगी ठीक हो सकता है। उदाहरण के लिए इसका उपयोग असंयत मूत्रता के उपचार में इस प्रकार किया जाता है। इसमें एक ऐसे विद्युत उपकरण का उपयोग किया जाता है कि जैसे ही सोये हुए बालक में मूत्र त्यागने की प्रक्रिया आरम्भ होती है वैसे ही घण्टों बजने लगती हैं। पुनरावृत्ति का परिणाम यह होता है कि जैसे ही मूत्राशय में फुलाव की संवेदना उत्पन्न होती है, वैसे ही बालक जाग जाता है। यह प्रक्रिया निम्नवत होती है।

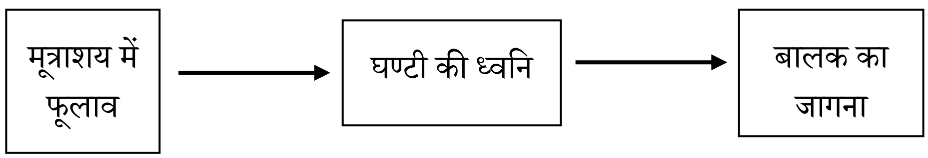

उद्दीपन प्रसूत अनुकूलन (Respondent Conditioning)- वोल्पे (1950) ने दुष्चिन्ता अनुक्रिया को समाप्त करने के लिए उद्दीपन प्रसूत अनुकूलन के नियमों का उपयोग किया। इस प्रविधि को साल्टर तथा ओल्प ने व्यवस्थित असंवेदीकरण कहा है। इस विधि का उपयोग तब किया जाता है जब रोगी में परिस्थिति के प्रति अच्छी तरह से अनुक्रिया करने की क्षमता होती है। परन्तु वह ऐसे नहीं करके उससे डरकर या चिन्तित होकर अनुक्रिया करता है। इस प्रविधि के अन्तर्गत चिकित्सक ऐसी परिस्थतियों की सूची तैयार करता है जो रोगी में दुष्चिन्ता उत्पन्न करती है। इन परिस्थितियों को प्रबलता के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है। जिसे हम उद्दीपन पदानुक्रम कह सकते हैं। चिकित्सक रोगी को गहन पेशीय शिथिलीकरण का प्रशिक्षण देता है। शिथिल अवस्था में उसे यह कहता है कि दुश्चिंता उद्दीपनों के पदानुक्रम में से उस उद्दीपन की स्पष्ट और सजीव कल्पना करें जो कम से कम दुश्चिंता उत्पन्न करता है। यदि उसकी कल्पना से तनाव का अनुभव होने लगे तो वह पुनः शिथिलीकरण पर ध्यान केन्द्रित करें। अन्ततः रोगी इस योग्य हो जाता है कि दुश्चिंता के बिना उद्दीपन की कल्पना कर सकता है। तत्पश्चात उद्दीपन पदानुक्रम के अगले उद्दीपन पर इसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति की जाती हैं अन्त में तीव्रतम दुश्चिंता उद्दीपन की कल्पना करने पर भी रोगी में दुश्चिंता उत्पन्न नहीं होती और धीरे-धीरे रोगी इतना स्वस्थ हो जाता है कि वास्तविक उद्दीपनों का सामना दुश्चिंता के बिना कर सकता है।

2) **क्रिया प्रसूत अनुबन्धन (Operant Conditioning)-** इस प्रकार की प्रविधियों में पुनर्बलन के माध्यम से व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। उदाहरण के लिए भोजन एक शक्तिशाली प्रबलक है। व्यवहार चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक कुसमायोजी व्यवहार प्रारूपों को ठीक करने के

लिए इसका उपयोग किया जाता है। भोजन की मात्रा घटाने-बढ़ाने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली विशेष प्रकार की अनुक्रियाओं का सामान्यीकरण सामाजिक अनुक्रियाओं पर होने लगता है। इस प्रविधि द्वारा मनोविदलन आदि मनस्ताप से पीड़ित रोगियों में सामाजिक अन्तक्रिया बढ़ने लगती है। इस प्रकार की चिकित्सा की एक प्रमुख कमी यह है कि रोग जड़ से समाप्त नहीं होता लेकिन दुखद लक्षणों में अवश्य ही सुधार हो जाता है।

3) **अपवर्ती अनुकूलन (Aversive Conditioning)-** अपवर्ती अनुकूलन या विरूचि चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा की एक ऐसी विधि है जिसमें चिकित्सक रोगी के अवांछित व्यवहार न करने का प्रशिक्षण का कुछ दर्दनाक या असुखद उदीपकों को देकर करता है। इस तरह की प्रविधि में चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या उदीपक के प्रति रोगी में एक तरह की विरूचि पैदा कर दी जाती है। जिससे उत्पन्न होने वाली अवांछित या कुसमायोजित व्यवहार अपने आप धीरे-धीरे बंद हो जाता है।

रोगी में विरूचि उत्पन्न करने के लिए दण्ड, बिजली का आघात तथा कुछ विशेष दवा आदि का उपयोग किया जाता है। उदारणार्थ- मद्य्व्यसनिता के उपचार में एन्टाब्यूज नामक औषधि का उपयोग किया जाता है। इस औषधि के सेवन के पश्चात यदि रोगी मदिरापान करे तो उसमें अनेक पीड़ादायक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे- मतली होना, सांस लेने में कठिनाई, उल्टी होना आदि। एन्टाब्यूज और मदिरापान को बार-बार युग्मित करने पर रोगी समझने लगता है कि मदिरापान से उसे पीड़ादायक स्थिति का सामना करना पड़ेगा। अतः वह मदिरापान करना छोड़ देगा है।

4) **पारस्परिक अन्तर्बाधा-** कभी-कभी कुसमायोजी अनुक्रियाओं को साधारण अन्तर्बाधा अर्थात अप्रबलन द्वारा समाप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को वायुयान से यात्रा करने की दुर्भीति हो तो पहले उसे पृथ्वी पर रूके हुए वायुयान में बैठने का अभ्यास कराना चाहिए। बाद में उसे हवाई अडडे पर दौड़ते हुए हवाई जहाज़ में बैठने का अभ्यास कराना चाहिए और अन्त में अन्य यात्रियों के साथ किसी कम दूरी की उड़ान पर भेजा जा सकता है। इस विधि को पारस्परिक अन्तर्बाधा कहा जाता है।

14.10 अनिदेशात्मक या रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा

इस प्रकार की प्रविधि का प्रतिपादन कार्ल रोजर्स ने 1942 में किया था। रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा इसलिए कहां जाता है क्योंकि स्वयं रोगी ही यथा सम्भव मनोचिकित्सा की अर्न्तवस्तु और दिशा को निर्धारित करता है। इस चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि व्यक्ति स्वयं को और अपने जीवन की घटनाओं को किस प्रकार देखते हैं। रोजर्स ने अपनी चिकित्सा विधि में रोगी के लिए क्लायंट तथा चिकित्सक के लिए सलाहकार शब्द का प्रयोग किया है।

1) **अनिर्देशात्मक मनोचिकित्सा की सामान्य प्रकृतिः**

अनिर्देशात्मक मनोचिकित्सक की उपरोक्त रूपरेखा से उसकी सामान्य प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। अन्य सुसंगठित सिद्धान्तो और इस सिद्धान्त में निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट रूप से द्रष्टिगोचर होते हैं। -

- चिकित्सक के निर्देशन और फलन का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व स्पष्ट रोगी पर होता है।
- चिकित्सक की भूमिका मुख्यतः भावनाओं के स्वीकरण, परिवर्तन और स्पष्टीकरण तक सीमित होती है।
- चिकित्सक और रोगी के बीच कम से कम अन्यारोपण उत्पन्न होने दिया जाता है, ताकि समापन के समय जटिल अन्यारोपण के सम्बन्धों को संभालने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़े।
- इस चिकित्सा पद्धति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के महत्व को समाप्त कर दिया गया है क्योंकि इन्हें सामान्यता अनावश्यक माना जाता है। इन परीक्षणों में नष्ट होने वाले समय को रोगी के समस्याओं के समाधान में लगा देना अधिक लाभप्रद होगा।

2) पीड़ित व्यवहार से सम्बन्धित रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा का सम्प्रत्यय-

रोजर्स के अनुसार मानसिक रोगी वे लोग हैं जिन्होंने अपने अनुभवों की उपेक्षा की है और अपने वास्तविक आत्म से दूर हट गये हैं। कुसमायोजी प्रतिरूप प्रायः बाल्यावस्था में आरम्भ होते हैं। बालक अपने माता पिता से यह सीखता है कि कुछ विशेष आवेग जैसे लैंगिकता, आक्रामकता आदि अस्वीकार्य हैं। माता पिता का स्नेह प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपने आत्म के महत्वपूर्ण पक्षों की अवहेलना कर देता है।

कार्ल रोजर्स का विश्वास है कि आत्मवास्तवीकरण की व्यक्ति में आवश्यकता होती है। चूंकि कुसमायोजित व्यस्क बहुत लम्बे समय से अपनी पहचान के महत्वपूर्ण पक्षों की अवहेलना करता रहता है इसलिए उसकी वृद्धि रूक गयी है। वह नये अनुभवों के प्रति रक्षात्मक हो जाता है। वह गहरे सम्बन्ध स्थापित करने में झिझकता है। वह नई क्रियाओं का अनवेषण नहीं करता है। रोगी केन्द्रित चिकित्सा के अनुसार तन्त्रिकातापी लक्षण इसी अवरूद्ध वृद्धि का परिणाम है।

3) रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा के लक्ष्य और कार्य विधियाँ-

रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा का मुख्य उद्देश्य रोगी की योग्यताओं का सही दिशाओं में विकास करना है और इस दिशा का निर्धारण स्वयं रोगी करता है। रोगी के आत्म सम्प्रत्यय को बढ़ाना मनोचिकित्सा का मुख्य उद्देश्य है। रोगी केन्द्रित चिकित्सक निदान और अन्य प्रकार के मूल्यांकनों की अवहेलना करते हैं वे न तो यह निर्धारित करते हैं कि विचार क्या हैं और न ही उपचार की सामरिकी को निश्चित करते हैं। वे रोगी के वर्तमान जीवन अथवा अतीत की विशिष्ट घटनाओं में भी रूचि नहीं रखते। उनके अनुसार महत्वपूर्ण बात यह है कि रोगी और चिकित्सक इस समय एक दूसरे का सामना किस प्रकार करते हैं।

4) रोजर्स की चिकित्सा प्रक्रियाँ के मुख्य चरण-

- रोगी का सहायतार्थ आगमन (The client comes for help)-

रोजर्स के मतानुसार- रोगी स्वयं ही अपनी कठिनाईयों को दूर करने के लिए चिकित्सक के पास आता है। अन्य शब्दों में रोजर्स का विचार था कि उपचार की सफलता इस बात पर आधारित है कि रोगी में अपनी कठिनाईयों को दूर करने की इच्छा कितनी तीव्र है। यही कारण है कि उसने अपनी प्रविधि की सफलता का प्रथम चरण यह बताया है कि रोगी को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि यहां इस प्रकार पर्यावरण सृजित किया जायेगा कि रोगी स्वयं ही अपनी समस्याओं को समझेगा तथा उनका निराकरण करने का प्रयत्न करेगा।

- भावना की अभिव्यक्ति (Expression of Feeeling)-

जब रोगी चिकित्सक के पास आता है तब चिकित्सक इतना सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करता है और इस प्रकार का पर्यावरण सृजित करता है कि रोगी अपनी भावनाओं आदि को व्यक्त करने को उत्साहित होता है। इसके परिणाम स्वरूप रोगी के अचेतन मन से सम्बन्धित या अन्तर्निहित घृणा, विरोध व अन्य अवांछित भावनाओं को चेतना में आने का अवसर मिलता है। यहां चिकित्सक का प्रमुख कार्य है कि रोगी की इन भावनाओं को समझने का प्रयास करें और रोगी को इन्हें प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित करें।

- रोगी में अंतर्दृष्टि का विकास (Development of Insight)-

अनिदेशात्मक चिकित्सा में चिकित्सक सम्पूर्ण चिकित्सा प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता, रोगी स्वयं ही अपनी समस्याओं से सम्बन्धित इच्छाओं, भावनाओं, विचारों, संवेगों आदि की अभिव्यक्ति करता हैं जिसके फलस्वरूप उसे अपनी कठिनाईयों या समस्याओं के सम्बन्ध में अंतर्दृष्टि उत्पन्न हो जाती है जिससे कि उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है। संवेगों से स्पष्ट रूप का पता चलता है तथा यह प्रयास करना आरम्भ करता है कि वह किस प्रकार पर्यावरण के साथ उचित समायोजित करें।

- धनात्मक चरण-

जब रोगी को अपनी कठिनाई यों व समस्याओं की जानकारी हो जाती है तो वह यह निश्चित कर लेता है कि उसे किस कार्य को करना चाहिए किसको नहीं करना चाहिए। यहाँ चिकित्सक को बड़ी बुद्धिमानी से कार्य करना चाहिए तथा रोगी को उपयुक्त सुझाव व निर्देश देना चाहिए। रोगी धीरे-धीरे अपनी कठिनाई यों को समझता है तथा स्वयं ही समायोजन का सुनियोजित तरीका खोजता है तथा उसमें उपयुक्तता की भावना जन्म लेती है।

- सम्पर्कों का समापन-

जब रोगी में अपने लक्षणों के प्रति आवश्यक अंतर्दृष्टि विकसित हो जाती है और फिर इस सम्बन्ध में उसके आवश्यक निर्णय व कार्य दषा के प्रति भी उपबोधक के समर्थन व अनुमोदन का

जब उसे हार्दिक तथा सुनिश्चित आश्वासन मिल जाता है, तब आगे फिर स्पष्टतः इस अध्ययन के सौम्यपूर्ण समापन की स्थिति आ जाती है। जो कि एक प्रकार से औपचारिक न हो कर भविष्य में फिर मिलने की भावपूर्ण प्रत्याशा व स्वभाविक इच्छा के साथ समाप्त होती है। इस प्रक्रिया में पहल रोगी या सेवार्थी द्वारा ही होती है। तथा इसके तुरन्त पश्चात रोगी अपने व्यवहार में आवश्यक परिवर्तन लाकर जीवन में अपने आत्मसिद्धि के मार्ग की ओर निश्चित होकर अग्रसर होने लगता है।

14.11 सारांश

मनोचिकित्सा का उद्देश्य पर्याप्त व्यक्तित्व समायोजन प्राप्त करने में रोगी की सहायता करना है। प्रत्येक मनोचिकित्सा का उद्देश्य परिपक्वता, क्षमता तथा आत्मवास्तवीकरण की दिशा में व्यक्तित्व का विकास करना है। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण चिकित्सा के प्रमुख चरण है- स्वतन्त्र साहचर्य की अवस्था, प्रतिरोध की अवस्था, संक्रमण की अवस्था, स्वप्न विश्लेषण की अवस्था। व्यवहार मनोचिकित्सा के प्रमुख प्रकार हैं- सरल क्लासिकी अनुकूलन, उददीपन प्रसूत अनुकूलन, क्रिया प्रसूत अनुकूलन तथा पारस्परिक अनुबन्धन। रोगी केन्द्रित चिकित्सा के प्रमुख चरण है- रोगी का सहायतार्थ आगमन, भावना की अभिवयक्ति, रोगी में अंतर्दृष्टि का विकास, तथा सम्पर्को का समापन।

14.12 शब्दावली

- **प्रतिरोध:** मनोचिकित्सा के दौरान जब रोगी अचानक चुप हो जाता है या वह अपने मन के विचारो को व्यक्त नहीं करना चाहता है तब ऐसी अवस्था को प्रतिरोध कहा जाता है।
- **स्थानान्तरण:** रोगी अक्सर अपनी गत जिन्दगी में जैसी मनोवृत्ति शिक्षक माता या पिता या किसी अन्य के बारे में बना रखा है वैसी ही मनोवृत्ति वह चिकित्सक के प्रति विकसित कर लेता है। इसे ही स्थानान्तरण की संज्ञा दी जाती है।
- **धनात्मक स्थानान्तरण:** इससे रोगी विश्लेषक या चिकित्सक के प्रति अपने स्नेह एवं प्रेम की प्रति क्रियाओं को दिखलाता है।
- **ऋणात्मक स्थानान्तरण:** इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपनी घृणा एवं संवेदनात्मक अलगाव की प्रति क्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है।
- **प्रतिस्थानान्तरण:** इसमें मनोचिकित्सक ही स्वयं रोगी के प्रति स्नेह, प्रेम एवं संवेगात्मक अलगाव की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है।
- **सूझ या** अंतर्दृष्टि**:** जब रोगी के आत्म प्रत्यक्षण एवं सामाजिक प्रत्यक्षण में परिवर्तन आता है और रोगी की मनोवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों में धनात्मक परिवर्तन आता है तथा वह अपने व्यक्तिगत प्रेरणओं को सही सन्दर्भ में समझने लगता है तब रोगी में सूझ या अंतर्दृष्टि का विकास हो जाता है।

- **कुसमायोजित व्यक्ति:** कुसमायोजित व्यक्ति वैसे व्यक्ति को कहा जाता है जो जिन्दगी की समस्याओं से निबटने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य किसी कारणवश नहीं विकसित कर पाये या सीख पाये।
- **क्रमबद्ध असंवेदीकरण:** मूलतः चिन्ता कम करने की एक प्रविधि है जो इस नियम पर आधारित है कि एक ही समय में व्यक्ति चिन्ता और विश्राम दोनों ही अवस्था में होता है तो उसमें चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक को बढ़ते क्रम में दिया जाता है अन्ततः रोगी चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों के प्रति असंवेदित हो जाता है।

14.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) किस्कर के अनुसार मनोचिकित्सा के कौन-कौन से प्रकार हैं।
2) मनोचिकित्सा की प्राचीन प्रविधियाँ कौन-कौन सी हैं।
3) व्यावहार मनोचिकित्सा की प्रमुख विधियाँ कौन कौन सी हैं।
4) रोगी मनोचिकित्सा के प्रमुख चरण कौन-कौन से हैं।

उत्तर: 1) किस्कर के अनुसार मनोचिकित्सा के निम्न प्रकार है-

- सहायक मनोचिकित्सा
- पुनर्षिक्षात्मक मनोचिकित्सा
- पुनर्रचनात्मक मनोचिकित्सा

2) मनोचिकित्सा की प्राचीन प्रविधियाँ निम्न है-
   - सम्मोहन
   - संसूचन
   - प्रत्यायन
3) व्यवहार चिकित्सा की प्रमुख विधियाँ निम्न है-
   - सरल क्लासिकी अनुकूलन
   - क्रिया प्रसूत अनुकूलन
   - अपवर्ती अनुकूलन
   - पारस्परिक अन्तर्बाधा
4) रोगी क्रेन्द्रित चिकित्सा के प्रमुख चरण निम्नवत् है-
   - रोगी का सहायतार्थ आगमन
   - भावना की अभिव्यक्ति
   - रोगी में अन्तर्द्वश्टि का विकास
   - धनात्मक चरण
   - सम्पकों का समापन

14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology and Modern life (Taraporevala)
- Davison, GC & Neal J.M. (1986) Abnormal Psychology: An experimental clinical Approach, John Wiley & Sons, Newyork.
- Miller, M.C. : Psychoanalysis and Its Derivatives.
- Mac Donal, Ladell: Tessus, P.20
- Page- Abnormal Psychology, P.46.
- Symonds- The dynamics of Human Adjustment
- अरूण कुमार सिंह (2001, 2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- एच0के0 कपिल (2001), अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः भार्गव बुक हाउस कचहरी घाट आगरा।
- डॉ0 लाभ सिंह, डॉ0 गोविन्द तिवारी- असामान्य मनोविज्ञान (2001) असामान्य मनोविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- मखीजा एवं मखीजा (1980, 2009) अपसामान्य मनोविज्ञान, आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल हास्पीटल रोड, आगरा।

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

1. मनोविश्लेषण चिकित्सा क्या है? इसके प्रमुख चरणों का विस्तार से वर्णन किजिए
2. व्यवहार चिकित्सा से क्या तात्पर्य है इसकी प्रमुख विधियों का वर्णन किजिए
3. अनिदेशित मनोचिकित्सा या रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा से क्या अभिप्राय है ? इसके प्रमुख चरणों का वर्णन किजिए।

- **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. सम्मोहन से क्या तात्पर्य है
2. मुक्त साहचर्य विधि से क्या समझते है।
3. अन्तर्दृष्टि में विकास से क्या आशय है।
4. अनिदेशित मनोचिकित्सा का उद्देश्य क्या है।
5. व्यवहार चिकित्सा का क्या लक्ष्य है।

इकाई-15 मनोचिकित्सा-सामूहिक चिकित्सा एवं व्यवहार चिकित्सा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मनोचिकित्सा का अर्थ
15.4 सामूहिक चिकित्सा
15.5 व्यवहार चिकित्सा
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों को दूर करने हेतु जिस प्रविधि को उपयोग में लाया जाता है उसे मनोचिकित्सा कहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य रोगी में आत्म-विश्वास एवं दूसरों के प्रति आस्था के भाव का विकास है।

पिछली इकाइयों में आपने विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों-मनो स्नायुविकृतियों एवं मनोविकृतियों के लक्षण, कारण आदि की जानकारी प्राप्त की तथा इन रोगों के बीच की भिन्नता को जानने का प्रयास किया।

प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य इन बीमारियों के निदान हेतु प्रचलित तकनीकों की जानकारी प्राप्त कराना है जिसमें समूह चिकित्सा एवं व्यवहार चिकित्सा के स्वरूप एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

- मनोचिकित्सा का अर्थ समझ सकें।
- सामूहिक चिकित्सा के स्वरूप पर प्रकाश डाल सकें।
- व्यवहार चिकित्सा के विभिन्न रूपों को रेखांकित कर सकें।
- सामूहिक चिकित्सा एवं व्यवहार चिकित्सा के सापेक्षिक प्रभावकता को बता सकें।

15.3 मनोचिकित्सा का अर्थ

मनोचिकित्सा उन मनोवैज्ञानिक प्रविधियों को कहते हैं जिनके द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी उलझनों अथवा गुत्थियों को सुलझाया जाता है। इसकी प्रक्रिया का प्रारंभ चिकित्सा और रोगी के बीच पारस्परिक वार्तालाप द्वारा होता है। इस वार्तालाप से चिकित्सक और रोगी के बीच एक प्रकार का सम्बन्ध विकसित होता है जिसके फलस्वरूप रोगी चिकित्सक की सलाह, उसके द्वारा दिये गए संकेतों एवं उसकी बातों को मानने लगता है। रोगी में आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। इस आत्म-विश्वास और आस्था का उपचार के दृष्टिकोण से विशेष महत्व होता है। इसके कारण रोगी को अपना व्यक्तित्व सबल बनाने, अपनी समस्याओं को सुलझाने और वातावरण के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने में पर्याप्त मद्द मिलती है।

मानसिक रोग के मूलतः दो प्रकार हैं- मनःस्नायुविकृति एवं मनोविकृति। मनोस्नायुविकृति से पीड़ित रोगियों के उपचार हेतु वस्तुतः मनःचिकित्सा ही एकमात्र उपयुक्त चिकित्सा की विधि है जबकि मनोविकृति से पीड़ित रोगियों के उपचार के लिए मनोचिकित्सा के अतिरिक्त अन्य विधियों, जैसे- औषधि चिकित्सा, इन्सुलिन चिकित्सा, विद्युतीय आघात चिकित्सा आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि-

1. मनोचिकित्सा द्वारा मानसिक रोगियों का उपचार किया जाता है।
2. मनोचिकित्सा की प्रविधियाँ मनोवैज्ञानिक स्वरूप की होती हैं।
3. मनोचिकित्सा की प्रविधियों द्वारा व्यक्तित्व एवं संवेग सम्बन्धी उपद्रवों को कम या दूर करने का प्रयास किया जाता है।

15.4 सामूहिक चिकित्सा

सामूहिक चिकित्सा स्वयं में कोई स्वतंत्र चिकित्सा पद्धति नहीं है बल्कि विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों, जैसे- मनोविश्लेषण, सम्मोहन, व्यवहार परिमार्जन आदि का सामूहिक परिस्थिति में उपयोग है। इसकी शुरूआत द्वितीय विश्व युद्ध के समय सेना में मानसिक रोगियों के इलाज हेतु हुई।

सामूहिक चिकित्सा से तात्पर्य मनःचिकित्सा की किसी विधि का एक साथ एक से अधिक मानसिक रोगियों पर प्रयोग है।

सामूहिक उपचार की पद्धति का उपयोग प्राचीन समय में भी किया जाता था। प्राचीन समय में दो, चार या पाँच रोगियों को मिलाकर एक छोटा समूह बना लिया जाता था और रोगियों की उम्र, आवश्यकता, क्षमता एवं चिकित्सक की सूझ-बूझ के अनुसार विभिन्न प्रकार की चिकित्सा प्रविधियों का उपयोग किया जाता था। इस परम्परागत सामूहिक चिकित्सा-विधि के विभिन्न रूप आज भी उपयोग में लाये जाते हैं।

1) **डिडैक्टिक सामूहिक चिकित्सा-** इस प्रविधि का उपयोग मद्यपान की आदत से ग्रस्त रोगियों पर किया जाता है। रोगियों को सामूहिक रूप से इसके बुरे प्रभावों से सम्बन्धित तथ्यों को व्याख्यान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके लिए फिल्म, विडियो टेप या इसी प्रकार के अन्य तरीके भी उपयोग में लाये जाते हैं।
2) **मनःअभिनय-** मनः अभिनय भी सामूहिक चिकित्सा-विधि का ही एक रूप है। चिकित्सा की यह विधि अभिनय करने की प्रविधि पर आधारित है। इसमें रोगी को किसी रंगमंच जैसी परिस्थिति में अपनी समस्याओं, संवेगों एवं अन्य मानसिक विकारों को एक-दूसरे के सामने प्रकट करने का अवसर मिलता है। चूँकि, रोगी इन समस्याओं को दूसरों के सामने रंगमंच-जैसी स्थिति में प्रकट करता है, इसलिए रोगी का व्यवहार वास्तविक जीवन की भाँति होता है। रोगी अपने समूह के सभी लोगों को प्रायः एक जैसी समस्याओं से घिरा हुआ अनुभव करता है। इससे उसे यह विश्वास होता है कि उसकी समस्याएँ केवल उसकी नहीं हैं अपितु दूसरे लोगों की समस्याएँ उसके समान ही है। इससे रोगी में आत्मविश्वास और संतोष की भावना का विकास होता है जिसके परिणामस्वरूप रोग के लक्षण दूर हो जाते हैं और वे सामान्य जीवन व्यतीत करने योग्य बन जाते हैं। खासकर अन्तः पारस्परिक सम्बन्धों के सुधार में सामूहिक चिकित्सा का अच्छा प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है।

मनः अभिनय की प्रविधि में रोगी को कभी मात्र दर्शक के रूप में तो कभी रंगमंच पर अभिनय करने वाले पात्र के रूप में कार्य करना पड़ता है। इन दोनों प्रकार की स्थितियों में चिकित्सा की यह विधि लाभप्रद होती है। इस विधि का मूल उद्देश्य रोगी में सूझ-बूझ को बढ़ाना, अन्तःपारस्परिक सम्बन्धों को सुधारना एवं संवेगात्मक चिन्ता के स्तर में कमी लाना अथवा दूर करना होता है।

3) **सामूहिक मुठभेड़-चिकित्सा-** यह एक प्रकार की सामूहिक मुठभेड़ की स्थिति होती है जिसमें समूह के प्रत्येक सदस्य को एक विशेष वातावरण में रखा जाता है, जहाँ वे बिना किसी नियन्त्रण के आपस में खुलकर अपनी समस्याओं पर बातचीत कर सकें। इस परिस्थिति में रोगी यह अनुभव करता है कि किस प्रकार वह समूह के दूसरे सदस्यों को प्रभावित करता है तथा स्वयं भी

दूसरों से प्रभावित होता है। इन परिस्थितियों में चिकित्सक प्रायः रोगियों से ओझल रहने की कोशिश करता है, लेकिन वह उनकी गतिविधियों पर नजर रखता है और आवश्यकता पड़ने पर रोगियों को अपनी समस्याओं को व्यक्त करने में प्रोत्साहित करता है। चिकित्सा की इस प्रविधि के विकास का इतिहास विगत 50 वर्षो का है। इस मुठभेड़ समूह की स्थिति में रोगी समूह के दूसरे रोगियों से यथार्थ रूप में मिलता है जहाँ विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ होती हैं, जैसे- शारीरिक व्यायाम, खेल, मालिश, प्रभुत्व स्थापन, चेतना के विकास का प्रशिक्षण, जीवन नियोजन इत्यादि। इन क्रियाओं के फलस्वरूप रोगी के व्यक्तिगत विकास और उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है और आत्मबोध, समन्वय, मौलिकता, इत्यादि का विकास उच्च अंशों में होता है।

सामूहिक चिकित्सा-प्रणाली के सदस्यों की संख्या प्रायः 6 से 12 के बीच होती है तथा इस समूह की गतिविधियों का संचालन एक या दो नेता के नेतृत्व में होता है। चिकित्सा की इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य सामूहिक रूप से परस्पर विचारों का आदान-प्रदान की प्रक्रिया प्रोत्साहित करना होता है जिससे सामाजिक वास्तविकता की सूझ का विकास हो सके। इसके लिए ट्रेनिंग ग्रूप टेक्निक अथवा 'टी ग्रूप' का उपयोग किया जाता है। इस टेकनिक या प्रविधि का उद्देश्य समूह के सदस्यों में ऐसा अनुभव कराना होता है कि उनके व्यवहार का दूसरों पर और दूसरों के व्यवहार का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस तरह, एक-दूसरे की भावनाओं को समझने की योग्यता का विकास होता है जिससे रोगी अपने व्यवहार को इस प्रकार मोड़ना सीख लेते हैं कि समूह के दूसरे सदस्यों के साथ सुखद एवं मानवीय संबंध स्थापित कर सकें और इस प्रकार सामंजस्य की योग्यता का विकास हो सके।

सामूहिक चिकित्सा में कुछ अन्य प्रविधियाँ भी उपयोग में लायी जाती हैं, जैसे- पुनर्शिक्षण प्रविधि, भूमिका अभिनय प्रविधि, समूह-विश्लेषण प्रविधि, इत्यादि।

अन्य चिकित्सा विधियों की तरह समूह चिकित्सा विधि के भी अपने गुण-दोष हैं जिन पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

4) **सामूहिक चिकित्सा के गुण-**

i. इस विधि में समूह के सदस्यों द्वारा सामाजिक वास्तविकता का स्वरूप स्पष्ट होता है, फलस्वरूप रोगी को वास्तविकता का सहज बोध होता है।
ii. सामूहिक वातावरण रोगियों के अन्तःपारस्परिक संबंधों के विकास में विशेष रूप से लाभप्रद होता है।
iii. समूह के सदस्य अपनी सदस्यता बरकरार रखने हेतु सहज रूप से वांछित प्रतिक्रियाओं का स्वरूप बनाये रखते हैं। फलतः, वांछित प्रतिक्रियाएँ बार-बार दुहराई जाती है जो धीरे-धीरे पूर्ण रूप से स्थापित की जाती है और अवांछनीय व्यवहार लुप्त हो जाते हैं।

5) **सामूहिक चिकित्सा के दोष-**

i. इस विधि की सबसे पहली त्रुटि यह है कि चूँकि इस विधि में एक ही साथ कई रोगियों की चिकित्सा की जाती है, अतः उचित चिकित्सा मुश्किल होती है। एक ही साथ चिकित्सक को कई रोगियों पर ध्यान देना पड़ता है जो व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता है।
ii. इस विधि की दूसरी त्रुटि यह है कि इसका सफलतापूर्वक सभी रोगियों पर उपयोग नहीं किया जा सकता। इसकी सफलता रोगी के स्वभाव और रोगी की गंभीरता पर निर्भर करता है। कुछ रोगी ऐसे होते हैं जो समूह को भंग कर दे सकते हैं अथवा इसके संचालन की प्रक्रिया अवरूद्ध कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, उपद्रवकारी रोगी, दुखदायी और भ्रमणकारी रोगी की चिकित्सा में इस विधि का सफल प्रयोग संभव नहीं होता।

15.5 व्यवहार चिकित्सा

व्यवहार चिकित्सा भी अपने-आप में कोई अकेली विधि नहीं है। वस्तुतः चिकित्सा की यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें सीखने की क्रिया से संबंधित प्रयोगों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और नियमों पर आधारित कई प्रविधियाँ सम्मिलित हैं। ये प्रविधियाँ व्यवहारवाद की उपज हैं। चिकित्सा की इस पद्धति का उपयोग 1960 के आस-पास प्रारम्भ हुआ तथा आजकल अनेक प्रकार के कुसमायोजित व्यवहारों के संशोधन या परिमार्जन के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा है। इसीलिए इसे व्यवहार परिमार्जन चिकित्सा पद्धति भी कहते हैं। इस विधि के विकास का मुख्य श्रेय रूसी शरीरशास्त्री पैवलोव को जाता है जिन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा सम्बन्ध प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त-प्रतिपादित किया है। व्यवहार परिमार्जन हेतु आज जिन प्रविधियों का उपयोग किया जाता है, वे सब सम्बन्ध प्रत्यावर्तन के नियमों पर आधारित हैं। चिकित्सा की इस पद्धति का मूल उद्देश्य रोगी को कुसमायोजित व्यवहार की जगह समायोजन योग्य व्यवहार सिखलाना होता है। इस विधि की मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं-

i. मानसिक रोग अथवा व्यक्तित्व की असामान्यता (शारीरिक विकृतियों के कारण उत्पन्न मानसिक रोगों को छोड़कर) सही अर्थ में कोई रोग नहीं है, बल्कि दोषपूर्ण शिक्षण-प्रक्रिया का द्योतक है जो किन्हीं कारणों से प्रबलित होती रही हैं, तथा-
ii. व्यक्ति जीवन की समस्याओं के साथ उपर्युक्त समायोजन योग्य व्यवहार अथवा योग्यता अर्जित करने में जब विफल रहता है तो कुसमायोजित व्यवहार अर्जित कर लेता है।

अतः, व्यवहार परिमार्जन द्वारा कुसमायोजित व्यवहार को परिवर्तित कर समायोजन योग्य व्यवहार अर्जित करने का अवसर प्रदान किया जाता है जिसमें रोगी विकृत व्यवहारों को त्याग कर नये एवं उपयुक्त व्यवहार करना सीख लेता है।

आजकल व्यवहार परिमार्जन हेतु कई प्रकार की प्रविधियाँ उपयोग में लायी जाती हैं जिनमें निम्नलिखित प्रधान है-

1. सरल विलोपन
2. क्रमबद्ध असंवेदीकरण
3. अन्तःविस्फोटक चिकित्सा
4. दृढ़ग्राही चिकित्सा
5. विरूचि-चिकित्सा

1) **सरल विलोपन-** ऐसा हम प्रायः अनुभव करते हैं कि जब किसी व्यवहार को प्रबलन नहीं मिलता (अर्थात किसी तरह प्रोत्साहित नहीं होता है) तब वह व्यवहार कुछ समय बाद लुप्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रबलन या प्रोत्साहन के अभाव में प्राणी का व्यवहार चिरस्थायी नहीं हो पाता। अतः किसी कुसमायोजित व्यवहार को दूर करने हेतु उसे प्रबलित करने वाले तत्व का हटा देने या बन्द कर देने पर रोगी के असामान्य व्यवहार का विलोप हो जाता है। यह प्रविधि उन परिस्थितियों में विशेष रूप से लाभप्रद होती है जिनमें असामान्य व्यवहार दूसरों द्वारा अनजाने में प्रबलित होते रहते हैं। जैसे, यदि किसी नटखट बालक के व्यवहारों के प्रति माता-पिता प्रायः लापरवाह रहते हों तो उनके माता-पिता की यह लापरवाही बालक के नटखट व्यवहारों को अनजाने में प्रबलित करती है। अब बच्चे के व्यवहार में सुधार लाने हेतु माता-पिता का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक हो जायेगा। इसीलिए बच्चों में अच्छी आदतों का निर्माण करने, उनमें क्रोध, भय, प्रेम और ईर्ष्या के संवेगात्मक भावों को नियंत्रित करने, बुरी आदतों का त्याग करने इत्यादि के लिए माता-पिता का बच्चों के प्रति सहज या सचेत रहना जरूरी होता है। अतः, लापरवाह माता-पिता के सहज हो जाने पर बच्चों के नटखट व्यवहारों को जिन तत्वों से प्रबलन मिलता है, वे बन्द हो जाते हैं तथा साथ ही बच्चों के अच्छे आचरण का प्रबल होने लगता है। इस प्रकार, धीरे-धीरे नटखट बच्चे अच्छे बच्चों के गुणों को सीख लेते हैं।

व्यवहार परिमार्जन की यह सबसे सरल प्रविधि है। लेकिन, इस प्रविधि द्वारा कुसमायोजित व्यवहारों को समाप्त करना कठिन होता है, क्योंकि ये व्यवहार एक लम्बे अरसे से प्रबलित होते रहते हैं, इसलिए अभ्यस्त व्यवहार हो जाते हैं। इसीलिए वुल्पे (1969) ने इन व्यवहारों को समाप्त करने हेतु प्रबलित करने वाले तत्वों के अचानक या एक-एक करके पूर्ण रूप से हटा देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। रोगियों की विकृत आदतों या आचरणों को विलुप्त करने या दूर करने के साथ-ही-साथ उपयुक्त समायोजन योग्य व्यवहारों को प्रोत्साहित भी किया जाता है जो धनात्मक प्रबलन के

रूप में कार्य करते हैं। आयलन एवं माइकेल (1959) ने एक रोगी का उदाहरण देते हुए बतलाया है कि मनोविकृति से पीड़ित रोगियों के वार्ड में कार्यरत नर्सों को यह निर्देश दिया गया कि वे रोगियों के व्यामोहयुक्त कथनों पर ध्यान न दें और उनके सामान्य कथनों को प्रोत्साहित करें, अर्थात् रोगी जब किसी प्रकार के व्यामोह की चर्चा करे तो नर्स उसकी बातों को अनसुनी कर दे लेकिन जब कोई सामान्य बातचीत करे तो रोगी को ऐसे कथनों के लिए प्रोत्साहित किया जाए। नर्सों द्वारा इस निर्देश का पालन करने के फलस्वरूप देखा गया कि उस वार्ड के प्रायः सभी रोगियों के व्यामोहात्मक व्यवहारों में महत्वपूर्ण कमी आयी तथा उन रोगियों में सामान्य एवं समायोजन योग्य व्यवहारों का विकास होने लगा।

2) **क्रमबद्ध असंवेदीकरण-** इस प्रविधि में रोगी को एक व्यवस्थित क्रम में उसकी चिन्ता से संबंधित परिस्थितियों की उपस्थिति में शान्त या शिथिल रहने का प्रशिक्षण दिया जाता है, अर्थात् चिन्तोत्पादक परिस्थिति के प्रति रोगी को धीरे-धीरे चिन्तामुक्त रहने अथवा चिन्ता-स्तर को कम करने की आदत का निर्माण कराया जाता है। इस आदत का निर्माण क्रमिक ढंग से कराया जाता है। इस क्रमिक ढंग से चिन्ता-स्तर को कम करने की आदत डालने के फलस्वरूप रोगी कुछ समय बाद पूर्णतः चिन्तामुक्त हो जाता है।

इस विधि का आधार सम्बन्ध प्रत्यार्वतन का सिद्धान्त है। इस प्रविधि की मान्यता यह है कि व्यक्ति में कुसमायोजित व्यवहार किसी उत्तेजना के साथ सम्बन्धित या अनुबन्धित हो जाने के फलस्वरूप विकसित होता है। अतः इन अनुबन्धित प्रतिक्रियाओं को असम्बद्ध करके समायोजित व्यवहार को विकसित किया जा सकता है। इस प्रविधि का उपयोग सबसे पहले वाटसन और रेयनर ने अलबर्ट नाम के बालक का भय दूर करने में किया था। जोन्स ने भी पीटर नाम के एक बालक पर इस प्रविधि का उपयोग किया था जो फोबिया से पीड़ित था। बाद में बुल्पे ने इस प्रविधि का उपयोग कई रोगियों पर किया। बुल्पे ने इस विधि का उपयोग निम्नलिखित ढंग से किया है -’

i. <u>रोगी को शान्त रहने का प्रशिक्षण देना -</u>

वुल्पे के अनुसार रोगी की चिकित्सा के क्रम में सबसे पहले चिन्तोत्पादक परिस्थिति की उपस्थिति में शान्त रहने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इस प्रशिक्षण में लगभग 6 से 7 सत्र लगते हैं। रोगी को विश्रामपूर्वक रहने का निर्देश दिया जाता है। उसे अपनी माँसपेशियों को धीरे-धीरे संकुचित करने तथा उसे ढीला करने की आदत हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है तथा यह प्रशिक्षण तब तक जारी रखा जाता है जब तक रोगी पूर्ण रूप से विश्राम की अवस्था प्राप्त करने में सफल नहीं हो जाता। कभी-कभी रोगी को विश्रामावस्था में लाने हेतु समाधि, सम्मोहन, विश्रान्ति औषधियाँ इत्यादि उप-प्रविधियाँ भी काम में लायी जाती हैं।

ii. <u>श्रृखंला-निर्माण -</u>

चिकित्सा के प्रारम्भिक सत्रों में ही रोगी की चिन्तोत्पादक उत्तेजनाओं की श्रृंखलाबद्ध सारिणी तैयार कर ली जाती है, अर्थात् किस प्रकार की उत्तेजना रोगी की चिन्ता उत्पन्न करने में कितने महत्व या मूल्य की है, उसके अनुसार एक सूची तैयार कर ली जाती है जिसमें विभिन्न चिन्तोत्पादक उत्तेजनाओं को क्रमशः ह्रास के क्रम में सूचीबद्ध किया जाता है अर्थात् सबसे अधिक मूल्य वाली उत्तेजनाओं को सबसे पहले और उसके बाद क्रमशः कम मूल्य वाली उत्तेजनाओं को रखा जाता है। जैसे, यदि कोई महिला रोगी अपने पति के प्रति ईर्ष्या का भाव से ग्रस्त हो तो उससे सामान्य वार्तालाप द्वारा उन सभी परिस्थितियों के बारे में जानकारी प्राप्त की जायेगी जिनमें रोगी को ईर्ष्या या चिन्ता होती है। इस वार्तालाप के क्रम में ही इस बात की जानकारी भी हासिल की जायेगी कि किन परिस्थितियों में रोगी कितना अधिक या कम चिन्तित होता है। संभव है, उसकी चिन्ता उस समय सबसे अधिक होती हो जब वह अपने पति को किसी 'बार' या क्लब में किसी सुन्दर युवती के साथ हसं कर बातें करते हुए देखती हो। इससे कम चिन्ता उस समय होती हो जब वह अपने पति को कार्यालय की किसी सहयोगी महिला या सेकेट्री की प्रशंसा करता हुआ देखती है और सबसे कम चिन्ता उस समय होती है जब वह अपने पति को किसी युवती पर टकटकी लगाये हुए देखती है। अब इन तीनों प्रकार की परिस्थितियों को उनके महत्व या अधिमान्य मूल्य के अनुसार क्रमशः सूचीबद्ध कर लेने के बाद ही अंसवेदीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की जायेगी।

iii. असंवेदीकरण के विधान -

जब रोगी विश्रामावस्था की आदत अच्छी तरह विकसित कर लेता है और चिकित्सक रोगी की चिन्ताओं से सम्बन्धित परिस्थितियों या उत्तेजनाओं की सूची बना लेता है तब असंवेदीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है। इसमें रोगी को पूर्ण रूप से विश्रामावस्था में रहने का निर्देश दिया जाता है। रोगी जब आंखे बंद करके निश्चिंत हो जाता है तब उसके सामने चिकित्सक कुछ परिस्थितियों का वर्णन करता है अथवा रोगी को विशेष प्रकार की परिस्थति की कल्पना करने को कहा जाता है तथा उसे यह भी निर्देश दिया जाता है कि इन परिस्थितियों की कल्पना करते समय भी वह पूर्ण विश्राम की स्थिति में रहे। सबसे पहले एक तटस्थ परिस्थिति का वर्णन किया जाता है। रोगी यदि इन तटस्थ उत्तेजनाओं के उपस्थित होने पर भी शान्त रहता है तो उसके समक्ष उस परिस्थिति का काल्पनिक वर्णन किया जाता है जिसमें रोगी कम से कम चिन्तित होता है। इसके बाद, उससे अधिक चिन्तोत्पादक परिस्थिति का वर्णन किया जाता है और इसी तरह क्रमशः बढ़ते हुए मूल्य की उत्तेजक परिस्थितियों की कल्पना करने को कहा जाता है। ऐसा करने के क्रम में जिस उत्तेजना के उपस्थित होने पर रोगी की विश्रामावस्था भंग होती है, वहीं पर सत्र समाप्त कर दिया जाता है। इसी प्रकार लगातार कई सत्रों तक रोगी की चिन्तोत्पादक परिस्थितियों की कल्पना करने और उनकी उपस्थिति में शांत रहने की आदत डाली जाती है। चिकित्सा-सत्र तब तक जारी रखा जाता है जब तक रोगी पूर्णतः सभी चिन्तोत्पादक परिस्थितियों में चिन्ता या तनाव का अनुभव नहीं करने में सफल नहीं हो जाता। इस प्रकार चिन्ता, भय या अन्य संवेगात्मक तनाव उत्पन्न करने वाली प्रत्येक परिस्थिति में

रोगी के असंवेदी होने की अवस्था तक चिकित्सा-सत्र जारी रखा जाता है। साधारणतः इन सत्रों की अवधि 15 से 30 मिनट की होती है तथा सप्ताह में 2 से 3 बार इन सत्रों की पुनरावृत्ति की जाती है। चिकित्सा की पूरी अवधि कितनी लम्बी होगी यह रोगी तथा उसके मर्ज की गंभीरता पर निर्भर करेगी।

3) **अन्तःविस्फोटक चिकित्सा-** इसे बाहुल्य चिकित्सा भी कहते हैं। यह भी एक प्रकार की संवेदीकरण प्रविधि है। चिकित्सा की इस प्रविधि में रोगी के समक्ष वह परिस्थिति प्रस्तुत की जाती है जिसमें रोगी सबसे अधिक चिन्ता या भय का अनुभव करता है। इस प्रविधि में क्रमशः न्यूनतम मूल्य से बढ़ते हुए क्रम में अधिक मूल्य वाली चिन्तोत्पादक उत्तेजना प्रस्तुत नहीं की जाती। रोगी को सर्वाधिक चिन्तोत्पादक परिस्थिति में तब तक रखा जाता है जब तक उसकी चिन्ता या भय स्वतः कम या समाप्त नहीं हो जाती। इस प्रविधि का मुख्य उद्देश्य रोगी को यह अनुभव कराना होता है कि सर्वाधिक चिन्तोपात्दक परिस्थिति भी अधिक समय तक नहीं रहती तथा ये परिस्थितियाँ सहने योग्य होती है। इस प्रकार, रोगी जब बार-बार सर्वाधिक चिन्तोत्पादक परिस्थिति की कल्पना करता है और उन परिस्थितियों में सहनशक्ति का विकास करता है तो धीरे-धीरे वह उन परिस्थितियों की उपस्थिति में भी चिन्तामुक्त या भयमुक्त रहने की आदत का निर्माण कर लेता है।

4) **दृढ़ग्राही प्रशिक्षण-** व्यवहार-परिमार्जन की इस प्रविधि का उपयोग ऐसे रोगियों के साथ किया जाता है जिनका पारस्परिक सम्बन्ध चिन्ता या संवेगात्मक अस्थिरता के कारण बिगड़ जाता है अथवा समायोजन योग्य सम्बन्धों की स्थापना में अवरोध उत्पन्न होता है। चिकित्सक रोगी से बातचीत करके उसे यह विश्वास दिलाता है कि उसका व्यवहार किन कारणों से असंगत एवं कुसमायोजित हो गया है। साथ-ही-साथ रोगी में प्रभुत्व की भावना का विकास कराया जाता है ताकि रोगी में आत्मविश्वास एवं आत्महत्ता के भाव उत्पन्न हो सकें और रोगी दृढ़ग्राही बन सके। वुल्पे और लजारस के अनुसार रोगी और चिकित्सक के बीच वार्तालाप के फलस्वरूप उसकी चिन्ता के स्तर में कमी आती है और रोगी में दृढ़ग्राही प्रतिक्रियाएँ पनपने लगती हैं। रोगी की इन दृढ़ग्राही प्रतिक्रियाओं के सबल रूप से विकसित होने के लिए चिकित्सक इन प्रतिक्रियाओं को प्रोत्साहित या प्रबलित भी करता है जिसमें रोगी इनका प्रकाशन वास्तविक जीवन में कर सके।

दृढ़ग्राही प्रतिक्रियाओं को विकसित करना आसान काम नहीं है लेकिन वुल्पे के अनुसार रोगी को प्रशिक्षण और पूर्वाभ्यास द्वारा दृढ़ग्राही बनाया जा सकता है। इसके लिए चिकित्सक को रोगी में चिन्ता उत्पन्न करने वाले व्यक्ति की भूमिका और रोगी की दृढ़ग्राही व्यक्ति की भूमिका अदा करनी पड़ सकती है। इस प्रकार भूमिका अदा करने की प्रविधि द्वारा चिन्ता से सम्बन्धित उत्तेजना का सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सकता है। दृढ़ग्राही प्रशिक्षण के लिए चिकित्सक विभिन्न परिस्थितियों में दृढ़ग्राही प्रतिक्रिया रोगी के सामने प्रदर्शित करते हुए कार्टून फिल्म तस्वीरें, वीडियो टेप इत्यादि का भी प्रयोग करता है। इन साधनों द्वारा रोगी के समक्ष दो प्रकार के व्यक्ति उपस्थित होते हैं जिनमें एक

रोगी की समस्याओं को प्रकट करता है और दूसरा उन परिस्थितियों में दृढ़ग्राही प्रतिक्रिएँ करता हुआ प्रतीत होता है। बाद में रोगी को भी उस तरह की परिस्थिति में प्रदर्शित प्रतिक्रियाएँ करने के लिए कहा जाता है।

5) **अरूचिकर अनुकूलन-** चिकित्सा की इस प्रविधि का सम्बन्ध प्राचीन समय के चिन्तन के साथ है। प्राचीन समय के लोग किसी व्यक्ति के अवांछनीय आचरण को दूर करने हेतु दण्ड देने की विधि का उपयोग करते थे। आज भी विकासशील बालकों के अनुशासनहीन व्यवहारों अथवा बुरी आदतों को सुधारने हेतु किसी न किसी प्रकार से दण्डित किया जाता है।

व्यवहार परिमार्जन चिकित्सा विधि के अन्तर्गत यह दण्ड कुसमायोजित व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाले तत्व को दूर करने अथवा अरूचि उत्पन्न करने वाली उत्तेजनाओं को उपस्थित करके दिया जाता है। इसके लिए अधिकतर विद्युत आघात अथवा विशेष प्रकार की दवा का उपयोग किया जाता है। इन उत्तेजनाओं को प्रस्तुत करने का मूल उद्देश्य रोगी के अवांछनीय या कुसमायोजित व्यवहार उत्पन्न करने वाली उत्तेजनाओं के मूल्य को घटाना होता है जिसमें रोगी उनके प्रति आकृष्ट न हो सके और इस तरह उन उत्तेजनाओं के प्रति अरूचि उत्पन्न हो जाये।

इस विधि का उपयोग सर्वप्रथम कांटोरोविक ने सन् 1930 ई. में मद्यपान की बुरी लत से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा हेतु किया था। रोगी के समक्ष शराब की बोतल प्रस्तुत करने पर जैसे ही रोगी उसे लेने के लिए आगे बढ़ता है अथवा लालच की दृष्टि से उसे देखता था, उसके शरीर में बिजली का करेंट लगाया जाता था। इसी तरह शराब की गंध अथवा उसके स्वाद की कल्पना करने पर भी बिजली से आघात पहुंचाया जाता था। बिजली द्वारा आघत पहुंचाये जाने के फलस्वरूप रोगी ने धीरे-धीरे शराब की उपस्थिति को बिजली आघात से सम्बन्धित कर लिया और उसमें आकर्षण की जगह विकर्षण की विरूचि के भाव विकसित होने लगे जिससे अन्ततः उसकी आदत छूट गई।

अरूचिकर अनुकूलता को कुछ मनोचिकित्सक यॉंत्रिक तिरस्कार चिकित्सा भी कहते हैं क्योंकि इस विधि में अवांछनीय व्यवहार को दूर करने हेतु किसी दूसरे प्रकार की सबल उत्तेजना का सहारा लिया जाता है जिसके फलस्वरूप रोगी में सम्बन्धित उत्तेजना के प्रति विरूचि पैदा होती है। लॉवास वोग्टलिन, जेम्स आदि चिकित्सकों ने भी मद्यपान, लैंगिक विकृतियाँ, बाध्यता, विभ्रम इत्यादि विकृति लक्षणों को दूर करने में इस विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। अरूचिकर उत्तेजना के रूप में कुछ लोगों ने कै कराने वाली दवा विद्युत आघात अथवा सामाजिक आलोचना आदि का सहारा लिया है।

उपर्युक्त प्रविधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार की प्रविधियाँ मानसिक रूप से असंतुलित रोगियों के व्यवहार को परिवर्तित करने हेतु उपयोग में लायी जाती हैं। इन सभी प्रविधियों के मूल उद्देश्य संगत एवं अभियोजन योग्य व्यवहारों के लिए घनात्मक रूप से सुनियोजित ढंग से प्रोत्साहित

करना या प्रबलित करना होता है। इनमें रोगी की प्रतिक्रियाओं को वांछित दिशा में निर्मित करना, प्रतिमान या प्रति के रूप में वांछित प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित करने एवं अनुकरण करने सांकेतिक मितव्ययिता की प्रविधि इत्यादि प्रविधियाँ प्रमुख हैं।

6) **व्यवहार चिकित्सा विधि का मूल्यांकन-** आधुनिक मनश्चिकित्सकों की दृष्टि में व्यवहार चिकित्सा मनोविश्लेषण, सम्मोहन अथवा अन्य चिकित्सा विधियों की तुलना में अधिक उपयोगी एवं कुशल विधि है। इस विधि की उपयोगिता के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं -

i. अन्य विधियों की तुलना में यह एक आसान उपागम है। चिकित्सक द्वारा रोगी के जिस व्यवहार में परिमार्जन लाना होता है, उसे पहले ही सुनिश्चित कर लिया जाता है तथा जिस प्रविधि का उपयोग करना होता है, इसे भी सुनिश्चित कर लिया जाता है। चिकित्सक को रोगों के विकासात्मक पहलू का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतएव, चिकित्सा की प्रक्रिया शीघ्र ही प्रारम्भ कर दी जाती है तथा बहुत कम समय में ही रोगी में समायोजन योग्य व्यवहार करने की आदत का निर्माण हो जाता है।

ii. इस विधि की दूसरी प्रधान विशेषता यह होती है कि इसमें अपेक्षाकृत समय एवं खर्च कम लगता है तथा अधिक सहयोगी कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, अर्थात कम समय, खर्च एवं कुछ ही कार्यकर्ताओं के सहयोग से इस विधि का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है तथा शीघ्र ही इसके अच्छे परिणाम दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

iii. इस विधि की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह विधि स्पष्ट रूप से शिक्षण-सिद्धान्तों पर आधारित है, अतएव चिकित्सक के व्यक्तित्व, योग्यता अथवा दक्षता की कोई खास आवश्यकता नहीं पड़ती, अर्थात अपेक्षाकृत कम दक्ष चिकित्सक भी साधारण प्रशिक्षण प्राप्त कर इस विधि का उपयोग कर सकते हैं।

लेकिन इस विधि की उपयोगिता सभी प्रकार के रोगियों के लिए नहीं है। कुछ विशेष प्रकार के गंभीर मानसिक रोगियों, जैसे मनोविदालिता अथवा अतितीव्र विषाद की अवस्था वाले रोगी आदि की चिकित्सा इस विधि द्वारा प्रायः सम्भव नहीं होती। इस प्रकार इस विधि की विभिन्न प्रविधियों का उपयोग भी अलग-अलग प्रकार के रोगों के अनुसार किया जाता है। अतएव, किस प्रकार के रोगी के लिए किस प्रकार की प्रविधि का उपयोग उचित होगा, इसका चुनाव समझ-बूझकर किया जाना उचित है, अन्यथा चिकित्सा विफल हो सकती है।

15.6 सारांश

जिन मनोवैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा व्यक्तित्व-सम्बन्धी उलझनों अथवा ग्रन्थियों को सुलझाया जाता है उसे मनोचिकित्सा कहते हैं।

सामूहिक चिकित्सा पद्धति वैसी चिकित्सा पद्धति है जिसमें मनोविश्लेषण, सम्मोहन, व्यवहार परिमार्जन आदि का सामूहिक परिस्थिति में उपयोग किया जाता है।

डिडैक्टिक सामूहिक चिकित्सा में रोगियों को अपनी विकृतियों (जैसे मद्यपान, नशाखोरी आदि) को दूर करने हेतु सामूहिक रूप से विकृतियों के बुरे प्रभाव से सम्बन्धित तथ्यों को व्याख्यान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

मनःअभिनय में रोगी को किसी रंग-मंच जैसी परिस्थिति में अपनी समस्याओं, संवेगों एवं अन्य मानसिक विकारों को एक-दूसरे के सामने प्रकट करने का अवसर मिलता है।

सामूहिक मुठभेड़ चिकित्सा में रोगियों के समूह को एक विशेष वातावरण में रखा जाता है जहां वे बिना किसी नियंत्रण के आपस में खुलकर अपनी समस्याओं पर बातचीत कर सकें।

व्यवहार चिकित्सा मनोचिकित्सा की एक ऐसी पद्धति है जिसमें सीखने की क्रिया से सम्बन्धित प्रयोगों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और नियमों पर आधारित प्रविधियाँ उपयोग में लायी जाती हैं। इसके अन्तर्गत सरल विलोपन, क्रमबद्ध असंवेदीकरण, अन्तःविस्फोटक चिकित्सा, दृढ़ग्राही प्रशिक्षण, अरूचिकर अनुकूलन आदि चिकित्सा पद्धति का उपयोग किया जाता है।

15.7 शब्दावली

- **मनःअभिनय:** समूह चिकित्सा की एक विधि जिसमें रोगी को किसी रंग-मंच जैसी परिस्थिति में अपनी समस्याओं, संवेगों एवं अन्य मानसिक विकारों को एक-दूसरे के सामने प्रकट करने का अवसर मिलता है।
- **क्रमबद्ध असंवेदीकरण:** व्यवहार चिकित्सा की एक ऐसी पद्धति जिसमें चिन्तोत्पादक परिस्थिति के प्रति रोगी को धीरे-धीरे चिन्तामुक्त रहने अथवा चिन्तास्तर को कम करने की आदत का निर्माण कराया जाता है।

15.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) इनमें से किसका उपयोग सामूहिक चिकित्सा प्रविधि के रूप में किया जाता है?

(अ) आत्म-संसूचन (ब) क्रमबद्ध असंवेदीकरण

(स) मनःअभिनय (द) दृढ़ग्राही प्रशिक्षण

2) इनमें से कौन सामूहिक चिकित्सा की विधि नहीं है?

(अ) डिडैक्टिक सामूहिक चिकित्सा (ब) सामूहिक मुठभेड़ चिकित्सा

(स) मनःअभिनय (द) दृढ़ग्राही प्रशिक्षण

3) निम्नलिखित में से कौन-सी चिकित्सा पद्धति मूलतः सीखने के अनुकूलन सिद्धान्त पर आधारित है?

(अ) व्यवहार चिकित्सा (ब) सामूहिक चिकित्सा

(स) मनोविश्लेषण (द) सम्मोहन

4) व्यवहार चिकित्सा की जिस विधि में चिन्तोत्पादक परिस्थिति के प्रति रोगी को धीरे-धीरे चिन्तामुक्त रहने अथवा चिन्तास्तर को कम करने की आदत का निर्माण कराया जाता है, उसे कहते हैं -

(अ) सरल विश्लेषण (ब) क्रमबद्ध असंवेदीकरण

(स) दृढ़ग्राही प्रशिक्षण (द) इनमें से कोई नहीं

उत्तर: 1) स 2) द 3) अ 4) ब

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. असामान्य मनोविज्ञान-नगीना प्रसाद एवं मुहम्मद सुलैमान
2. असामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन
3. मनोविकृति एवं उपचार- जी.डी. रस्तोगी

15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समूह चिकित्सा विधि से आप क्या समझते हैं? यह मनःअभिनय विधि से किस प्रकार सम्बन्धित है?
2. मनोचिकित्सा की विधि के रूप में व्यवहार-चिकित्सा पद्धति के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।
3. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखें -

(अ) मनःअभिनय (ब) क्रमबद्ध असंवेदीकरण

(स) दृढ़ग्राही प्रशिक्षण (द) अरूचिकर अनुकूलन

इकाई-16 मानसिक दुर्बलता तथा इसके कारण

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मानसिक दुर्बलता की परिभाषा
16.4 मानसिक दुर्बलता की विशेषता
16.5 मानसिक दुर्बलता के कारण
16.6 मानसिक दुर्बलता एवं घटनाक्रम
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

मानसिक दुर्बलता को मानसिक मंदन, अल्पबुद्धि, मानसिक अपूर्णता, मानसिक न्यूनतमता, मंदबुद्धिता, मस्तिष्क की कमजोरी तथा जड़ता आदि के नाम से पुकारा जा सकता है। जिन व्यक्तियों में बुद्धि का विकास नहीं हो पाता या अपनी आयु के अनुरूप बुद्धि का विकास नहीं होता वे सभी इसी वर्ग में आते हैं। दूसरे शब्दों में ऐसे व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि (I.Q.) सामान्य से निम्न स्तर की होती है। प्रायः जिन व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि का स्तर 70 से नीचे रहता है उन्हें मानसिक विकास की दृष्टि से मन्द बुद्धि माना जा सकता है। इस दशा के कारण व्यक्ति जीवन की प्रत्येक अवस्था में अपने लिये दूसरों पर निर्भर करता है। प्रायः उसे प्रत्येक कार्य के लिए दूसरे के निरीक्षण और मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि वह अपने कार्यों को करने में पूर्णतः असमर्थ रहता है। मानसिक दुर्बलता की स्थिति बालक-बालिकाओं में जन्म के समय पर भी देखने को मिलती है लेकिन इसे हारमोनल असंतुलन से लेते हैं।

मानसिक दुर्बलता की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है, जो प्रत्येक देश के व्यक्तियों की मानसिक दुर्बलता का स्पष्टीकरण कर सके। इस असामान्यता की परिभाषा देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, पारिवारिक मूल्यों और पम्पराओं पर आधारित होती है तथा इसका अर्थ भी स्थान, देश के अनुसार ही बदलता रहता है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- मानसिक दुर्बलता एक प्रकार की मानसिक विकृति है।
- इसका सम्बन्ध बौद्धिक क्षमता से होता है। यथार्थ में यह रोग नहीं है।
- यह मन और बुद्धि की कमजोरी है।
- मानसिक दुर्बलता को मानसिक कमजोरी, मानसिक अपूर्णता, मन्दबुद्धिता, मष्तिस्क की कमजोरी, जड़ता आदि के नाम से पुकारा जाता है।

16.3 मानसिक दुर्बलता की परिभाषा

वालमैन (Wolman) के अनुसार मानसिक दुर्बलता के क्षेत्र का सम्बन्ध ऐसे व्यक्तियों से है जिनका समायोजन उपलब्धि एवं जैसी अवस्थाओं अथवा प्रभावों द्वारा कुंठित अथवा अपर्याप्त रह गये हैं जो सामान्य अथवा औसत से स्पष्ट रूप से नीचे बौद्धिक विकास के स्तर को उत्पन्न करते हैं।

पेज (Page) के अनुसार मानसिक दुर्बलता निम्न मानसिक विकास की एक दशा है जो व्यक्ति में जन्म से विद्यमान होती है या बाल्याकाल के आरम्भ में उत्पन्न हो जाती है। दि अमेरिकन एसोसिएशन ऑन मैंटल रिटार्डेशन (The American Association on Mental Retardation, 1992) के अनुसार, ''मानसिक दुर्बलता का सम्बन्ध वर्तमान क्रियावधि में पर्याप्त परिसीमाओं से होता है। इसमें सार्थक रूप से अधोऔषत बौद्धिक क्रिया होती है तथा निम्नांकित उपयुक्त समायोजी कौशल क्षेत्रों में दो या दो से अधिक सम्बन्धित परिसीमाएँ साथ-साथ होती है- संचार, आत्म देख रेख, घरेलू जिन्दगी, सामाजिक कौशल, सामुदायिक अनुप्रयोग, आत्म दिशा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, कार्यात्मक शिक्षा, अवकाश एवं कृषि। मानसिक दुर्बलता 18 साल की आयु के पहले ही अभिलक्षित होती है।''

16.4 मानसिक दुर्बलता की विशेषताएँ

दैनिक जीवन में हम मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों को आसानी से उनके हाव-भाव, बोलचाल, उठने-बैठने, चलने-फिरने से तुरन्त पहचान जाते हैं कि यह व्यक्ति मानसिक रूप से दुर्बल है। साधारण तथा साधरणतया हम निम्न रूप में उनमें विशेषताएँ पाते हैं।

1) शारीरिक कमी:-

- मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का शारीरिक विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है।
- प्रथम दृष्टि में ही यह पहचाने जा सकते हैं।
- कद का छोटा या बौनापन, अस्पष्ट बोली, टेड़ी-मेड़ी चाल।

- शरीर के किसी अंग का कद के अनुसार कम या अधिक विकसित होना।
- शारीरिक अंग में एक प्रकार का विचलन या विचित्रता देखने को मिलती है।

2) न्यूनतमतम बौद्धिक क्षमता:-

- मानसिक दुर्बलता में कमी एक प्रमुख विशेषता है।
- मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति की औसत बुद्धि समान्य लोगों से कम होती है।
- मानसिक दुर्बल व्यक्ति वातावरण के साथ समायोजन स्थापित नहीं कर पाते।
- कल्पना शक्ति, याददास्त (स्मृति) आत्मविश्वास की कमी होती है।
- जीवन सम्बन्धी समस्याओं को समझ नहीं पाते।
- आयु के साथ बुद्धि स्तर नहीं बढ़ता है।
- पढ़ने-लिखने की क्षमता नहीं होती है।
- व्यवहार कुशलता की कमी होती है।
- चिन्तन करने की शक्ति बिलकुल नहीं होती।
- प्रायः चिन्तन से दूर भागते हैं।
- आयु के अनुसार व्यवहार नहीं करते हैं।

3) सामाजिक समायोजन की कमी:-

- मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति की तर्क शक्ति व कल्पना शक्ति सामान्य व्यक्तियों से कम होती है।
- मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति सामाजिक समायोजन में कठिनाई महसूस करते हैं।
- ये लोग अपनी देखभाल स्वयं नहीं कर सकते हैं।
- स्वयं कोई प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं।
- सदैव दूसरों पर निर्भर रहते हैं।
- कभी-कभी ये लोग स्वयं न खाना खा सकते हैं, न कपड़े पहन सकते हैं और न ही शारीरिक सफाई कर सकते हैं।

4) सामाजिक आयोग्यता:-

- मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति में बुद्धि का स्तर सामान्य रूप से कम होता है।
- मानसिक मन्दन वाले व्यक्ति निःसंकोच यौन सम्बन्धी अपराध एवं समाज विरोधी कार्य करते हैं।
- शारीरिक दुर्बलता के कारण ये प्रायः उक्त कार्यों के प्रति जिम्मेदार भी ठहराए जाते हैं।
- समाज में एक प्रकार से हँसी के पात्र होते हैं।
- सामाजिक अवसरों पर उपहास के कारण बनते हैं।
- अपने उपहास का कारण नहीं समझते हैं।

5) **शिक्षा का व्यापक अभाव:-**

- मानसिक दुर्बलता के कारण इन व्यक्तियों में शिक्षा का व्यापक अभाव होता है।
- प्रायः प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा से वंचित होते हैं।
- शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त करने की इच्छा भी कम होती है।

6) जीवन अल्प प्रत्याशा:-

- मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों की औसत आयु सामान्य व्यक्तियों की औसत आयु से कम होती है।
- मानसिक रूप से पीड़ित बालक/बालिकाएँ बिरले ही दीर्घायु तक पहुँचते हैं।
- मानसिक मंदित, बालक/बालिकाओं की किशोरावस्था में ही मृत्यु हो जाती है।
- यह भी देखने को मिला है कि आयु के साथ-साथ इन व्यक्तियों में मानसिक कमजोरी और भी अधिक गहरी हो जाती है, जो प्रायः इनकी मृत्यु का कारण बनती है।

7) ध्यान की कमी:-

- मन्द बुद्धि के कारण ध्यान विस्तार अति न्यूनतम रहता है।
- मन्द बुद्धि बालक/बालिकाओं में ध्यान लगाने, सीखने एवं पुनःस्मरण का अभाव रहता है।
- ध्यान के केन्द्रीकरण में असफल रहते हैं।
- भविष्य की चिन्ता नगण्य रहती है।
- मात्र वर्तमान में खाने व पहनने तक सीमित रहते हैं।
- एकाग्रचित्तता का अभाव रहता है।

8) सीमित प्रेरणा एवं संवेग:-

- मानसिक दुर्बलता से ग्रसित व्यक्ति में सामान्य संवेगों तथा सामाजिक प्रेरणाओं की कमी पायी जाती है।
- ऐसे व्यक्ति परिस्थिति के अनुकूल संवेग दिखला सकने में असमर्थ होते हैं।
- साधारण प्रेरणायें, जैसे किसी लक्ष्य को प्राप्त करना, दूसरों से मेलजोल रखना आदि की कमी पायी जाती है।

16.5 मानसिक दुर्बलता के कारण

मानसिक दुर्बलता के कारणों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। अधिकांश मनोवैज्ञानिक मानसिक दुर्बलता का कारण वंशानुक्रम मानते हैं परन्तु वंशानुक्रम कितना प्रभावी रहता है इस पर भी एकमत नहीं है। मानसिक दुर्बलता कभी-कभी किसी अप्रत्याशित घटना के घटने या मस्तिष्क की चोट के कारण में होती है। अनेक समय मस्तिष्क की स्मृति ग्रंथि के चोटिल होने पर स्मृति अभाव भी मानसिक दुर्बलता को बढ़ाता है। मानसिक दुर्बलता का कभी-कभी कारण भी स्पष्ट नहीं हो पाता जिससे मन्द बुद्धि वाले व्यक्तियों के लक्षण भी अलग-अलग होते हैं। परिणामस्वरूप

उनके कारण भी अलग-अलग हो जाते हैं, उदाहरणार्थ यदि नाटा व्यक्ति कार्य करने में अक्षम है लेकिन एकाग्रता सामान्य व्यक्तियों की भाँति है। इसी प्रकार यदि कभी मन्द बुद्धि व्यक्ति की स्पष्ट आवाज नहीं है तो वह इशारे से समझता है लेकिन कार्य करने की क्षमता है। मनोवैज्ञानिकों ने इनके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ कारण बताए हैं कि क्यों मानसिक दुर्बलता होती है।

1) संक्रमण रोगः-

- जन्म-आघात के कारण भी मानसिक दुर्बलता हो सकती है।
- जन्म के तुरन्त बाद या गर्भावस्था में किसी प्रकार की बीमारी से प्रभावित होने पर बच्चे के मस्तिष्क का सामान्य विकास मन्द पड़ जाता है तथा उसमें मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है।
- गर्भवती माता यदि किसी भी संक्रामक रोग से ग्रसित है तो उसका असर गर्भ में पलने वाले उसके बच्चे के मस्तिष्क या बच्चे के बनावट पर भी पड़ता है।
- एड्स रोग से ग्रसित माता-पिता के बच्चे भी मंद बुद्धि के शिकार होते हैं।
- माता-पिता यदि सिफलिश (यौन रोग) से पीड़ित हैं तो बच्चे में भी शारीरिक कमी देखी जाती है।
- नशा या मध्यपान करने वाले स्त्री-पुरुषों के बच्चों का मानसिक स्तर भी कम होता है।

2) कुपोषणः-

उपयुक्त पोषण के अभाव में भी बच्चे मानसिक रूप से दुर्बल पैदा होते हैं। प्रायः यह पाया जाता है कि विकसित देशों के व्यक्तियों का बौद्धिक स्तर अविकसित देशों की तुलना में अधिक होता है।

- कुपोषण के कारण बच्चे स्वस्थ नहीं होते कभी-कभी मानसिक रूप से दुर्बल बच्चे ही पैदा होते हैं।
- कुपोषण से बच्चे जहाँ मानसिक रूप से दुर्बल रहते हैं वहाँ उनके अंगों का समुचित विकास नहीं हो पाता है।
- कुपोषण के कारण दक्षिण अफ्रीका के एक देश के एक प्रान्त की जनसंख्या बौनी है।
- गर्भवती माता का पौष्टिक आहार न केवल बच्चे को सदृढ़ बनाना है बल्कि होने वाले बच्चे के बौद्धिक स्तर को भी बढ़ाता है।

3) जलवायुः-

किसी देश या प्रान्त की जलवायु का उस देश की जनसंख्या के बौद्धिक स्तर पर भी प्रभाव पड़ता है।

- प्रायः बड़े प्रान्तों के व्यक्तियों में मानसिक दुर्बलता गर्म देशों की तुलना में कम होती है।

- गर्म जलवायुमें गर्भ में भ्रूण आसानी से परिपक्व हो जाता है जिससे माताएँ जल्दी-जल्दी गर्भवती हो जाती हैं। फलस्वरूप उसका प्रभाव बार-बार प्रसव के कारण जहाँ माता के स्वास्थ्य पर पड़ता है वहीं बच्चे की मानसिक स्थिति व स्वास्थ्य पर भी पड़ता है।

4) नशा:-

- गर्भावस्था में कुछ माताएँ नशा करती हैं जैसे एल्कोहल, कुनैन, तम्बाकू, मैरीजुआना आदि से भ्रूण की मानसिक अवस्था प्रभावित हो जाती है।
- जब द्रव्य खेड़ी या पुरहन (Placenta) को पार करके गर्भस्थ शिशु क्षति पहुँचाता है तो टीरैटोजेन्स (Teratogens) कहा जाता है।
- फ्रांसिका तथा उनके सहयोगियों (Frascia etc, 1994) के अनुसार कोकेन, तम्बाकू तथा मारिजुआना तीन महत्वपूर्ण टीरोटेजेन्स हैं जो मानसिक रूप से गर्भस्थ शिशु को कमजोर करते हैं।
- सोचने व करने की क्षमता कम होना।
- प्रत्येक कार्य में देरी करना।
- शिक्षा के प्रति कम लगाव।
- हेबर (Heber, 1970), टार्जन एवं आसेन वर्ग (Tarjan & Eisenberg, 1972) ने अपने-अपने अध्ययनों में पाया है कि जब बच्चे ऐसे पारिवारिक संस्कृति से आते हैं जिनमें बौद्धिक चेतन की कमी पायी जाती है तथा परिवार में गरीबी होती है तो कम से कम 58 प्रतिशत बच्चे मानसिक रूप से अवश्य दुर्बल हो जाते हैं।

16.6 मानसिक दुर्बलता एवं घटनाक्रम

विभिन्न शोध अध्ययनों में मानसिक दुर्बलता का स्तर प्रत्येक देश में अलग-अलग बताया है। यह उपयुक्त कारणों एवं उपचार के अभाव में निम्न होता है।

- ❖ मानसिक दुर्बलता की गति लगभग 5 वर्ष की आयु में तीव्र होते देखी जा सकती है।
- ❖ इस आयु से ही मानसिक दुर्बलता के लक्षण देखे जा सकते हैं।
- ❖ जन्म से तीन-चार वर्ष की आयु में प्रायः मन्दन की स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती।
- ❖ प्रायः यह माना जाता है कि पाँच वर्ष की आयु से पूर्व की उसके बोलने-चलने में व्यवधान अज्ञान कारणों से हो रहा है।
- ❖ प्रायः अल्पायु में ही अधिकांश मानसिक दुर्बलता के शिकार बच्चों की मृत्यु हो जाती है।
- ❖ लगभग 15 वर्ष के बाद इनकी संख्या में कमी होने लगती है।
- ❖ प्रौढ़ावस्था तक पहुँचने तक इनकी संख्या लगभग नगण्य-सी रह जाती है।
- ❖ ऐसे व्यक्तियों का आयु विस्तार कम होता है।
- ❖ अनेक बार शारीरिक कमी के कारण ही इनकी अकाल मृत्यु हो जाती है।

❖ दुःख बीमारी के लक्षणों का सही रूप से ज्ञान न होना व उसे अभिव्यक्त करने में उपचार में कठिनाई आती है। उपयुक्त उपचार में कमी के कारण मृत्यु हो जाती है।

1) **मेटाबोलिज्म में कमी:-**

- मानसिक दुर्बलता का एक कारण मेटाबोलिज्म का कम या वृद्धि न होना।
- मेटा बोलिज्म की कमी आहार, वशा तथा प्रोटीन के कारण होती है।
- थाइराइड ग्रन्थियों में उच्चावचन होने से मानसिक दुर्बलता बढ़ती है।

2) मस्तिष्क के अंगों की क्षति या विकास न होना:-

मानसिक दुर्बलता का एक कारण मस्तिष्क के अंगों की क्षति या आयु के अनुसार विकास न होना है।

- कभी प्रौढ़ लोगों के मस्तिष्क में चोट लगने के कारण भी मानसिक दुर्बलता को बढ़ावा मिलता है।
- चोटिल व्यक्ति स्मरण शक्ति खो बैठता है या अपनी वर्तमान उम्र से कम की सोच रखता है। यह भी मन्द बुद्धि का कारण है।
- अनेक समय चोटिल व्यक्ति चिड़चिड़ा या पागलों की सी हरकतें करता है।

उम्र के अनुसार मस्तिष्क के अंगों का विकास न होने पर वह मानसिक दुर्बलता का शिकार हो जाता है।

सामाजिक - सांस्कृतिक वचन

कुछ विशेषज्ञो का मत है कि वातावरण सम्बधी आवश्यक तत्वो के अभाव में बच्चे संवेगाल्मक रूप से उत्पन्न कुंठा के शिकार हो जाते है जिनसे उनमें मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है। कारसन ;1988द्ध ने अपने अध्ययन के आधार पर बतलाया है कि जब बच्चे को माता-पिता के स्नेह से वंचित रह जाना पड़ता है

तो उससे भी मानसिक दुर्बलता उत्पन्न होती है इस तरह की घटना के कारण हो सकते है जिनमें सामाजिक आर्थिक स्तर का निम्न होना माता-पिता का तलाक या मृत्यु, घरो में व्यक्तियो की संख्या अधिक होना आदि होता हैं।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

हेबर (1972) टारजन एवं आसेनवर्ग (1972) ने अपने-अपने अध्ययनों में बताया है कि जब बच्चे ऐसी पारिवारिक संस्कृति से आते हैं वौहिक उत्तेजन की कमी पायी जाती है तथा परिवार गरिबी से अभिसापित होता है, तो कम से कम ऐसे 58 प्रतिसत बच्चे मानसिक रूप से अवश्य दुर्बल हो जाते है।

लेविस के दो विपरित पारिवारिक प्रष्ठभूमि का अध्ययन करने पर कुछ आँकड़े प्रात किये।

परिवार	मूर्ख	मूढ़	जड़
श्रेस्ठ परिवार	12%	33%	33%
न्यूनतम परिवार	62%	35%	27%

3) गर्भावस्था के दोष:-

कुछ मानसिक दुर्बलता गर्भावस्था के दौरान कुछ अज्ञात कारणो से उत्पन्न होती है। इस तरह की मानसिक दुर्बलता का कारण जन्मजात मस्तिष्कीय दोष बताया गया है मंगोलिज्म, लधुशीर्षता, वृहदशीर्षता, जलशीर्षता, तथा एनेन सिफैली ऐसे ही मानसिक दुर्बलता के कुछ उदाहरण है।

अधिकाशं मनोवैज्ञानिक मानसिक दुर्बलता का कारण वंशानुक्रम मानते है परन्तु वंशानुक्रम का कितना प्रभाव रहता है इस बारे में मनोवैज्ञानिक एक मत नहीं है। इमना अवश्य है कि 50 से 75 प्रतिशत दुर्बल व्यक्ति के माता-पिता भी दुर्बल वृद्धि के होते है, इस बात की पुस्टि गोडार्ड (Goddard) कालीकाक (Kallikak) ने परिवारो का अध्ययन करके की। रोजनोफ (Rosanoff) तथा उसके सहयोगियो ने समान तथा असमान जुड़वा बच्चों का अध्ययन करके बताया कि 91 प्रतिशत समान जुड़वॉ बच्चें और 53 प्रतिशत असमान जुड़वा बच्चें मानसिक दुर्बल पाये जाते है।

जन्म आघात के कारण भी मानसिक दुर्बलता हो सकती है। ऐसा जन्म के समय या जन्म के बाद मस्तिस्क पर आघात पहुँचने के कारण होता है परन्तु यही केवल कारण नहीं है क्योंकि कुछ बच्चे बिना जन्म आघात के भी मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त हो जाते हैं।

कुछ विशेष प्रकार की अर्न्तस्त्रावीं ग्रन्थियों के सामान्य रूप से कार्य करने के कारण भी मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है।

16.7 सारांश

मानसिक दुर्बलता ऐसे अल्प बौद्धिक विकास का बोध होता है, जिसमें सम्बन्धित व्यक्ति का किसी जैविक अथवा अर्जित कारणों से अपने जीवन में व्यावहारिक तथा सामाजिक समायोजन एक प्रकार से लगभग स्थायी रूप से शिथिल पड़ जाता है। यह एक प्रकार की मानसिक विकृति है।

जो जन्म से या मस्तिष्क में किसी गम्भीर चोट के कारण उत्पन्न होती है। यह मन व बुद्धि की कमजोरी है। प्रायः हम मंदबुद्धि का अर्थ उस रोगी से लेते हैं जिनका बौद्धिक विकास सामान्य व्यक्तियों से कम हो जाता है। प्रायः इस रोग से ग्रसित व्यक्तियों की दूसरों पर निर्भरता रहती है। इस प्रकार के व्यक्तियों की जीवन प्रत्याशा सामान्य व्यक्तियों से कम होती है। मानसिक दुर्बलता के कारक व लक्षण अनेक होते हैं जिनका पूर्व में विस्तार से वर्णन किया गया है। मानसिक दुर्बलता से ग्रसित व्यक्ति सभी देशों में देखे जा सकते हैं। किसी देश में इनकी प्रतिशत रूप संख्या अधिक होती है तो कहीं कम।

मानसिक दुर्बलता के अन्तर्गत ऐसे व्यक्तियों को रखा जा सकता है जिनके मानसिक विकास की मात्रा अपूर्ण है या अवरोधित हो गयी है। जिनमें आयु में वृद्धि के अनुरूप बुद्धि का विकास कम हो रहा है या अवरुद्ध हो गया है। संक्षेप में उक्त विवेचना निम्न प्रकार से सारांशित कर सकते हैं।

- सामान्य व्यक्ति की बुद्धि से बहुत कम बुद्धि।
- मानसिक दुर्बलता से तात्पर्य सीमित समायोजन, सीमित बौद्धिक क्षमता, शारीरिक कमी, सीमित प्रेरणा, ध्यान चेतना में कमी, बौनापन आदि से है।
- मानसिक दुर्बलता के सामान्य कारणों में गम्भीर (संक्रमण), मद्यपान, मस्तिष्कीय अंगों में क्षति आदि प्रमुख हैं।
- जन्म से मंद बुद्धि व्यक्तियों का उपचार बहुत कम देखा गया है।

16.8 शब्दावली

- **मानसिक दुर्बलता:** इसमें दोषपूर्ण चिन्तायुक्त वातावरण में आग्रहपूर्ण और अनिवार्य विचार, चिकित्सा सम्बन्धी विवरण पर हावी रहते हैं।
- **मनोविकृति:** एक प्रमुख मानसिक अव्यवस्था, जो क्रिया सम्बन्धी हो सकती है। उसमें विशेषतः वास्तविकता का अनुपयुक्त मूल्यांकन होता है।
- **मंदबुद्धिता:** इसमें सोच-विचार की क्षमता कम होती है।
- **मानसिक विकास:** जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जाता है, उसमें सोचने-समझने की क्षमता भी बढ़ती जाती है।
- **निरीक्षण:** निरीक्षण से तात्पर्य देखरेख से होता है।
- **मार्गदर्शन:** मार्गदर्शन में उसको सही रास्ते का ज्ञान होता है।
- **न्यूनतम बौद्धिक क्षमता:** दुर्बल व्यक्ति की औसत बुद्धि सामान्य लोगों से कम होना।
- **कल्पनाशक्ति:** सोचने-विचारने की क्षमता।
- **सामाजिक अयोग्यता:** समाज में उठने-बैठने, खाने-पीने, रहने में असमर्थ।

- **जीवन अल्पप्रत्याशा:** मानसिक मंदन की स्थिति जितनी ही अधिक गहरी होती है, उसकी जीवन प्रत्याशा भी उतनी ही कम रहती है।
- **ध्यान विस्तार:** ध्यान से सुनना।
- **एकाग्रचित्तता:** कोई भी कार्य मन लगाकर करना।
- **बुद्धि लब्धि:** योग्यता प्रतिमान
- **अप्रत्याशित:** अचानक
- **सिफलिटा:** यौन रोग
- **कुपोषण:** विटामिन युक्त खाने का अभाव
- **अर्द्धविकसित:** जिसका पूरा विकास नहीं हो पाता है

16.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1) मानसिक दुर्बलता में व्यक्ति की बुद्धि लब्धि (I.Q.) होती है-

   a) 70 से ऊपर b) 70 से नीचे

   c) 20 से नीचे d) 50 से नीचे

2) तीव्र मानसिक दुर्बलता के स्तर में व्यक्ति की बुद्धि लब्धि (I.Q.) होती है।

   a) 52 से 60 तक b) 25 से 35 तक

   c) 36 से 51 तक d) 60 से 70 तक

3) मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति की तर्कशक्ति तथा कल्पनाशक्ति सामान्य व्यक्तियों में होती है-

   a) कम होती है b) ज्यादा होती है

   c) बराबर होती है d) नहीं होती है

4) मानसिक रूप से पीड़ित व्यक्ति में लक्षण पाये जाते हैं-

   a) शारीरिक कमी b) सामाजिक अयोग्यता

   c) न्यूनतम बोद्धिकता d) उपरोक्त सभी

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये-

1) मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति में बुद्धि का स्तर सामान्य रूप से................................होता है।
2) मानसिक दुर्बल व्यक्ति वातावरण के साथ .... स्थापित नहीं कर पाते हैं।
3) आयु के साथ बुद्धि स्तर.. बढ़ता है।
4) कल्पना शक्ति, याददाश्त तथा आत्मविश्वास की .... होती है।
5) ऐसे व्यक्तियों का आयु विस्तार.....................................होता है।
6) कुपोषण के कारण दक्षिण अफ्रीका के एक देश के एक प्रान्त की जनसंख्या ....है।

III. सत्य-असत्य बताइये-

1) मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का शारीरिक विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। सत्य/असत्य
2) व्यक्तियों की पढ़ने-लिखने की क्षमता अधिक होती है। सत्य/असत्य
3) ऐसे व्यक्ति दूसरों पर निर्भर रहते हैं। सत्य/असत्य
4) एकाग्र भिन्नता का अभाव रहता है। सत्य/असत्य
5) लगभग 15 वर्ष बाद इनकी संख्या में कमी होने लगती है। सत्य/असत्य

IV. एक शब्द में उत्तर दीजिये-

1) मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति की औसत बुद्धि सामान्य लोगों से कम होती है या ज्यादा।
2) किस ग्रन्थि में उच्चावचन होने से मानसिक दुर्बलता बढ़ती है।
3) कुपोषण के कारण किस देश के एक प्रान्त की जनसंख्या बौनी है।
4) जब द्रव्य खेड़ी या पुरहन (Placenta) को पार करके गर्भस्थ शिशु को क्षति पहुँचाता है उसे क्या कहते हैं।

उत्तर: I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

1) b 2) b 3) a 4) d

II. रिक्त स्थान की पूर्ती कीजिए -

1)कम 2) समायोजन 3) नहीं 4) कमी 5) कम 6) बौनी

III. सत्य असत्य बताइयें -

1) सत्य 2) असत्य 3) सत्य 4) सत्य 5) सत्य

IV. एक शब्द में उत्तर दीजिए -

1) कम 2) थाइराइड ग्रन्थियों 3) दक्षिण अफ्रिका 4) टीरैटोजेन्स

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कोर्चीन एस.जे., मार्डन क्लीनीकल साइकोलोजी, सी.वी.एस. पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989
- कपिल एच. के. असामान्य मनोविज्ञान, हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा, 2001
- कपिल एच. के., आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान, भार्गव बुक हाउस, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1996-97
- कपिल एच. के., अनुसंधान विधियाँ, हरप्रसाद भार्गव, आगरा, 1989
- राटर, जे. पी., क्लीनीकल साइकोलोजी, प्रैन्टिसहाल आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1964
- सण्डवर्ग एन.डी., टाइलर एल. ई., क्लीनीकल साइकोलोजी, मेथ्यून एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, 1963
- सिंह आर.पी., नैदानिक मनोविज्ञान, वि. पु. मन्दिर, आगरा, 1981
- सिंह लाभ एवं तिवारी गोबिन्द, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, 1984
- श्रीवास्तव अजय कुमार, मनोविकृति विज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2009
- ओझा आर. के. असामान्य मनोविज्ञान, हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा, 1991
- चौबे, एस.वी. असामान्य मनोविज्ञान और आधुनिक जीवन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1988-89
- सिंह ए. के., आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2002

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

- **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. मानसिक दुर्बलता के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. मानसिक दुर्बलता के घटना क्रम को बताइए ।
3. किन्ही दो मानसिक दुर्बलता की विशेषता का वर्णन करों।

- **विस्तृत प्रश्न**

1. मानसिक दुर्बलता किसे कहते है? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
2. मानसिक दुर्बलता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. मानसिक दुर्बलता के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
4. मानसिक दुर्बलता पर संक्षेप में निबन्ध लिखिए।

इकाई–17 मानसिक दुर्बलता की रोकथाम और उपचार

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 मानसिक दुर्बलता की रोकथाम
17.4 मानसिक दुर्बलता से ग्रसित व्यक्ति में फैलाव में नियंत्रण
17.5 मानसिक रूप से ग्रसित व्यक्तियों का उपचार
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

मंद बुद्धि के लोगों की संख्या में वृद्धि का तात्पर्य वंशानुक्रम से है या माता-पिता के जीन्स (जो मन्द बुद्धि युक्त हैं) उनकी आने वाली पीढ़ी में न आ जाए। अनेक अध्ययनों से यह भी पता चला है कि किसी परिवार में यदि एक से अधिक मंद बुद्धि व्यक्ति हैं तो इसका अर्थ है कि कहीं न कहीं यह मानसिक दुर्बलता उसमें वंशानुक्रम से तो नहीं है। तब ऐसे मंद बुद्धि व्यक्तियों के प्रजनन पर नियंत्रण लगाया जाए।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- मानसिक दुर्बलता की रोकथाम के बारे में जान सकेंगे।
- मानसिक दुर्बलता का उपचार कर सकेंगे।
- मंदबुद्धि लोगों की संख्या में नियंत्रण कर सकेंगे।
- मानसिक दुर्बलता से ग्रसित व्यक्ति में इस रोग के फैलाव में नियंत्रण कर सकेंगे।

17.3 मानसिक दुर्बलता की रोकथाम

1) **बंध्याकरण-** आधुनिक मनोविज्ञान विशेषज्ञों का मानना है कि अगर किसी परिवार में कोई मंद बुद्धि बच्चा है तो उसकी नसबन्दी कर दी जाए। यद्यपि यह कदम न्यायोचित नहीं है परन्तु मानसिक दुर्बलता को रोकने का महत्वपूर्ण उपाय है। जिससे आने वाली पीढ़ी में मानसिक दुर्बलता आगे नहीं बढ़ पायेगी।
2) **गर्भपात-** यदि मानसिक रूप से दुर्बल महिला गर्भवती हो तो उसका गर्भपात करा दिया जाए ताकि उसके बच्चे पैदा न हो सके। क्योंकि मंदबुद्धि के बच्चों के होने की संभावना अत्यधिक रहती है।
3) **शादी-व्याह पर रोक-** यदि किसी परिवार में मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति हैं तो माता को चाहिए कि वह उसकी शादी न करे। मेरा यहाँ तक सुझाव है कि सरकार को चाहिए कि एक ऐसा कानून बनाया जो गम्भीर रूप से मानसिक दुर्बल व्यक्तियों के विवाह पर रोक लगा सके।
4) **कुशल प्रसूतिकर्ता-** यह भी आवश्यक है कि जो प्रसूतिकर्ता है उसका कुशल होना आवश्यक है क्योंकि गर्भवती माताओं के लिए जन्म के समय शिशु के सिर को किसी प्रकार का अघात न पहुँचे और जनन प्रक्रिया सफल हो सके। कभी-कभी अनेक शिशुओं जन्म के समय आघात से ही मानसिक मंदन की स्थिति उत्पन्न होती देखी जाती है।
5) **कुपोषण-** गर्भवती माताओं को कुपोषण, बीमारी तथा लम्बे समय से तनाव से बचाना चाहिए। बामनिष्टर (Baumeister) ने ऐसी माताओं को एल्कोहल से दूर रहने की सलाह दी है।

17.4 मानसिक दुर्बलता से ग्रसित व्यक्ति में फैलाव में नियंत्रण

मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति का पूर्णरूपेण इलाज तो संभव नहीं है परन्तु उनका उपचार करके फैलाव को रोका जा सकता है।

1) **माता-पिता को जागरूक बनाना-** मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों के उपचार में सबसे पहला कदम यह है कि पीड़ित व्यक्ति के माता-पिता को इस दिशा में जागरूक करना होगा कि उनका बच्चा मानसिक रूप से मंद बुद्धि है तथा उसकी आवश्यकतानुसार देख रेख की जाए। ऐसी परिस्थिति के लिए इस बात की आवश्यकता है कि माता-पिता को इस ढंग से शिक्षित की जाए कि वे अपने बच्चों की ऐसी कमजोरियों का बाल्यावस्था में ही पहचान कर लें। जिससे ऐसे बच्चों का उचित व्यक्तित्व और व्यावसायिक प्रशिक्षण देकर आत्मनिर्भर बनाया जा सके।
2) **स्कूल प्रशिक्षण-** मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों को उन्हें रोजगारोन्मुख विषयों पर प्रशिक्षण देकर आत्मनिर्भर बनाना होगा। ऐसे मंद बुद्धि बच्चों का स्कूल अलग या फिर उनकी कक्षाएँ

अलग रखी जाये। क्योंकि सामान्य बच्चों में उनकी देख-रेख संभव नहीं है। इनके पाठ्यक्रम इनकी समझ के साथ अलग हों।

विशेष कक्षा के इन लाभों के साथ कुछ समस्याएँ भी हैं, जैसे- हेल्टर, हॉल्जमैन एवं मेस्सिक (Helter, Holtzman & Messick, 1982) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि इस प्रकार का कार्यक्रम प्रायः अलग मकान में नियमित कक्षाओं से हटकर चलाया जाता है। तरह का लगाव सामान्यीकरण का प्रतिकूल होता है तथा सामान्य छात्रों में मानसिक एवं दुर्बल बच्चों के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न कर देता है इसलिए आजकल इस तरह के विशेष शिक्षा का विकल्प ढूँढ लिया गया है जिसमें साधारण राय से मानसिक दुर्बल बच्चों को भी आंशिक रूप से सामान्य बुद्धि के बच्चों की कक्षा में बैठाकर कुछ समय के लिए शिक्षण दिया जाता है। इसे डन्न (Dunn 1968) ने मुख्य प्रवाही कहा है।

3) **पारिवारिक पर्यावरण-** मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों का पारिवारिक वातारण सौहार्दपूर्ण होना चाहिए। माता-पिता ऐसे बच्चों को स्नेह, प्यार अन्य बच्चों के समान दें। ऐसे में इन बच्चों में आत्मविश्वास एवं मनोबल में वृद्धि होगी। परिवार के परिचित व सुखद पर्यावरण में रहने से भी अक्सर देखा गया है कि उनका बौद्धिक विकास अपेक्षाकृत अधिक तथा शीघ्र होता है।
4) **वातावरण में सुधार-** ऐसे बच्चों के पारिवारिक वातावरण में सुधार करना होगा उन्हें किसी प्रकार की कमी का एहसास न हो। मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों को समाज व घर में उचित सम्मान मिलना चाहिए। गम्भीर रूप से मानसिक दुर्बलता से ग्रसित बच्चों को ऐसे वातावरण विशेष रूप से ऐसी संस्था में रखकर उपचार किया जाना चाहिए जहाँ उनके उपचार के लिए विशेष प्रबन्ध हों।
5) **मेडिकल उपचार-** ऐसे बच्चे जो मानसिक रूप से पीड़ित हैं उनका मेडिकल उपचार भी आवश्यक है। मेडिकल उपचार में विशेषकर हार्मोन चिकित्सा का विशेष महत्व बतलाया है। जैसे हाइपोथायराडिज्म (Hypothyroidism) या क्रेटिनिज्म की चिकित्सा थाइटाक्सीन की सुई देकर या टिकिया खिलाकर आसानी से किया जा सकता है।

17.5 मानसिक रूप से ग्रसित व्यक्तियों का उपचार

मानसिक रूप से दुर्बल या मंद बुद्धि को कैसे रोका जाए या कम किया जाए एक तथ्य है तथा इसका उपचार किस भांति हो यह दूसरा तथ्य है। वैसे तो मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का पूर्णरूप से उचार सम्भव नहीं है क्योंकि यह जन्मजात बिमारी होती है। अतएव समूल निवारण नहीं हो पाता।

जैसा कि अल्पबुद्धि या मानसिक मंदन अनेक प्रकार की होती है। यह व्यक्ति में अलग-अलग होती है। हम उनके हाव-भाव, आकार या बुद्धि लब्धि से उनका वर्गीकरण करते हैं। इसी वर्गीकरण के आधार पर मनोचिकित्सक एवं चिकित्सक उनके लक्षणों के आधार पर उनका उपचार भी करते हैं।

- उदाहरणार्थ- भौगोलिक मानसिक मंन से ग्रसित व्यक्ति के अधिकांश शारीरिक लक्षण बाहरी रूप से मंगोल देश के निवासियों के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं। ऐसे व्यक्ति का कद नाटा या छोटा होता है। मनोवैज्ञानिक इसे वंशानुगत मानते हैं। इनके लक्षण जन्म से उभर जाते हैं
- शरीर के अंगों का विकास समान रूप से नहीं होता है।
- यह रोग गर्भवती माता के हारमोनों में असंतुलन आने से होता है। अतः गर्भवती माता को संतुलित आहार दिया जाए जिससे बच्चा इस बीमारी पैदा न हो।
- गर्भवती माता को कभी भी एक्स-रे नहीं कराना चाहिए क्योंकि इससे मगोलिया बीमारी को बढ़ावा मिलता है।

1) जडवामनता-

जडवामनता ऐसी मानसिक दुर्बलता है जिसमें गर्भस्थ शिशु के शरीर के हारमोन असंतुलित होने से असामान्यता आ जाती है। थायराइड ग्रन्थियों में असंतुलित विकास या विकार आने से यह रोग उत्पन्न होता है। प्रायः ये रोगी बौने होते हैं। आयोडीन की कमी कुपोषण का सीधा असर थायराइड ग्रन्थियों में पड़ता है जिसका शिकार गर्भस्थ शिशु होता है।

- थाइरोक्सिन व आयोडीन की कमी से यह रोग होता है अतएव यथा समय उक्त अवयवों की कमी को पूरा किया जाए।
- इंजैक्शन के माध्यम से थाइरोक्सिन पहुँचाकर रोग फैलने को रोका जा सकता है।

2) जलशीर्षता-

- इस प्रकार का मंद बुद्धि रोग कभी जन्म से या जन्म के 2-3 वर्ष बाद भी देखने को मिलता है। इस बीमारी में सिर का आकार मेरू द्रव्य के अत्यधिक मात्रा में संचित होने के कारण शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा लगभग दुगुना हो जाता है। मस्तिष्क में सूजन आने से विकार उत्पन्न हो जाते हैं।
- जलशीर्षता का उपचार प्रायः कठिन है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण मेरूदण्ड व मस्तिष्क में गड़बड़ी उत्पन्न होने की अधिक सम्भावनाएँ होती हैं।
- प्रायः शल्य चिकित्सा से ही इसका उपचार हो सकता है।

3) पी. के. यू.-

पी. के. यू. मानसिक मन्दन की एक ऐसी स्थिति है जिसमें रोगग्रस्त शिशु का शारीरिक तथा मानसिक विकास रुक जाता है। पाचक रसों के अभाव में फिनाइललानिक की मात्रा बढ़ जाती है।

जिससे बच्चे का मेटाबोलिज्म बिगड़ जाता है। फलस्वरूप बच्चे का मानसिक विकास धीमी गति से बढ़ता है या रुक जाता है। बच्चे को कुछ समय बाद मृगी के दौरे पड़ने लगते हैं। अतएव पी.के.यू. रोग से ग्रसित बच्चे के इलाज में जरा भी देरी नहीं करनी चाहिए। बच्चे को ऐसा भोजन दिया जाए जिससे फिनाइललानिक की मात्रा बहुत न्यूनतम हो जिससे बालक के मस्तिष्क को होने वाली क्षति से बचाया जा सके।

मनसिक दुर्बलता से सम्बन्धित दुर्बलताए एवं उनके उपचार(PROBLMS RELATING TO MENTAL DEFICIENCY & THEIR TREATMENTS):

वर्तमान समय के छात्र-छात्राओं से सम्बन्धित समस्याओं का मनोवैज्ञानिक एक महत्वपूर्ण कारक है। फयर्स (1985) का मानना है कि छात्र/छात्राओं का नैदानिक मनौवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन प्रायः निम्न रूपो में करते है।

I. मानसिक दुर्बलता से सम्बन्धित समस्याएँ (Problems Relating to mental Deficiency)-

1. ऐसे छात्र/छात्राएँ जिनकी बौद्धिक क्षमता अपनी वास्तविक आयु से भी तुलना में कम होती है। तथा वे अपने दिन प्रतिदिन की सामान्य जिन्दगी में समायोजन नहीं कर पाते है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक का मानना है कि मन्द बुद्धि के छात्र/छात्राओं के पाठ्यक्रम पृथक हों तथा उनकी बुद्धि के स्तर को ऊचा उठाने के सतत् प्रायास किये जायें।
2. क्षमता प्रशिक्षण (Ability Training) क्रेपहार्ट (1971) अकसर ऐसे अल्पबुद्धि के छात्र/छात्राओं को उस विशेष क्षेत्र में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिसके कारण उनके उपलब्धि क्षेत्र में कमी आई है।
3. कौशल प्रशिक्षण (Skill Training) ऐसे बालक/ बालिकाएँ जो किसी विशेष क्षेत्र में दक्ष्य है परन्तु उस हेतु उन्हें पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाया हो जिसके कारण वे मनोवैज्ञानिक रूप से असवस्थ है। ऐसे रोगियों के कौशल को छोटे-छोटे प्रयोग करके उनके कौशल को उभारा जा सकता है।

II. व्यवहार विकृति से सम्बन्धित समस्याएँ (Problems Relating To Behaviour Disorders)-

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का यह विश्वास रहा है कि यदा-कदा व्यवहार विकृति से भी अनेको प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं ऐसे बच्चों युवा वर्ग में किसी कार्य को सीखने की अक्षमता पाई जाती है। ये सामान्य वर्ग के समान व्यवहार नहीं करते है।

प्रायः ऐसे बच्चों में विषाद (Depression) मनोदशा सदा बनी रहती है। इस तरह के मनोरोगियों की चारित्रिक विकृति किशोर अपराध, व्यक्तित्व विकृति आदि की श्रेणी में रखा जाता

हैं। अतः नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को ऐसे बच्चों की समस्याओं को प्राथमिकता देते हुए उपचार करना पड़ता हैं। ऐसे मनोरोगियों का कारण मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनों होता है। ये समाचर दिनोंदिन बढ़ जाती है जो अविभावकों को तथा शिक्षकों दोनों की समस्या उत्पन्न करती हैं। कॉफमैन (1987) के अनुसार बच्चों का अपने माता-पिता, भाई-बहिन व सगे सम्बन्धियों तथा अपने मित्रों के साथ अच्छे सम्बन्धों का न होना या उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया जाना प्रमुख कारण हैं। कॉफमैन ने ऐसे रोगियों के उपचार हेतु अनेक मॉडल बनाए है जिनमें निम्न प्रमुख हैं।

i) मनोगतिक माडल- जब व्यवहार विकृति का कारण बच्चों के उपाहं, अहं, पराहंमें असंतुलन के कारण काई विकृति आती है तो उसे मनोगतिक प्रभाव कहते है। इसके उपचार हेतु रोगी को नैदानिक मनोवैज्ञानिक की परामर्शानुसार कार्य करना चाहिए।

ii) जैविक माडल- जब अनुवांशिक कारणो से विकृति आति है ऐसे मनोरोगियों के जैविक माडल के अर्न्तगत रखा जाता है। इनका उपचार मेडिंकल चिकित्सा द्वारा सम्भव हैं।

iii) पारिस्थितिकी मॉडल- बच्चों का अपना वातावरण के साथ अन्य लोगो तथा सामाजिक समस्याओं के साथ अन्तःक्रिया पर बल डालता है जिससे वादय प्रवेश के साथ मिलजुलवा रहने पर उनके बाचार-व्यवहार पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता हैं।

III. **संचार विकृति से सम्बन्धित समस्याएँ-**

ऐसे व्यक्ति जिनमें वाणी या भाषा से सम्बन्धित विकृतियां होती है को संचार विकृति कहते हैं। इस प्रकार के मनोरोगी सामाजिक रूप से कुसमायोजित होते है। तथा अपनी भावनाओं को सही रूप में व्यक्त नहीं कर पाते हैं। उदाहरणार्थ यदी बचपन में वाणी या भाषा दोष हो उसे संचार विकृति नहीं कहा जा सकता।

यदी 14-15 वर्ष के बाद उसी प्रकार भाषा या वाणी का प्रयोग दैनिक जिवन में करता है तब संचार विकृति कहा जा सकता हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ संचार विकृतियाँ आंगिक होती है तथा कुछ विकृतियाँ कार्यात्मक आंगिक, तात्पर्य शारीरिक कमी के कारण सही न बोल पाना है।

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ संचार विकृतियाँ आंगिक होती है कुछ विकृतियाँ कार्यात्मक होती है। आंगिक होने से ऐसे विकृतियों का कारण कुछ शारीरिक असामान्ता जैसे- दांत का न होना वाणी पेशियों में पक्षापात, श्रवण दोष आदि पाये जाते हैं। जब संचार विकृतियों का आधार कार्यात्मक होता है तो इसका कारण शारीरिक न होकर पर्यावरणी प्रभाव होते है। ऐसे बच्चो को वातावरण दोषपूर्ण मिलने के कारण ये अनुपयुक्त संचार करना सीख लेते है।

ऐसे बच्चो के उपचार में नैदानिक मनोवैज्ञानिक मनोरोग विज्ञानी तथा अन्य पैरामेडिकल विशेषज्ञ संयुक्त रूप से थाम लेते है। ये लोग बच्चों में पहले सुनने की क्षमता विकसित करने की

कोशिश करते है तथा समान आवाज के बच्चों में विभेद करना उन्हें सिखलाते हैं। बच्चो को कठिन शब्द, वाक्य आदि सीखलाया जाता है ऐसे प्रशिक्षण देते समय बच्चों के सामने एक उत्तम भाषा मॉडल प्रस्तुत किया जाता है तथा उपके घनात्मक निष्पादन को पुरस्कृत किया जाता है। तथा उसे सही-सही ढ़ग से बोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। मैकडोनालड (1989) में एक अध्ययन किया और परिणाम में देखा कि 15 ऐसे बच्चों में करीब 7 बच्चों ने जिनमें संचार विकृति का आधार कार्यात्मक था, उपयुक्त ढग के प्रशिक्षण से काफी लाभान्वित हुए।

IV. प्रतिभाशाली बच्चों से संबन्धित समस्याएँ-

सिगो (Seagoe,1974) ने प्रतिभाशाली बच्चों के विभिन्न समस्याओं का एक समस्थ सर्वेक्षण किया और यह बतलाया की इनकी समस्याएँ अधिक प्रबल होती है ऐसे बच्चें लापरवाह प्रकृति के होते है। वे प्रायः अपने सीमित ज्ञान या समझ बूझ के आधार पर लम्बे एवं आडबंरी कथन प्रस्तुत करते रहते हैं। किसी भी विचार गोष्ठी में अनावाश्यक रूप से प्रमुख दिखलाने कि कोशिश करते है। प्रायः अलग कार्य या स्तर पर बढ़ने की अधैर्यता देखी जाती है। ऐसे बच्चो को किताब विशेषकर अत्यन्त पढ़ने में अधिक मन लगता है हम बच्चों का जब दिन प्रतिदिन की धटनाओं में जब स्पष्ट तर्क नहीं मिलता तो वे कुंठित हो जाते है ऐसे व्यक्ति पुनर्वावृत्ति से भी कुंठित हो जाते हैं। तथा बहुत जल्द किसी चीज या कार्य में रूचि खोने लगते हैं।

ऐसे बच्चों में प्रतिभा तथा कोशल की पर्याप्तता होती है फिर भी समस्याओं के कारण इन पर नैदानिक मनोवैज्ञानिक स्कूल परामर्शदाताओं तथा शिक्षा मनोवैज्ञानिको को विशेष ध्यान देना पड़ता है ऐसे बच्चों की समस्याओं का निवारण करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम तैयार करना, अन्य वर्गो को दिये जाने वाले कार्यक्रम में उनकी भागीदारी करना, विशेष योग्यता वाले शिक्षक कि बहाली करना आदी प्रमुख हैं।

मनसिक दुर्बलता की सफल चिकित्सक अत्यधिक कठिन कार्य है। पूर्णरूप से इसका उपचार नहीं हो सकता कुछ अंशो तक सुधार अवश्य किये जा सकते हैं। मानसिक दुर्बलता रोकने का सरल उपाय इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति कि सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति को नष्ट करके किया जा सकता है तथा इससे मानसिक दुर्बलता वाले अन्य बच्चों के जन्म को रोका जा सकता है। Page के अनुसार इस विधि के द्वारा अधिक से अधिक 15% मानसिक दुर्बलता में कमी हो सकती है।

मनसिक दुर्बल बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग रखकर भी मानसिक दुर्बलता में कमी आती है सामाजिक संरक्षण प्रदान करके भी कमी की जा सकती है परन्तु यह विधि भी सन्तोषजनक नहीं है। मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त स्त्रियों का मर्भापात के द्वारा बच्चा पैदा रोका जा सकता है।

इसके अतिरिक्त माता-पिता को शिक्षा के द्वारा बच्चे कि मानसिक दुर्बलता का प्रारम्भिक उपचार का ज्ञान करना चाहिए। अक्सर ऐसा होता है कि माता मानसिक दुर्बल बच्चें कि अपेक्षा

अन्य बच्चों को अधिक चाहने लगती है। इससे मानसिक दुर्बल बच्चों का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा उनमे संवेगात्मक अस्थिरता आ जाती है इसे दूर करने के लिए घर का प्रशिक्षण देना चाहिए। स्कूल प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में व्यवसाय चिकित्सा बहुत लाभदायक सिद्ध होती है इस प्रकार के बच्चों को किसी संस्था में भेजा जा सकता हैं।

17.6 सारांश

व्यक्तियों में मंद बुद्धि एवं मानसिक दुर्बलता के रोकथाम व उपचार दो अलग-अलग तथ्य हैं। इसी प्रकार बच्चों में मंद बुद्धि के फैलाव संख्यात्मक रूप से कम करना तथा रोग से ग्रसित बच्चे में रोग के फैलाव पर नियंत्रण करना दूसरी बात है। रोकथाम के अंतर्गत हम बीमारी से पूर्व के निवारण के उपयोग को लेते हैं जबकि उपचार में हम बीमारी को दूर करने के लिए उपचार करते हैं।

प्रायः समाज में हमें अनेक प्रकार के व्यक्तित्व के लोग मिलते है। कुछ की बुद्धि कुशाग्र होती है। वे अच्छा-बुरा समझते हैं, जिन्हें हम सामान्य व्यक्ति कहते हैं। असामान्य व्यक्ति दो प्रकार के हो सकते हैं। एक वह जो मानसिक विकृति का शिकार है जो जन्म के बाद किसी घटनाक्रम या दुर्घटना या दिमागी विकृति के कारण हुआ, जिसे हम बोलचाल की भाषा में 'पागल' कहते हैं, जो जन्म के कई वर्ष बाद उक्त घटना से हो सकती है या दूसरे शब्दों में वह 'पागल' होने से पूर्व एक सामान्य व्यक्ति था। परन्तु मंद बुद्धि से ग्रसित व्यक्ति प्रायः जन्म से लेकर तीन-चार वर्ष के पश्चात् तक जब उसका मानसिक विकास आयु के अनुसार नहीं होता है तो हम उसे मानसिक रूप से दुर्बल कहते हैं। ऐसे व्यक्ति वंशानुक्रम में भी हो सकते है या नहीं भी। परन्तु होने की सम्भावना प्रबल रहती है। मंद बुद्धि बच्चों के जन्म के रोकथाम के लिए ऐसे उपाय किए जाये जिससे मंद बुद्धि लोगों की प्रजनन शक्ति को रोका जाए। ऐसे लोगों की नसबन्दी कर मंदबुद्धि बच्चों की जन्मदर पर नियंत्रण लगाया जा सकता है। यदि कोई मंदबुद्धि की महिला गर्भवती है तो उसका गर्भपात किया जाए। सरकार ऐसा नियम या कानून बनाये जिससे मंदबुद्धि की स्त्री व पुरुष का विवाह न हो सके इसके अतिरिक्त मंद बुद्धि व्यक्तियों के अभिभावकों को चाहिए कि उक्त प्रक्रिया को स्वयं अपने घर से शुरू कर दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बनें।

समाज के मंद बुद्धि लोगों के लिए पृथक् स्कूल, मनोरंजन केन्द्र या पुनर्वास की व्यवस्था हो। चूँकी मानसिक दुर्बलता के अनेक प्रकार हैं। कुछ बौने, नाटे, शीर्ष जलस्तर या हारमोन्स की कमी के कारण मानसिक दुर्बलता आदि। अतएव उनके उपचार भी उनकी स्थिति व दशा देखकर हो। यद्यपि जन्म से मानसिक दुर्बल्ता का उपचार बहुत कम है परन्तु हारमोन्स में विकृति या मोटाबोलिज्म में गड़बड़ी से उत्पन्न मानसिक दुर्बलता का उपचार चिकित्सा पद्धति में पर्याप्त है। जबकि जन्म से मानसिक मंदन को मनोवैज्ञानिक ढंग से हो सकता है।

17.7 शब्दावली

- **बन्ध्याकरण:** स्त्री-पुरुषों की नसबंदी जिससे प्रजनन शक्ति पर रोग लगाकर जन्म स्तर को रोका जाए।
- **गर्भपात:** जन्म से पहले महिला गर्भ के भ्रूण का निस्तारण
- **फिनाइललानिन:** शरीर में उत्पन्न होने वाला हानिकारक रस
- **फैनिल केटीन यूरिया (पी.के.यू.):** मेटाबोल्जिम के विकार के कारण उत्पन्न होने वाला क्रम
- **जड़-वामनता:** हारमोन असन्तुलित होने से असामान्यता आ जाती है।

17.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

I. रिक्त स्थान भरिए-

1) आयोडीन की कमी कुपोषण का सीधा असर....................ग्रन्थियों में जाता है।
2) पाचक रसों के अभाव में.............................की मात्रा बढ़ जाती है।
3) ....के माध्यम से थाइरोक्सिन पहुचाकर रोग फैलने को रोका जा सकता है।
4) ....में सिर का आकार अन्य भागों की तुलना में दुगुना हो जाता है।

II. सत्य असत्य बताइये-

1) बन्ध्याकरण से मानसिक दुर्बलता को रोका जा सकता है। सत्य/असत्य
2) गर्भवती महिलाओं को कुपोषण, बीमारी तथा तनाव में रहना चाहिए। सत्य/असत्य
3) मन्द बुद्धि बच्चों का स्कूल अलग से होना चाहिए। सत्य/असत्य
4) मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों का पारिवारिक वातावरण सौहार्दपूर्ण होना चाहिए। सत्य/असत्य
5) शल्य चिकित्सक से ही जलशीर्षता का उपचार हो सकता है। सत्य/असत्य

उत्तर: I. रिक्त स्थान करिए-

1) थाइराइड 2) फिनाइललानिक 3) इन्जैक्शन 4) जलशीर्षता

II. सत्य असत्य बताइए-

1) सत्य 2) असत्य 3) सत्य 4) सत्य

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कोर्चीन एस.जे., मार्डन क्लीनीकल साइकोलोजी, सी.वी.एस. पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989

- कपिल एच. के. असामान्य मनोविज्ञान, हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा, 2001
- कपिल एच. के., आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान, भार्गव बुक हाउस, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1996-97
- कपिल एच. के., अनुसंधान विधियाँ, हरप्रसाद भार्गव, आगरा, 1989
- राटर, जे. पी., क्लीनीकल साइकोलोजी, प्रैन्टिसहाल आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1964
- सण्डवर्ग एन.डी., टाइलर एल. ई., क्लीनीकल साइकोलोजी, मेथ्यून एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, 1963
- सिंह आर.पी., नैदानिक मनोविज्ञान, वि. पु. मन्दिर, आगरा, 1981
- सिंह लाभ एवं तिवारी गोबिन्द, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, 1984
- श्रीवास्तव अजय कुमार, मनोविकृति विज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2009
- ओझा आर. के. असामान्य मनोविज्ञान, हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा, 1991
- चौबे, एस.वी. असामान्य मनोविज्ञान और आधुनिक जीवन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1988-89
- सिंह ए. के., आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2002

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

- लघु उत्तरीय प्रश्न

1. निम्न में से किसी चार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये

i) बंध्याकरण ii) कुपोषण
iii) पारिवारिक पर्यावरण iv) स्कूल प्रशिक्षण
v) मेडिकल उपचार vi) जलशीर्षता
vii)गर्भपात viii) पी.के.यू.

- विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. मानसिक दुर्बलता की रोकथाम कैसे की जा सकती है?
2. मानसिक रूप से ग्रसित व्यक्तियों का उपचार कैसे किया जाता है?
3. मानसिक मंदन से पीड़ित व्यक्तियों में फैलाव में कैसे नियंत्रण किया जा सकता है?
4. मानसिक रूप से मन्दित व्यक्तियों के उपचार तथा रोकथाम पर एक संयुक्त कार्यक्रम तैयार कीजिए।
5. मानसिक मन्दन या पिछड़ेपन को रोकने के लिए किन उपायों को अपनाया जा सकता है।

इकाई–18 दुर्बलता के प्रकार और पुनर्वास

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 मानसिक दुर्बलता की कसौटियाँ
18.4 बुद्धि के आधार पर वर्गीकरण
18.5 मानसिक दुर्बलता के प्रकार का आधुनिक विचार
18.6 शिक्षा की कसौटी के आधार पर
18.7 नैदानिक कसौटी के आधार पर वर्गीकरण
18.8 मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का पुनर्वास
18.9 सारांश
18.10 शब्दावली
18.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
18.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.13 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

अमेरिकन एसोएिशन ऑन मेंटल डिफिसियेन्सी तथा अमेरिकन मनोरोग विज्ञानी संघ ने मिलकर बुद्धि के आधार पर मानसिक दुर्बलता के स्तर या प्रकार बनाये हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक दुर्बलता के कई प्रकार बतलाये हैं। इन लोगों के द्वारा मानसिक दुर्बलता के स्तर का निर्धारण करने में कुछ कसौटियों को सामने रखा गया है।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- मानसिक दुर्बलता की कसौटियों का वर्णन कर सकेंगे।
- मानसिक दुर्बलता के प्रकार या वर्गीकरण जान सकेंगे।
- मानसिक दुर्बलता से ग्रसित व्यक्तियों का पुनर्वास कैसे होगा।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं उद्यम, सेवा।
- स्वास्थ्य सेवा।
- मनोरंजन सुविधा।

18.3 मानसिक दुर्बलता की कसौटियाँ

- मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक दुर्बलता के अनेक प्रकार बताये हैं तथा कुछ कसौटियाँ निर्धारित की।
- बुद्धि के आधार पर।
- समायोजन योग्य व्यवहार के आधार पर।
- नैदानिक कसौटी के आधार पर।

18.4 बुद्धि के आधार पर वर्गीकरण

बुद्धि के स्तर के आधार पर मानसिक दुर्बलता को मापना है कि मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति को कहाँ पर रखें अर्थात् उनकी बुद्धि लब्धि (I.Q.) का स्तर क्या है। 90 से 110 की बुद्धि लब्धि को सामान्य या औसत बुद्धि लब्धि माना गया है। व्यक्ति में 90 से बुद्धि लब्धि जितना ही कम होगा उसमें मानसिक दुर्बलता का स्तर भी उतना ही कम होगा।

मूर्ख (Moron):

- इस स्तर के मानसिक दुर्बल व्यक्ति का बुद्धि लब्धि 25 से 50 तक रहता है।
- जन्म से 5-6 वर्ष तक व्यवहार साधारण बच्चों की तरह रहता है।
- 6 वर्ष के बाद बुद्धि विकास अन्य सामान्य बच्चों की तुलना में रुक जाता है।
- प्रतिकूल स्थिति का सामना नहीं कर पाते।
- दैनिक जीवन में प्रतिकूल स्थिति में घबरा जाते हैं।
- आवश्यक अभ्यास के उपरान्त ये प्रतिकूल स्थिति का सामना करते हैं।

उदाहरणार्थ यदि मूर्ख व्यक्ति को छतरी के उपयोग व लाभ को प्रयोगात्मक रूप से समझाया जाए तो सीखने के बाद छतरी का सही उपयोग कर सकते हैं।

- इस प्रकार के श्रेणी के व्यक्तियों का हाव-भाव, शक्ल-सूरत, मानसिक व्यवहार भी सामान्य जैसा होता है।
- इनमें शारीरिक दोष कम पाये जाते हैं।
- शारीरिक विकास तो हो जाता है परन्तु मानसिक विकास नहीं हो सकता है।
- इस प्रकार की श्रेणी के व्यक्तियों को आत्मनिर्भर भी बनाया जा सकता है।

मूढ (Imbecile):

- इस श्रेणी के मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति की बुद्धि लब्धि 20 से 40 के बीच होती है।
- मानसिक आयु 3 से 7 वर्ष होती है।
- शारीरिक विकास का स्वरूप लगभग सामान्य से निकट ही रहता है।
- मोटा कार्य ही कर पाते हैं।

जड़ (Idiot):

- मानसिक दुर्बलता की न्यूनतमतम श्रेणी को जड़ कहते हैं।
- इस प्रकार के व्यक्तियों में बुद्धि की मात्रा कम होती है।
- बुद्धि लब्धि का स्तर 20 के निकट अथवा कम होता है।
- इस श्रेणी के मानसिक दुर्बल व्यक्तियों का व्यवहार 2 से 3 उम्र के बच्चों के समान होता है।
- ऐसे व्यक्ति प्रायः अपनी रक्षा नहीं कर पाते हैं।
- इन्हें कड़ी देख-रेख की आवश्यकता होती है।
- ऐसे व्यक्ति अपने अपने घर व माता-पिता को पहचानने में भी कठिनाई अनुभव करते है।
- इस श्रेणी के व्यक्ति अपने शरीर की स्वयं सफाई भी नहीं कर पाते हैं।
- इस प्रकार के मानसिक दौर्बल्य व्यक्तियों का बच्चों की तरह देख-भाल करनी होती है।
- ऐसे व्यक्ति शरीर के किसी अंग का उपयोग करना नहीं जानते हैं।

18.5 मानसिक दुर्बलता के प्रकार का आधुनिक विचार

आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि बुद्धि के आधार पर मानसिक मन्दन का अध्ययन करना न्यायोचित नहीं है। मानसिक दुर्बलता का निदान इस आधार पर किया जाना चाहिए कि सम्बन्धित व्यक्ति का विकासात्मक क्रम कैसा है। इनको हम निम्न क्रम में रख सकते हैं।

1) अल्प मानसिक दुर्बलता-

- इस श्रेणी की मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि 52-67 के बीच होती है।
- वयस्क हो जाने पर भी इनकी बौद्धिक क्षमता 9 से 11 साल के बालकों के करीब होती है।
- इनमें किसी भी प्रकार की मस्तिष्कीय विकृति तथा अन्य शारीरिक विकृति नहीं होती है।

2) साधारण मानसिक दुर्बलता-

- इस श्रेणी के मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि 35-51 के बीच होती है।
- वयस्क होने पर 4-7 वर्ष के बच्चों के समान होती है।
- शारीरिक बनावट कुछ बेडोल होती है या शारीरिक कमी रहती है।
- नाराज होने पर ऐसे व्यक्ति शीघ्र ही क्रोधित हो जाते हैं कभी-कभी आक्रामक हो जाते हैं।

3) तीव्र मानसिक दुर्बलता-

- इस श्रेणी के व्यक्तियों का बुद्धि लब्धि का स्तर 20 से 35 के बीच होता है।
- इन्हें आश्रित दुर्बल भी कहा जा सकता है।
- अपनी देख-रेख के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं।
- ऐसे व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करने में कुछ असमर्थ रहते हैं।
- इनमें संवेदी दोष तथा क्रियात्मक विकलांगता भी होती है।

- इनका गत्यात्मक सम्बन्धी तथा वाक सम्बन्धी विकास अत्यधिक अवरुद्ध एवं मंद होता है।

4) अति गंभीर मानसिक दुर्बलता-

- मानसिक दुर्बलता का सबसे गम्भीर प्रकार है।
- रोग से ग्रसित व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि 20 से नीचे होती है।
- शारीरिक बनावट भद्दी-बेडोल होती है।
- इनके चलने-फिरने से ही इनका व्यक्तित्व स्पष्ट दिखायी देता है।
- ऐसे व्यक्तियों को कुछ सीख पाना अत्यन्त कठिन होता है।
- ऐसे व्यक्तियों को प्रायः मृगी के दौरे पड़ते हैं।
- अधिकतर मूक रहते हैं।
- आवाज स्पष्ट नहीं होती है।
- स्वयं का कुछ भी कार्य, जैसे खाना, घूमना या शारीरिक सफाई के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं।
- महिलाओं को मासिक धर्म का ध्यान भी नहीं रहता।
- ऐसे व्यक्ति कभी-कभी क्रूर भी हो जाते हैं।
- सोचने व समझने की क्षमता व शक्ति नहीं होती।
- ऐसे व्यक्तियों की आयु भी बहुत कम होती है।

बुद्धि-लब्धि व सामायोजन व्यवहार के आधार पर

सारणी- बुद्धि-लब्धि वितरण

बुद्धि-लब्धि का परिसर	जनसंख्या प्रतिशत
130 व अधिक	2.2
120 - 129	6.7
110 - 119	16.1
90 - 109	50.0
80 - 89	16.1
70 - 79	6.7
69 तथा कम	2.2

1) मापित बुद्धि:-

मापित बुद्धि के आधार पर मानसिक न्यूनता के वर्गिकरण का श्रेय बिने (Binet) तथा साइमन (Simon) को मिलता है। जिन्होंने मानसिक न्यूनता से पीड़ित बालकों को पहचाननें के लिए प्रथम बुद्धि-परिक्षण का विकास और मानसिक आयु का संप्रत्यय प्रस्तुत कियाँ बाद में स्टर्न (Stern) ने बुद्धि-लब्धि (I.Q.) का संप्रत्यय प्रस्तुत किया।

मापित बुद्धि के अनुसार जिन व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि 90 और 110 के बीच होती है उन्हें सामान्य बौद्धिक स्तर का व्यक्ति कहा जाता है। 50% जनसंख्या इसी श्रेणी में आाती है। इस जड़बुद्धि (Idiot) 26-49 I.Q. वाले व्यक्ति को हीनबुद्धि (Imbecile) और 50-69 I.Q. वाले व्यक्ति को मन्दबुद्धि (Moron) कहा जाता हैं।

2) व्यनुकूली व्यवहार:-

वर्षो के अनुभव से ज्ञात हुआ कि बुद्धि परीक्षाओं के आधार मानसिक न्यूनतमता का वर्गीकरण अपूर्ण है क्योंकि समान बुद्धि-लब्धि के रोगियों में सामाजिक व्यनुकूलता के व्यापक अन्तर पाये जाते हैं व्यनुकूली व्यवहार के आधार पर मानसिक न्यूनतमता को तीन भागों में बाटा गया है।

अप्रशिक्षणीय-

यह सबसे छोटा वर्ग है जिसमें 5% मानसिक न्यूनतमता के रोगी आते है यह रोगी पूर्ण रूप से पराक्षित होते है।

1. **प्रशिक्षणीय-** यह दूसरे मुख्य समूह में लगभग 20% रोगी आते हैं इन्हें दैनिक जिवन से स्वावलम्बी बनने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। इन रोगियों कि सर्वाधिक अवहेलना की जा सकती है।
2. **शिक्षणीय-** इस समूह मे 75% रोगी आते है यदि विशेष व्यवस्था कि जाए तो यह प्रयाप्त मात्रा में शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और इस प्रकार समुदाय में सामाजिक और आर्थिक समायोजन कर सकते है।

अमरीकी मनोरोग संबन्धी संघ के अनुसार -

i) 70-84 बुद्धि- लब्धि वाल व्यक्ति हल्की मानसिक न्यूनतमता का होता है।
ii) 50-70 बुद्धि-लब्धि वाला व्यक्ति साधारण मानसिक न्यूनतमता का होता है।
iii) 0-50 बुद्धि-लब्धि वाला व्यक्ति तीव्र मानसिक न्यूनतमता का होता है।

विश्व स्वास्थ संगठन के अनुसार -

i) 50-69 बुद्धि-लब्धि वाले हल्के मन्दनप प्रकार के होते है।
ii) 20-49 तक व्यक्ति साधारण मन्दन वाले होते है।
iii) 0-19 तक के व्यक्ति तीव्र मन्दन के होते है।

टेडगोल्ड मानसिक दुर्बलता के अनुसार के अनुसार –

i) **प्राथमिक मानसिक दुर्बलता-** मानसिक दुर्बलता के इस वर्ष में टेडगोल्ड के अनुसार 80% व्यकित आते है। इस प्रकार के व्यक्तियों कि बुद्धि-लब्धि कम होने का करण वंश परम्परा है परन्तु कभी-कभी बीज कोशों में दोष हो जाने पर पर भी मानसिक दुर्बलता आ जाती है। इस दोष के फलस्वरूप व्यक्तियों का मानसिक विकास रूक जाता हैं। व सामाजिक संतुलन बिगड़ जाता है गोडार्ड तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों के आधार पर बताया है कि जड़ या मूढ़ की अपेक्षा मूर्ख के सम्बन्धियों के मध्य प्राथमिक मानसिक दुर्बलता की संख्या बहुत कम होती है।

ii) **गौड़ मानसिक दुर्बलता-** इस वर्ष में लगभग 20% मानसिक दुर्बल व्यक्ति आते है तथा बुद्धि की कमी के दोष का कारण वंशानुक्रम नहीं होता। मानसिक क्षति इसका मुख्य कारण है जब व्यक्ति के मस्तिष्क में आघात या अन्य कारण से क्षती पहुँचती है तथा उसका मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता हैं। जिसके फलस्वरूप उसमें मानसिक न्यूनतमता आ जाती है लेंडिस (Landis) के अनुसार इस श्रेणी में जड़ तथा मूढ़ मानसिक दुर्बलता भी आती है।

iii) **विकारात्मक मानसिक दुर्बलता-** उप संसकृतिक मानसिक दुर्बलता के व्यक्तियों की अपेक्षा इस वर्ग में आने वाले व्यक्तियों में शारीरिक दोष स्पष्ट रूप से देखे जा सकते है तथा ये व्यक्ति सामान्य व्यकितयों से भीन्न दिखायी पड़ते हैं।

18.6 शिक्षा की कसौटी के आधार पर

- ऐसे मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं परन्तु शिक्षा ग्रहण दशा धीमी होती है।
- समाज में अपने को समायोजित कर सकते हैं।
- किसी कार्य को करने की क्षमता बहुत मंद होती है।
- प्रशिक्षण से कुछ हद तक अपने शैक्षिक एवं व्यावसायिक कौशल को उन्नत बनाने में सफल होते हैं।

18.7 नैदानिक कसौटी के आधार पर वर्गीकरण

जैविक विकृतियों के आधार पर भी मानसिक दुर्बलता का वर्गीकरण किया जाता है। जैविक विकृतियों का अर्थ शारीरिक कमजोरी या विकृति से है।

1) **मंगोलियन प्रकार-**

- इस प्रकार के दुर्बल व्यक्तियों की मुखाकृति मंगोलियन लोगों से मिलती-जुलती है।
- बुद्धि-लब्धि का स्तर 50 से 70 तक विस्तृत होता है।
- ऐसे व्यक्ति का कद छोटा/नाटा, शारीरिक भार बहुत कम होता है।
- ऐसे मानसिक दुर्बलता से पीड़ित व्यक्ति की नाक चपटी, आँखें धँसी होती हैं।
- ऐसे व्यक्ति अपनी देख-रेख स्वयं कर लेते हैं।
- आयु की प्रत्याशा कम होती है।
- लगभग 14 या 15 वर्ष होती है।

इस प्रकार की मानसिक दुर्बलता का वर्णन सबसे पहले पहल ब्रिटेन के मनोचिकित्सक लैंगडान डाउन (Langdan Down) ने 1886 ई. में किया था। ब्रग्गी तथा उनके सहयोगियों (Brugge et el, 1994) द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि ऐसे बच्चों में उम्र का पूर्वपक्व प्रभाव जैसे कम उम्र में शरीर पर झुर्रिया पड़ना, घटिया स्मृति एवं संभ्रान्ति आदि भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं।

2) फेनिल केटोन यूरिया (PKU)-

- जब प्रोटीन मेटा बोलिज्म के कारण व्यक्ति का मानसिक व शारीरिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार मानसिक दुर्बलता ग्रसित व्यक्तियों को पी.के.यू. कहते हैं।
- प्रायः बीस हजार नवजात शिशुओं में इनकी संख्या एक या दो होती है।
- जन्म के कुछ दिनों पश्चात् ही शिशु में कमियाँ दिखाई देने लगती है।
- प्रोटोमेटाबोलिज्म की गड़बड़ी से फेलालानाइन युक्त भोजन देकर उक्त गड़बड़ी से मुक्त होता है।
- इस सम्बन्ध में कुछ ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस विकार का मूल कारण ऐसे बालक में किसी गौण जीन का अचानक प्रभावी हो जाना ही है।

प्रारम्भ में ऐसे बच्चों में लक्षण की शुरूआत कुछ विशेष शारीरिक लक्षण जैसे- शरीर से पसीने की विचित्र गन्ध, कम्पन, एक्जिमा आदि से होती है।

3) बौनापन-

- इस प्रकार की मानसिक दुर्बलता को हाइपोथरोयडिज्म भी कहा जाता है।
- यह दुर्बलता शरीर में थाइराइड हार्मोन्स की कमी एवं अधिकता से होती है।

- ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है।
- सिर बड़ा, गर्दन मोटी तथा आँखों की पलक मोटी होती है।
- चार या पाँच वर्ष की आयु से लक्षण दिखायी देने लगते हैं।

4) लघु शीर्षता तथा वृहद् शीर्षता-

- यह मानसिक दुर्बलता दोनों प्रकार की होती है।
- लघु शीर्षता में सिर सामान्य से बहुत छोटा होता है।
- कद छोटा होता है।
- स्वभाव से जिद्द।
- यौन दुराचार की भावना प्रबल होती है।
- वृहद् शीर्षता सिर का औसत आकार शरीर से अधिक होता है।
- बोलचाल की बोली में बृहद् शीर्षता ग्रसित रोगी को हांडू कहते हैं।

ऐसे व्यक्तियों के सिर की परिधि 17 इंच से शायद ही अधिक होती है जबकि सामान्य परिधि लगभग 22 इंच का होता है। इन व्यक्तियों की मुख्य पहचान यह है कि इनके सिर शंकु-आकारीय होते हैं।

5) जल शीर्षता-

- इस प्रकार की मानसिक दुर्बलता में शिशु के मस्तिष्क में जल द्रव्य भर जाता है। जिसे सेरेब्रो-स्पाइनल द्रव्य कहा जाता है।
- इस कारण मस्तिष्क का आकार बढ़ जाता है।
- प्रायः इस रोग से ग्रसित बच्चों की जीवन प्रत्याशा बहुत कम होती है। पाँच से सात वर्ष तक का जीवन रहता है।

जलशीर्षता की अवस्था जन्मजात होती है परन्तु कभी-कभी उन बच्चों में भी विकसित हो जाता है जिनका विकास सामान्य होता है।

6) जड़, बुद्धि विद्वान-

- इस प्रकार के मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि बहुत कम होती है।
- कभी-कभी पूर्व की महत्वहीन घटना का स्मरण रोचक ढंग से करते हैं।
- दूसरे के द्वारा बनाये गये कार्य को करते हैं। अपने विवेक से कोई कार्य नहीं करते।

7) हारमोनों में असन्तुलन होना-

- सर्वविदित है कि हारमोनों में किसी भी प्रकार के परिवर्तन आने से विकृत व्यक्ति या तो ठीक हो जाते हैं या उनमें मानसिक मंदता आ जाती है।
- इस प्रकार के रोगी चिढ़चिढ़े या कभी हिंसक रूप धारण कर लेते हैं।
- कभी-कभी इनकी स्मरण शक्ति क्षीर्ण हो जाती है।

8) अर्द्ध विक्षिप्त-

- किसी दुर्घटना, शारीरिक आघात, मस्तिष्क की गाँठ आदि से ट्यूमर उत्पन्न होने पर व्यक्ति मंद बुद्धि हो जाते हैं।

9) टर्नर संलक्षण-

- इस प्रकार की मानसिक दुर्बलता सिर्फ बालिकाओं में पायी जाती है।
- मानसिक दुर्बल व्यक्ति की गर्दन छोटी एवं झुकी होती है।
- इनकी बुद्धि लब्धि 30-40 के लगभग होती है।
- इस तरह की मानसिक दुर्बलता का कारण यौन क्रोमोजोम्स में गड़बड़ी होती है।

10) क्लाइनफेल्टर संलक्षण-

- इस तरह की मानसिक दुर्बलता सिर्फ पुरुषों या बालकों में होती है।
- ऐसे बालकों में वयस्कता आ जाने पर भी उनकी यौन ग्रन्थि अपरिपक्व होती है।
- इनकी बुद्धि लब्धि प्रायः 35-40 के बीच होती है।

11) दुर्बल एक्स संलक्षण-

इस तरह के बालकों में जो मानसिक दुर्बलता उत्पन्न होती है उसका कारण यौन गुणसूत्र का कमजोर होना होता है।

- इस तरह बच्चों में विरोधात्मक तथा विध्वंसात्मक व्यवहार करने की प्रवृत्ति अधिक होती है।
- डायकन्स तथा उनके सहयोगियों (Dykens et al, 1994) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि दुर्बल एक्स संलक्षण का कारण जननिक त्रुटि है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरण होते रहता है।

12) विलियम्स संलक्षण-

इस संलक्षण की उत्पत्ति का कारण गुणसूत्र संख्या सात पर एक जीन का विलोपित होना है।

- ऐसे बच्चों में शब्दावली एवं व्याकरण से सम्बद्ध कौशल दिखता है।
- होडाप्पा तथा डायकेन्स (Hodapp & Dykens, 1994) ने विलियम्स संलक्षण वाले बच्चों को चिन्तन के सापेक्ष अनुपस्थिति में भाषा वाला बच्चा कहा है।

18.8 मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का पुनर्वास

भारत में प्रायः मानसिक रूप से ग्रसित या मंद बुद्धि के व्यक्ति या तो दया के पात्र होते हैं या हास-परिहास के केन्द्र बन जाते हैं। अनेक समाज सेवी संस्थाओं व एन.जी.ओ. ने इनके पुनर्वास के कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाए हैं जिसमें ये अपने पैरों पर खड़े हो सकें परन्तु आज आवश्यकता आज आवश्यकता ऐसे मंद बुद्धि के व्यक्तियों जिन्हें हम प्रायः बाजारों, गलियों में घूमते

देखते हैं, के पुनर्वास की है। प्रायः ये मंद बुद्धि के व्यक्ति अपने घरों से भटक जाते हैं। उन्हें ऐसी संस्थाओं के हवाले किया जाए जो इनकी समुचित देखरेख कर सकें।

प्रायः हम मंद बुद्धि व मानसिक विकृत व्यक्तियों में अंतर नहीं कर पाते और उन्हें पागलखानों में पहुँचा देते हैं। मानसिक रूप से विकृत व्यक्ति हिंसक होता है जबकि मंद बुद्धि व्यक्ति प्रायः हिंसक नहीं होता। कभी-कभी चिढ़ाने पर ही वह हिंसक होता है। अतएव उन्हें पागलखाने न भेजकर पुनर्वास के लिए कदम उठाना चाहिए।

इस क्रम में उनकी स्वास्थ्य सेवा, मनोरंजन सुविधा व जीवन की अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर भी ध्यान देना होगा। ऐसे स्वयं सेवी प्रशिक्षित व्यक्तियों को इन लोगों के पुनर्वास की जिम्मेदारी सौंपनी होगी।

18.9 सारांश

समाज में विभिन्न प्रकार के मंद बुद्धि के व्यक्ति देखने को मिलते हैं। हम उनके बोलने, विचार, चलने-फिरने, उठने बैठने, दूसरों पर निर्भरता, खान-पान, खान-पान के ढंग से अनुमान लगा लेते हैं कि इस व्यक्ति की बुद्धि लब्धि किस प्रकार की होगी। मानसिक दोर्बल्यता तथा मानसिक बीमारी को हम प्रायः एक ही मान लेते हैं जबकि दो अलग-अलग प्रकार की मनोदशाएँ हैं। इनको सरल रूप में हम निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं।

मानसिक दुर्बलता	मानसिक बीमारी
1. मानसिक दुर्बलता में बौद्धिक विकास एक स्तर के बाद रूक जाता है या विकास की गति बहुत धीमी होती है। उदाहरणार्थ एक 15 वर्ष के व्यक्ति की सोच 5 या 6 वर्ष के बच्चे के समान होती है। 2. मानसिक दुर्बलता जन्मजात होती है। 3. मानसिक दुर्बलता में व्यक्ति की बुद्धि सीमित होती है। 4. मानसिक दुर्बलता में व्यक्तित्व का विघटन बहुत कम पाया जाता है। 5. मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति की शारीरिक रचना प्रायः विकृत, भद्दी, बौनी होती है तथा पहली नजर में हम पहचान जाते हैं कि वह	1. मानसिक बीमारी में बुद्धि का विकास रुकता नहीं है, परन्तु बीमारी के कारण उसमें विकृती आ जाती है। 2. मानसिक बीमारी जन्मजात न होकर अर्जित होती है। 3. मानसिक बीमारी में व्यक्ति की बुद्धि सीमित नहीं होती। 4. मानसिक बीमारी में गम्भीर विघटन पाया जाता है। 5. मानसिक बीमारी से ग्रसित व्यक्ति की शारीरिक रचना विकृत नहीं होती है। उनके क्रियाकलापों से ही हम पहचानते हैं कि वह मानसिक रूप से विकृत है।

मंद बुद्धि से ग्रसित है। 6. मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का उपचार कठिन होना है तथा पूर्ण रूप से उपचार भी नहीं होता।	6. मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति का उपचार सम्भव है तथा पूर्ण रूप से ठीक हो सकते हैं यदि सही उपचार हो।

अतएव उपर्युक्त कारणों से मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों व मानसिक बीमारी से ग्रसित व्यक्तियों में अंतर देख सकते हैं। मानसिक दुर्बलता के अनेक प्रकार भी कसौटियों के आधार पर बताए गए हैं। उन्हीं के आधार पर वर्गीकरण करते हैं कि अमुख मंदबुद्धि के व्यक्ति का लब्धि-स्तर किस प्रकार का है लेकिन 80 प्रतिशत रूप में एक समानता होती है कि इनकी जीवन तालिका बढ़ी नहीं होती। प्रायः यह उम्र से पहले ही पर प्रायः यह उम्र से पहले ही परलोक सिधार जाते हैं।

आज आवश्यकता इस प्रकार के व्यक्तियों के पुनर्वास की है। सरकार, समाजसेवी संस्था या एन.जी.ओ. को इनके पुनर्वास के बारे में गम्भीरता से सोचना होगा। लोगों को इनकी मनोरंजन का साधन या दयापात्र नहीं बनाना चाहिए।

मानसिक दृष्टि से मंद व्यक्तियों का वर्गीकरण-

बुद्धि लब्धांक के दृष्टिकोण से विभिन्न मानसिक स्तर के व्यक्तियों का वर्जन इस प्रकार किया जाता है-

बुद्धि लब्धि (I.Q.)	श्रेणी (Degrees)
140 या ऊपर	प्रतिभाशाली (Genius)
120 से 140	अति श्रेष्ठ (Very Superior)
110 से 120	श्रेष्ठ (Superior)
90 से 110	सामान्य या औसत (Normal or Average)
80 से 90	मंद या हीन बुद्धि (Dull)
70 से 80	सीमावर्ती (BorderLine)
70 से नीचे	दुर्बल बुद्धि (Feeble Minded)
50 से 60	मूढ़ (Moron)
20 से 50	मूर्ख (Imbecile)

20 से नीचे जड़ बुद्धि (Idiot)

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि लगभग 50 प्रतिशत लोग सामान्य बुद्धि के होते हैं, 25 प्रतिशत औसत से ऊँचे प्रतिभाशाली या श्रेष्ठ होते हैं और शेष 25 प्रतिशत औसत से नीचे वर्ग में आते हैं। औसत से नीचे आने वाले वर्ग में 16 प्रतिशत मंद बुद्धि होते हैं और 9 प्रतिशत हीन-बुद्धि होते हैं। हीन बुद्धि वर्ग में मूढ़, मूर्ख और जड़ बुद्धि सभी वर्ग के लोग आ जाते हैं।

18.10 शब्दावली

- **पुनर्वास:** मानसिक दुर्बलता वाले बच्चों को प्रशिक्षण देना तथा उनको रचनात्मक सेवाओं में रखना।
- **समायोजन:** सब के साथ मिलजुल रहना।
- **प्रतिकूल:** उल्टा
- **न्यूनतमतम:** कम से कम
- **अल्पमानसिक दुर्बल:** कम मन्द बुद्धि
- **अवरुद्ध:** रुका हुआ
- **गत्यात्मक:** घूमना, फिरना
- **वाक:** बोलना
- **मूक:** चुपचाप
- **मंगोलियन:** ऐसे व्यक्ति जो शारीरिक लक्षण, बाहरी रूप से मंगोल देश के निवासियों के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं।
- **मेटाबोलिज्म:** समस्त समस्त चयपचय प्रक्रम
- **लघु शीर्षता:** इसमें सिर शरीर की अपेक्षा बहुत छोटा होता है।
- **वृद्ध शीर्षता:** सिर का औसत आकार शरीर से अधिक होता है।
- **जलशीर्षता:** कपाल में प्रमस्तिष्क, मेरू द्रव अधिक होना।
- **क्षीर्ण:** कमजोर होना।

18.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

I. बहु विकल्पीय प्रश्न-

1) मूर्ख के समतुल्य बुद्धि लब्धि के स्तर को कहा जाता है-

a) मंद मानसिक दुर्बलता

b) साधारण मानसिक दुर्बलता

c) तीव्र मानसिक दुर्बलता

d) गंभीर मानसिक दुर्बलता

2) मनोविज्ञान में जड़ से तात्पर्य है-

a) महामूर्ख से

b) ऐसे व्यस्क व्यक्ति से जिसकी मानसिक आयु 8 साल की हो

c) ऐसे व्यस्क व्यक्ति जिसकी बुद्धि लब्धि 20 से नीचे हो

d) ऐसे व्यक्ति से जिसकी मानसिक आयु 5 साल की हो।

3) बौनापन एक ऐसी मानसिक दुर्बलता का प्रकार है जिसमें-

a) पीयूष ग्रन्थि (Pituitary gland) से अधिक स्राव निकलता है।

b) पीयूष ग्रन्थि से कम स्राव निकलता है।

c) थायरायइ ग्रन्थि (Thyriod gland) से अधिक स्राव निकलता है।

d) थायरायड ग्रन्थि से कम स्राव निकलता है।

4) टर्नर संलक्षण (Turner's syndrome) मानसिक दुर्बलता का एक ऐसा नैदनिक प्रकार है जो-

a) सिर्फ स्त्रियों में पाया जाता है।

b) सिर्फ मर्दो में पाया जाता है।

c) दोनों यौन के व्यक्तियों में पाया जाता है।

d) सिर्फ वनमानुष में पाया जाता है।

II. एक शब्द में उत्तर दीजिये-

1) सामान्य से बहुत छोटा सिर किस प्रकार की मानसिक दुर्बलता में होता है।
2) बौनापन मानसिक दुर्बलता से शरीर में कौन से हार्मोन्स की कमी व अधिकता होती है।
3) सामान्य व्यक्ति की बुद्धि लब्धि स्तर क्या है।
4) किस प्रकार के मानसिक दुर्बलता में व्यक्ति का कद छोटा, नाटा, शारीरिक भार बहुत कम होता है।

5) हाइपोथरोयडिज्म किस प्रकार की मानसिक दुर्बलता है।

उत्तर: **I.** बहु विकल्पीय प्रश्न-

1) a 2) c 3) d 4) a

II. एक शब्द में उत्तर दीजिए-

1) लघुशीर्षता 2) थाइराइड हार्मोन्स 3) 90 से 110

4) मंगोलियन प्रकार 5) बौनापन

18.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कोर्चीन एस.जे., मार्डन क्लीनीकल साइकोलोजी, सी.वी.एस. पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989
- कपिल एच. के. असामान्य मनोविज्ञान, हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा, 2001
- कपिल एच. के., आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान, भार्गव बुक हाउस, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1996-97
- कपिल एच. के., अनुसंधान विधियाँ, हरप्रसाद भार्गव, आगरा, 1989
- राटर, जे. पी., क्लीनीकल साइकोलोजी, प्रैन्टिसहाल आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1964
- सण्डवर्ग एन.डी., टाइलर एल. ई., क्लीनीकल साइकोलोजी, मेथ्यून एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, 1963
- सिंह आर.पी., नैदानिक मनोविज्ञान, वि. पु. मन्दिर, आगरा, 1981
- सिंह लाभ एवं तिवारी गोबिन्द, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, 1984
- श्रीवास्तव अजय कुमार, मनोविकृति विज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2009
- ओझा आर. के. असामान्य मनोविज्ञान, हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा, 1991
- चौबे, एस.वी. असामान्य मनोविज्ञान और आधुनिक जीवन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1988-89
- सिंह ए. के., आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2002

18.13 निबन्धात्मक प्रश्न

- **लघु उत्तरीय प्रश्न**
  1. बुद्धि के आधार पर मानसिक दुर्बलता का वर्गीकरण कीजिये।
  2. मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का पुनर्वास किस प्रकार किया जा सकता है।
  3. मानसिक दुर्बलता तथा मानसिक रोग में अन्तर बताइये।
  4. बुद्धि के आधार पर मानसिक दुर्बलता का वर्गीकरण कीजिए।

5. मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का पुनर्वास किस प्रकार किया जा सकता हैं।
6. मानसिक दुर्बलता तथा मानसिक रोग में अन्तर बताइए।

- **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. मानसिक मंदन के विभिन्न स्तरों या प्रकारों का वर्णन करो।
2. मूढ़, मूर्ख, जड़ बुद्धि के अंतर को समझाइये।
3. मानसिक मंदन या दुर्बलता के किन्हीं दो प्रकारों का वर्णन करें तथा इसके कारक के रूप में वातावरण की भूमिका का वर्णन करें।
4. मानसिक मंदन तथा आन्तरिक रोग में अन्तर कीजिये।
5. मानसिक मंदन वाले बच्चों के विकास को कैसे प्रोत्साहित किया जा सकता है।
6. मानसिक मन्दन के विभिन्न स्तरो या प्रकारों का वर्णन करों।
7. मूढ़, मूर्ख, जड़ बुद्धि के अन्तर को समझाइए।
8. मानसिक मन्दन या दुर्बलता के किन्ही दो प्रकारों का वर्णन करें तथा कारक के रूप में वातावरण की भूमिका का वर्णन करों।
9. मानसिक मन्दन तथा आन्तरिक रोग में अन्तर बताइएँ।
10. मानसिक मन्दन वाले बच्चों के विकास को कैसे प्रोत्साहित किया जा सकता है।